कुंकुम के पगलिये

[नैतिक सदाचरण प्रधान प्रेरक कथानक]

प्रवचनकार

आचार्य श्री नानेश

□

सम्पादक

शांतिचन्द्र मेहता

□

प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

बीकानेर

कुंकुम के पगलिये

☐ प्रवचनकार
आचार्य श्री नानेश

☐ सम्पादक
शान्तिचन्द्र मेहता

☐ प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग,
बीकानेर ३३४००१ (राजस्थान)

☐ मूल्य १५.००
संस्करण : १९८५

☐ मुद्रक
फ्रैण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
जौहरी बाजार, जयपुर-३०२००३

प्रकाशकीय

जिन शासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रतिबोधक, समता विभूति, विद्वत् शिरोमणि, समीक्षण ध्यान योगी, बाल ब्रह्मचारी, चारित्र चूडामणि, आचार्यप्रवर श्री १००८ श्री नानालालजी म सा. का निर्ग्रंथ-परम्परा के सन्तो में विशिष्ट स्थान और महत्त्व है।

आज से ६५ वर्ष पूर्व ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया सवत् १९७७ को मेवाड के दाता गांव मे आपका जन्म हुआ। १९ वर्ष की अवस्था में, आतरिक वैराग्य भाव से प्रेरित होकर, आपने शात, क्रात द्रष्टा स्व. आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा. के पास जैन भागवती दीक्षा अगीकृत की। सवत् २०१९ मे माघ कृष्णा द्वितीया को आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए।

अपने आचार्यत्व काल मे आपने धर्म और आध्यात्म, जीवन और समाज के नाना-विध क्षेत्रो मे समता दर्शन के रूप मे युगान्तरकारी चिन्तन प्रस्तुत किया। समता दर्शन का ही क्रियात्मक रूप प्रतिफलित हुआ धर्मपाल प्रवृत्ति के पल्लवन एव प्रसरण मे। इस प्रवृत्ति के माध्यम से मालवा क्षेत्र के अस्पृश्य कहे जाने वाले बलाई जाति के हजारो लोगो को व्यसन मुक्त और सुसंस्कारी बनाने मे आपके सदुपदेशो की अदम्य प्रेरणा रही है।

समता दर्शन के विकास के लिये समीक्षण ध्यान का अभ्यास जरूरी है। इन वर्षों मे आपने समीक्षण ध्यान पर विशेष बल दिया है। अपनी वृत्तियो को सम्यग्रीत्या समभावपूर्वक देखना समीक्षण ध्यान है। इस अभ्यास-क्रिया से द्रष्टा भाव का विकास होता है।

आचार्य श्री जैन आगमो और शास्त्रो के मर्मज्ञ विद्वान् और गूढ़ व्याख्याता होने के साथ-साथ सृजनात्मक प्रतिभा के भी धनी हैं। समता दर्शन और व्यवहार, पावस प्रवचन भाग १ से ५, नव निधान, ताप और तप, आध्यात्मिक आलोक, आध्यात्मिक वैभव, शाति के सोपान, प्रेरणा की दिव्य रेखाएँ, प्रवचन-पीयूष, मंगल वाणी, जीवन और धर्म, अमृत सरोवर, समीक्षण धारा, आदि पुस्तको मे आपके महत्त्वपूर्ण प्रेरणादायी प्रवचन सकलित-सम्पादित हैं। ओजस्वी प्रवचनकार होने के साथ-साथ आप प्रबुद्ध विचारक, सवेदनशील कवि और सरस कथाकार भी हैं। 'आदर्श भ्राता' प्राचीन कथानक के आधार पर रचित आपका सरस खण्ड काव्य है।

'कुंकुम के पगलिये' नाम से प्रकाशित यह नई कथा-कृति पाठको के हाथो मे सौंपते हुए हमे प्रसन्नता है। ३४ परिच्छेदो मे विभक्त इस कथानक में श्रीकान्त और मजुला के

शक्तिशील सम्पन्न चरित्र का आख्यान परिष्कृत भाषा और रोचक शैली मे प्रस्तुत किया गया है। लौकिक प्रेम के क्षेत्र मे मडने वाले मजुला के कु कुम के पगलिये नानाविध घटना चक्रो से गुजरते हुए, तप-त्याग की ज्वाला मे लाल-लाल दमकते हुए, अत मे आध्यात्मिक पथ पर मुक्ति की ओर बढ चलते हैं। इस पथ पर मजुला अकेली नही है। उसके पति श्रीकान्त और पुत्र कुसुम भी उसके साथ हैं। श्रीकान्त की कथा उसके आत्म पुरुषार्थ के जागरण और विकास की कथा है। मजुला और श्रीकान्त का चरित्र आज की पथभ्रान्त पीढी के लिये प्रकाश दीप है तो भौतिकता मे ग्रस्त मानवता के लिये एक आध्यात्मिक स्फुरणा।

आचार्य श्री के प्रवचनो के आधार पर श्री शातिचन्द्र मेहता ने इसका सम्पादन कर और डॉ नरेन्द्र भानावत ने कृति के बारे मे दो शब्द लिख कर जो सहयोग प्रदान किया है, उसके लिये हम उनके आभारी हैं।

इसके प्रकाशन मे पूना निवासी प्रतिष्ठित श्रावक श्री कन्हैयालालजी, चन्दूलालजी एव सुरेशकुमारजी तालेरा ने अपनी मातुश्री धर्मपरायणा श्राविका श्रीमती इन्दिरा देवी की पुण्य स्मृति मे आर्थिक सहयोग प्रदान किया है, अत हम सघ की ओर से आपके प्रति आभार प्रकट करते हैं।

आशा है, इस कृति के पठन-पाठन से पाठको की रुचि का परिष्कार होगा और उनमे आध्यात्मिक प्रेरणा जगेगी।

—**गुमानमल चौरड़िया**
सयोजक, साहित्य समिति
अ. भा साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

धर्मपरायणा श्राविका
स्वर्गीया श्रीमती इन्दिरा देवी तालेरा

ससार मे चार बातें दुर्लभ कही गयी हैं—मानव जीवन की प्राप्ति, धर्म का श्रवण, उस पर सम्यक् श्रद्धा और सयम मे आचरण। जो इन चार बातो को न्यूनाधिक रूप मे अगीकार कर पाता है, उसका जीवन सार्थक हो जाता है। स्वर्गीया श्रीमती इन्दिरा देवी तालेरा उन महिला रत्नो मे से थी जिन्होंने धर्म पर श्रद्धा कर यथाशक्ति उसका आचरण कर अपने जीवन को धन्य बनाया।

आप पूना नगर के सम्माननीय नागरिक, प्रतिष्ठित श्रावक, सबर्वन नगरपालिका के भूतपूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय श्री मोतीलालजी तालेरा की धर्मपत्नी एव सामाजिक कार्यकर्त्ता सर्वश्री कन्हैयालालजी, चन्दुलालजी, सुरेशकुमारजी तालेरा की मातुश्री थीं।

आप सरलमना, कर्त्तव्यनिष्ठ, धार्मिक महिला थी। आप स्वभाव से धीर, गम्भीर, सहनशील, उदार एव दयालु थी। समय-समय पर सबकी यथायोग्य सहायता करना आप अपना कर्त्तव्य समझती थी। बच्चो मे धार्मिक अध्ययन कराने की आपकी उत्कृष्ट भावना रहती थी।

जीवन के अन्तिम दिनो मे आप कैंसर जैसे असाध्य रोग मे ग्रस्त हो गई थी। ८ माह तक आपने बडी शान्ति से रोग आदि महन किया। परम विदुषी महासतीजी श्री प्रमोदसुधाजी से सथारा ग्रहण कर ६३ वर्ष की आयु मे २८ मार्च, १६८१ को आपने समाधिमरण प्राप्त किया। अन्तिम ममय मे आपने सबमे क्षमतक्षमापना कर पच परमेष्टी मे ध्यान लगाया।

आपकी धार्मिक वृत्ति अनुकरणीय थी। आप दूसरों को भी सदा धार्मिक क्रिया करने की प्रेरणा करती थी। आपकी प्रेरणा से चिचवड (पूना) स्टेशन पर जैन स्थानक बना एव उसके निर्माण मे मबसे अधिक महयोग आप ही का रहा। चावडिया (राजस्थान) मे समाज के लिए जो भवन बना, उसमें भी मर्वाधिक महयोग आप ही का रहा। पूना मे आयम्बिल खाता भी आप ही की प्रेरणा से शुरू हुआ।

आपके सस्कार आपके पूरे परिवार को प्राप्त हुए है। फलस्वरूप समाज-सेवा के विभिन्न क्षेत्रो मे वह अग्रसर है। आपकी पुण्य स्मृति मे आपके परिवार वालो ने एक लाख रुपयो का ट्रस्ट कायम किया है। इस राशि के ब्याज का उपयोग पूना सघ एव अ भा साधुमार्गी जैन सघ बीकानेर के माध्यम से धार्मिक अध्ययन-अध्यापन मे किया जा रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन आपके परिवार द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहयोग से किया जा रहा है, उसके लिए अ भा साधुमार्गी जैन सघ आभारी है।
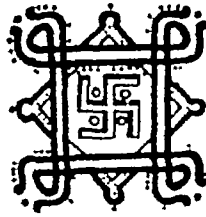
कृति के बारे में

आचार्य श्री नानेश उत्कृष्ट कोटि के ध्यान-साधक होने के साथ-साथ साहित्य सर्जक भी हैं। आपकी साहित्य-साधना, समता दर्शन और वीतराग भावना से पुष्ट है। आपके प्रवचन-साहित्य मे एक ओर परमात्म स्वरूप की अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और शक्ति की दिव्यता का प्रतिपादन है तो दूसरी ओर जीवात्मा के पुरुपार्थ, सिद्धि की ओर वढते उसके साहस, उपसर्ग-परिषह जय, इन्द्रिय निग्रह, अहिंसा, सयम, तपमूलक धर्म के स्वरूप आदि की हृदयसवेद्य विवेचना है। आपके काव्य मे आदर्श मातृत्व भाव, साहस, धैर्य, सेवा, शील, क्षमा, आदि भावो की सुन्दर व्यजना है। आपका कथा साहित्य मनोरजन के साथ-साथ आत्मरमण की प्रेरणा देता है।

'कुंकुम के पगलिये' आपकी सद्य प्रकाशित कथा-कृति है। आपने अजमेर चातुर्मास मे अपने प्रवचनो के साथ इस कथा का उपयोग किया था। नैतिक सदाचरण प्रधान यह कथा लोकभूमि से अपना रसग्रहण करती हुई लोकमानस को रसाप्लावित करती है। मजुला इस कथा की नायिका है और श्रीकान्त नायक। मजुला शक्तिशील, सौन्दर्यमयी है। श्रीपुर नगर के श्रेष्ठ वर्ग मे सुसस्कारी परिवार मे वह वधू वन कर आती है। उसके कुकुम के पगलिये प्रेम, सुहाग, सुख और श्रीसम्पन्नता' के प्रतीक हैं। उसका पति श्रीकान्त सादगी पसन्द सस्कारशील, स्वाभिमानी युवक है। सत्ता और सम्पत्ति की उसे चाह नही। वह श्रम और सेवा का पुजारी है। जैसे सशक्त होने पर बालक को माँ के दूध की अपेक्षा नही रहती, उसी तरह वह वडा होने पर अपनी पैतृक सम्पत्ति की इच्छा नही रखता। वह पिता की सम्पत्ति को मा के दूध की तरह पवित्र मानता है और कर्मक्षेत्र मे वढते हुए अपने लिये उसका उपयोग नही करता। वह अपने निज पुरुपार्थ से प्राप्त सम्पत्ति को अपनी सम्पत्ति मानता है और इसी भावना से वह मा के आग्रह पर मजुला से विवाह करने को उद्यत होता है और विवाह के दूसरे दिन ही स्वावलम्वी जीवन जीने की भावना से पुरुपार्थ के पथ पर वढ चलता है। मजुला के कुकुम के पगलिये अखण्ड शील-साधना के दीपक वन कर निरन्तर प्रज्वलित होते रहते हैं। उसका सौन्दर्य शील की रक्षा और परिपालना मे निरन्तर तपस्यारत रहता है।

श्रीकान्त आत्मपुरुपार्थ को जागृत कर शक्ति, सकल्प और साधना के वल अनजान पथ पर वढ चलता है और मजुला भी अपनी ननद पद्मा के मिथ्या दोपारोपण की शिकार वन निर्वासित हो, आपदाओ पर आपदा सहन करती हुई, अपने आत्मतेज को निखारती रहती है। उसका नवजात शिशु उससे विछुड जाता है और वह कामपिपासु राजा जयशेखर की वन्दिनी वनती है। कठिन परिस्थितियो मे अपने शील धर्म की रक्षा करती है। सयोग पाकर वहाँ से मुक्त होती है तो एक वेश्या के चगुल मे फस जाती है। प्राणो को हथेली पर रख कर वहाँ से अपने को मुक्त करती है और अन्ततोगत्वा अपने पति और पुत्र के साथ दीक्षित होकर वीतराग पथ की पथिक वनती है। मजुला का चरित्र उस

वीरागना का चरित्र है जो कु कुम को तप की आग मे तपा-तपा कर कुन्दन बनाती है। कु कुम राग का प्रतीक न रह कर विराग का अमृत कलश बन जाता है। सौन्दर्य आकर्षण का कारण न रह कर शील और शक्ति का रक्षा-कवच बन जाता है।

श्रीकान्त आदर्श युवक है। वह पैसे का नही पुरुषार्थ का पुजारी है। उसमे अदम्य उत्साह और अनन्त शक्ति है। वह अपने भाग्य की खोज मे पुरुषार्थ के बल पर अनजान पथ पर निकल पडता है। उसे मित्र के रूप मे धनसुख मिलता है पर अनीति से प्राप्त धनसुख उसे अभीष्ट नही, वह उसे ठोकर मार कर न्याय-नीति मे अर्जित सम्पत्ति, सुख की चाह मे अकेला चल पडता है, रत्नो की खोज में। विद्याधर के सहयोग से उसका पुरुषार्थ पकता है और वह न केवल पुत्र रत्न प्राप्त करता है वरन् अनेक कठिनाइयो को पार कर अपने गन्तव्य पर पहुचता है। श्रीकान्त अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार, परोपकार वृत्ति और आत्मतेज से सबको प्रभावित करता है। चोर पल्ली को प्रेम पल्ली मे परिवर्तित कर नव अहिंसक समाज रचना का श्रीगणेश करता है।

यह आख्यान घटना प्रधान होकर भी विभिन्न पात्रो के माध्यम से उदात्त जीवन मूल्यो को रेखाकित करता है। बहिर्द्वन्द्व और अन्तर्द्वन्द्व का अनूठा सामजस्य यहाँ देखने को मिलता है। मजुला और श्रीकान्त बहिर्द्वन्द्व और अन्तर्द्वन्द्व से ऊपर उठ कर निर्द्वन्द्व की स्थिति की ओर कदम बढाते हैं। सेवा, शील, पुरुषार्थ, तप, कर्तव्यनिष्ठा, प्रायश्चित, धैर्य, स्थिरता, प्रेम, सहयोग, मातृभक्ति जैसे उदात्त जीवन मूल्य विभिन्न घटनाओ और पात्रो के माध्यम से इस कथा मे सहज उभरते चलते हैं। हिंसा और अहिंसा, भोग और योग, सदेह और श्रद्धा, राग और विराग का सघर्ष, कृति को रोचक और कलात्मक बनाता है। अन्त मे असत् पर सत की, भोग पर योग की और हिंसा पर अहिंसा की विजय होती है।

मानव जीवन अत्यन्त दुर्लभ है। अनुरागपूर्ण कु कुम के पथ पर चल कर ही वह सार्थक बनता है। पर आज भौतिकता मे ग्रस्त होकर मानव जीवन का कु कुम कीचड से लथपथ है। इन्द्रिय भोग और वैभव-विलास के रपटीले पथ पर वह तिरस्कृत है। वासना के पक से ऊपर उठा कर, उपासना के कमल की ओर उसे उन्मुख करना आज के युग की सबसे बडी आवश्यकता हैं। यह आख्यान इस आवश्यकता की पूर्ति मे न केवल प्रेरक बनता है वरन् उसकी प्रक्रिया को भी रोचक ढग से प्रस्तुत करता है।

आशा है, आज की पीढी इस कृति को पढ कर अपने पाँव कीचड से बाहर निकाल कर कु कुम से मडित करेगी। ऐसे कु कुम से जो उसे राग का नही, अनुराग का, उत्तेजना का नही, सवेदना का, मुक्ति का नही, मुक्ति का रग और आलोक देगा।

—डॉ० नरेन्द्र भानावत
एसोशियेट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४

कथा-क्रम

१

कुंकुम के पगलिये

शहनाई की मधुर ध्वनि गूंज रही थी, मानो सम्पूर्ण मगल संगीतमय वनकर थिरक रहा हो। बीच-बीच मे पडती नगाडे की थाप उल्लासमय नृत्य का सा दृश्य उपस्थित कर रही थी।

श्रीपुर नगर के श्रेष्ठ वर्ग मे यह पहला ही विवाह था जो अतीव सादगी से आयोजित किया गया था और ऐसा करने मे वर का आग्रह ही प्रमुख था। चारो ओर की साजसज्जा सादी थी फिर भी इतनी सुरुचिपूर्ण थी कि देखते ही वनती थी। रग-विरंगे दीपो का तरल प्रकाश सभी चेहरो के गहरे हर्ष को मुखरित कर रहा था। मुखरित भी क्यो न करता, जवकि आज दो सुसस्कारी मन विवाह सूत्र मे वधकर एकमेक होने जा रहे थे।

शालीन वस्त्रालकारो से सजी परिजन महिलाओ के मंगल गीतो की मीठी राग मे डूवते उतराते वर और वधू के चरण धीरे-धीरे अपनी हवेली के मुख्य द्वार की ओर वढ रहे थे। श्रीकान्त और मजुला के रूप मे दो सद्गुण-निष्ठ व्यक्तित्व एक-दूसरे मे समाहित हो गये थे। चरण चल रहे थे परन्तु दोनो के मन अपनी-अपनी कल्पनाओं की उडानें भर रहे थे।

हवेली का मुख्य द्वार आ जाने पर दोनो रुक गये—सभी रुक गये, क्योकि नई वहू को वधाना था—मगल गृह प्रवेश करवाना था। मजुला अव अपने जन्म के घर को छोडकर अपने पति के घर की स्वामिनी वनने वाली थी, अत उसका गृह प्रवेश एक समारोह था। नई आने वाली वहू अव इस नये घर की इज्जत और रोशनी वनेगी—इस घर को सर्वांगत· अपना लेगी। ऐसी इज्जत और रोशनी को अति उल्लास से ही वधाया जाता है। वैसा ही उल्लास सभी परिवार वालो के मन और मस्तिष्क पर आज छाया हुआ था।

फिर मजुला जैसी वहू भी कोई साधारण वहू नही थी। वह धन सम्पन्न परिवार मे जन्मी व पलीपोपी सो तो ठीक किन्तु उसके धनी माता-पिता सद्वृत्तियो तथा सदाचरण के भी परम धनी थे और यह धन उन्होने अपनी वेटी के हृदय में कूट-कूट कर भरा था। अपने माता-पिता की नीतिनिष्ठ छत्रछाया मे मंजुला ने श्रेष्ठ जीवन निर्माण की कला पूरी लगन से सीखी थी और उसमे दक्षता प्राप्त की थी। धार्मिकता तथा

आध्यात्मिकता का रसास्वादन भी मजुला ने खूब किया था और उसने एक सुदृढ आत्म-शक्ति विकसित की थी।

इधर श्रीकान्त का व्यक्तित्व एव आत्म-विकास भी अनूठा था। उसमे निज पुरुषार्थ का भरपूर मान था और उसका सकल्प था कि वह हमेशा अपने जीवन का महल पुरुषार्थ की आधारशिला पर ही खडा करेगा। मात्र सांसारिकता उसके मन-मानस पर कभी छाई नही—वह गृहस्थ धर्म की शुद्धता को आत्मोत्थान का कारण मानता था। इसीलिये मजुला जैसी समस्वभावी वधू के साथ हवेली के मुख्य द्वार पर जब वह खड़ा हुआ तो उसे अपने भविष्य की कल्पना सुखद एव सुन्दर प्रतीत हुई।

नई बहू मजुला की आरती उतारी गई और उसकी पगतलियो पर कुकुम का लेप किया गया, ताकि हवेली के भीतर पड़ने वाला उसका प्रत्येक चरण कुकुम के पगलिये मांडता जाय और कुकुम की ललाई की तरह इस घर के भविष्य को भी मंगलमय बनाता जाय। और यही हुआ—घर मे एक-एक कदम चलते हुए मजुला के लाल-लाल पगलिये घर-आगन मे मडते गये।

कुंकुम के पगलिये माडती हुई मजुला सबसे पहले अपने सासूजी के पास पहुँची और विनयपूर्वक उन्हे प्रणाम करती हुई उनके आशीर्वाद की याचना करने लगी।

श्रीकान्त का परिवार एक छोटा सा परिवार था। कुछ अर्से पहले उसके पिता का देहावसान हो चुका था। घर मे उसके सिवाय उसकी माताजी तथा उसकी छोटी बहिन पद्मा थे और चौथे प्राणी के रूप मे उसकी जीवन सगिनी मजुला इस घर की सदस्य बन चुकी थी।

श्रीकान्त की माताजी ने अपनी नई बहू के माथे पर हाथ रखकर उसको भरपूर आशीर्वाद दिया और कहा—

"मेरी प्यारी बहू, श्रीकान्त मेरा इकलौता बेटा है, मुझे बहुत प्यारा है किन्तु मैं चाहती हूँ कि तुम उससे भी अधिक मेरी प्यारी बनो—यही तुम्हारे सद्गुणी जीवन का सही विकास होगा। तुम्हे इस घर मे जल्दी लाने का मेरा ही मुख्य आग्रह था, क्योकि मुझे तुम बहुत पसन्द आई थी। मैं आज बहुत खुश हूँ और अब मैं इस घर की प्रतिष्ठा को तुम्हारे हाथों मे सौंपते हुए विश्वास रखती हूँ कि वह तुम्हारे हाथ मे सुरक्षित ही नही रहेगी, बल्कि अधिक उज्ज्वल भी बनेगी।"

मजुला ने हाथ जोडकर निवेदन किया—

"माताजी, मैं इस घर को अपने प्राणो की तरह अपना लेना चाहती हूँ। आप सबकी यथायोग्य सेवा करते हुए इस घर की प्रतिष्ठा की जीवन पर्यन्त प्राणप्रण से रक्षा करूगी—यह मैं आपको दृढ़ विश्वास दिलाना चाहती हूँ। बस, आपके आशीर्वाद का हाथ मेरे माथे पर बना रहे।"

श्रीकान्त की माता की आखो से खुशी के आसू बह चले। वह सरल मन-मस्तिष्क वाली महिला थी और पति की अखूट सम्पत्ति घर मे होने के बावजूद भी सादगी से

अपना जीवन विताती थी । श्रीकान्त तो चाहता था कि वह पूरी तरह से स्वावलम्बी होने के वाद ही विवाह करेगा किन्तु उसी के आग्रह से विवाह शीघ्र सम्पन्न किया जा सका था । इसलिये नई वहू पर उसको वहुत आशाएँ थीं ।

उसने मजुला को वार-वार आशीर्वाद दिया और उसे अपनी छाती से लगा लिया । वह उन कुंकुम के पगलियों को बडी उमग से निहार रही थी तो मंजुला भी अपने उन लाल-लाल पगलियो मे अपने गहन दायित्व का वोध ले रही थी । सभी की नजरें उन पगलियो के मडाण को आंक रही थी ।

जव सब अपने-अपने घरो को चले गये तो गद्‌गद् होती सासू ने अपनी नई वहू को आज की रात अपने ही कक्ष मे सुलादी । तव श्रीकान्त भी कुकुम के उन पगलियो को विचित्र मनः स्थिति से देखता हुआ अपने कक्ष मे चला गया ।

\+ \+ \+ \+ \+

श्रीकान्त अपनी शय्या पर लेट तो गया, किन्तु आज उसकी आखो मे नीद नही थी । उसका कारण वही जानता था अथवा उसकी माँ—अन्य कोई नही ।

उसकी आखो मे सगाई से पहले हुए अपनी माता के साथ उसके वार्तालाप तैर आये । मजुला के परिवार वालो ने उसे पसन्द कर लिया था और शीघ्र विवाह की हठ कर रहे थे । उसकी माँ को भी मजुला वहुत पसन्द आ गई थी और वह भी चाहने लगी थी कि विवाह जल्दी हो जाय । एक वही था जिसने सगाई जल्दी न करने का और सगाई कर भी ली जाय तो विवाह जल्दी कतई न करने का अनुरोध किया था । यह वात नही कि मजुला उसे पसन्द नहीं थी—उसे वह वेहद पसन्द आई थी किन्तु अपने सकल्प को वह तोड नही सकता था और सकल्प को पूरा करके वह मंजुला को कष्ट नही पहुँचाना चाहता था ।

श्रीकान्त के पिता घर में अखूट सम्पत्ति छोड़ गये थे । घर धन, धान्य, वस्त्र और अलकारो से भरापूरा था अतः निर्वाह के कष्ट का तो सवाल ही नही था । परन्तु श्रीकान्त के दिल और दिमाग पर जिन श्रेष्ठ सस्कारो की छाप थी, उनमे एक मुख्य सस्कार था—अपने पुरुपार्थ को सवसे ऊपर रखने का और अपने पुरुपार्थ से ही अपना जीवन चलाने का ।

वह पिता की सम्पत्ति को माँ के दूध के समान पवित्र मानता था । माँ का स्तन-पान वालक तभी तक करता है जव तक वह पूर्ण अशक्त होता है और दूसरा कोई पदार्थ ग्रहण नही करता है । इसी तथ्य पर उसका सकल्प वना था कि वह चूँकि अव सशक्त हो गया है, अपने पिता की सम्पत्ति का तनिक भी उपभोग नही करना चाहेगा और अपने पुरुपार्थ पर स्वावलम्वी वनकर ही विवाह करेगा । यही कारण था कि उसने सगाई और विवाह से तव तक इन्कार कर दिया था ।

लेकिन शोक मे डूवी, वृद्ध और खिन्न अपनी मां के सामने उसे थोडा सा झुकना पडा था । माँ मान गई थी कि वह विवाह करते ही एकाकी रात्रि विश्राम करके प्रातः ही अपना पुरुपार्थ आजमाने परदेश के लिये विदा हो जाय, किन्तु पहले किसी से यह वात

न कहे। मजुला उसे वहुत सद्‌गुणी लगी थी और उसका आग्रह था कि विवाह हो जाने से वह तो उसके पास रहेगी और उसकी सेवा करेगी।

श्रीकान्त ने मा और पत्नी के सुख-दुःख को अपने विवेक के तराजू के पलडो मे तोला तो उसे कष्ट हुआ कि मजुला के साथ न्याय नही कर रहा, फिर भी उसे लगा कि मजुला ऐसी है जो उसे कष्ट नहीं मानेगी और माँ की सेवा से स्वय को भी सन्तुष्ट कर लेगी। शायद मजुला की प्रेरणा से वह भी अपने पुरुपार्थ को जल्दी सफल वना सकेगा और अपने आपको मजुला के लिये भी एक आदर्श पति सिद्ध कर सकेगा। यही सव सोचकर उसने सगाई और उसके वाद विवाह की मजूरी दी थी।

विवाह की सम्पन्नता के साथ ही अव उसकी परीक्षा की घडी सामने आ गई थी। उसे मंजुला को समझावुझा कर प्रात काल ही परदेश के लिये विदा होना था। उसका दिल धडक रहा था कि उसके संकल्प के प्रति न जाने अभी भी अपरिचित उसकी मजुला की क्या प्रतिक्रिया होगी?

वह इन्ही विचारो मे खोया हुआ था कि उसे कव नीद आ गई—पता ही नही चला।

+ + +

"आप पिताजी..........और माताजी? दोनो का एक साथ अभी ही यहाँ कैसे पधारना हो गया?

मजुला अभी-अभी तो सोई ही थी और अपने पिताजी तथा माताजी को सामने खडे देखकर अति आश्चर्य मे डूव गई। वह वोली—

"मैं आपके घर से विदा होकर इस घर मे अभी ही तो पहुँची हूँ—अभी तक तो कुकुम के मेरे पगलिये भी गीले ही हैं और आप यहाँ पधार आये—इसका मतलव है कि आप मेरे मोह के वश मे होकर व्यग्र हो उठे। आप दोनो तो गृहस्थी मे रहते हुए भी साधक रहे हैं और उसी साधना की छाप आपने मुझ पर डाली है, फिर यह मोह का आवेश क्यो?"

"वेटी, हम जानते हैं कि तू भी एक साधिका से कम नही है और इसीलिये वहाँ से विदा लेते समय भी मोहग्रस्त होकर तू रोई नही थी। मात्र अनुराग से तेरी आखें कुछ गीली हुई थी। हमने सोचा कि कही हमारी वेटी कुछ कमजोर तो नही हो गई? हम तुझे साहस वंधाने आये हैं कि इस नये जीवन मे तुम्हे कैसी भी परिस्थिति का सामना करना पडे, न तो तुम मोह से घिरोगी और न ही कभी भी धैर्य को छोडोगी। मंजुले, इस तरह चलना कि हम अपनी वेटी पर गर्व कर सकें।"

मंजुला का जीवन निर्माण सुदृढ था, फिर भी उसने सोचा कि कुछ न कुछ ऐसा अवश्य होने वाला है जिसकी सावधानी दिलाने के लिये उसके माता-पिता ने उसके नये घर मे पधारने का कष्ट किया है। उसने उत्तर दिया—

"आप दोनो पूरा विश्वास रखें कि आपने अपनी बेटी को इतना मजबूत बनाया है जो किसी भी परिस्थिति के सामने कमजोर नही होगी और किसी भी सघर्ष से नही डरेगी। यह मैं बहुत ही नम्रतापूर्वक कह रही हूँ.............. ......

"लेकिन मैं तो भूल ही गई आपका स्वागत करना। मैं आपके लिये आसन लगाती हूँ और सभी को बुलाती हूँ........ ...."

मजुला ज्यो ही उठने लगी तो देखा वह उठी कहाँ है ? वह तो अपनी सासूजी के पास अपनी शय्या पर ही सोई हुई है और वहाँ उसके माता-पिता भी नही थे। तब उसको महसूस हुआ कि वह सपना देख रही थी और सपना भी उषाकालीन घडियो मे आया था जिसे बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

वह उठी, नित्य कर्म से निवृत्त हुई तथा सासूजी की शय्या के पास नीचे बैठ गई ताकि वे उठें तो उनके चरणो मे धोग लगावे। वह इन्तजार कर रही थी कि बाहर से उसके पति श्रीकान्त की आवाज आई जिनसे उसका प्रत्यक्ष परिचय होना अभी बाकी था—

"माँ, क्या अभी उठी नही हो ? मुझे विलम्ब हो रहा है न ?"

माँ हडबडाकर उठी और यह कहती हुई जल्दी से बाहर निकल गई कि मैं अभी निवट आती हूँ, तब तक तुम दोनो बात करो।

२

निज पुरुषार्थ सबसे पहले

प्रत्यक्ष रूप से अभी भी अपरिचित अपनी जीवन सगिनी से यो अचानक पहली भेंट करने को श्रीकान्त तैयार नही था। उसे सूझ नही पड रहा था कि वह सबसे पहले क्या कहे—कैसे कहे ? उसे आज ही विदा होना था और पता नही था कि वापिस लौटना कब होगा ? अब जो भी हो, वात तो उसे करनी ही पड़ेगी।

वहुत सोचने के वाद भी श्रीकान्त इतना ही कह सका—"प्रिये, तुम्हारा इस घर मे प्रवेश वडा ही मगलमय तथा आनन्दपूर्ण रहा। मैं तो इस आनन्द को हमेशा याद करता रहूँगा" और वह यकायक चुप हो गया। उसके वोलने का स्वर तथा चुप होने का रुख ऐसा था मानो उसे हर्ष भी हो रहा हो और विषाद भी।

इसका कारण और अभिप्राय न समझ पाने से मजुला विना कोई उत्तर दिये चुप ही रही और गहराई से श्रीकान्त की आँखो मे झांकने लगी कि आखिर वे कहना क्या चाहते हैं ?

आखिर चुप्पी श्रीकान्त को ही तोडनी पडी। वात वदलते हुए वह वोला—"मजुले, तुम अपने खुद के पुरुषार्थ से जीवन चलाने मे विश्वास करती हो अथवा पिता द्वारा छोडी हुई सम्पत्ति से ?"

"पतिदेव, आपकी दोनो वातें मैं स्पष्ट रूप से समझी नही। एक तो मेरे गृह प्रवेश के आनन्द को याद करते रहेंगे—यह कैसे ? आनन्द तो हम दोनों के वीच प्रतिदिन की कर्त्तव्यपरायणता मे निरन्तर वहता ही रहेगा—फिर उसको याद करते रहने की क्या वात है ? किसी के साथ रहते हुए उसे याद नही किया जाता, किसी के अभाव मे ही उसे याद किया जाता है, दूसरे, पुरुषार्थ और सीधी सम्पत्ति की तुलना आप किस सदर्भ मे पूछना चाहते हैं ?"

मजुला की बुद्धि की तेजी से श्रीक [illegible] हुए विना [illegible] दिल को कडा करके मिठास के साथ वोला—"प्रि [illegible] द करने [illegible] खुलासा मैं वाद मे दूंगा। पहले इस वात मे तुम्हार [illegible] कि मैं [illegible] हूँ, यहाँ वैठकर [illegible] डी गई [illegible] करके पुरुषार्थ की कमा [illegible] ने के लिये [illegible]

पहली ही भेंट के प्रारम्भ मे एक बहुत बडे निर्णय मे अपनी राय देने की बात पर मजुला जरा विचार में पड गई। उसे कुछ घटित होने का जो पूर्वानुमान हुआ था, वह जैसे अब घटित होने जा रहा था, किन्तु वह घबराने वाली महिला नही थी। किसी भी अवस्था में वह अपना धैर्य नहीं खो सकती थी। कुछ क्षण विचार कर लेने के बाद उसने स्पष्ट शब्दों मे उत्तर दिया—"पतिदेव, मैं निज पुरुषार्थ में ही सम्पूर्ण रूप से विश्वास करती हूँ। जो अपने ही पुरुषार्थ पर चलता है, उसी की जय-विजय होती है। यहाँ जो आपने अपने लिये ही मुझ से राय मांगी है तो मैं निवेदन करूँगी कि मुझे मेरे सुख की अपेक्षा भी आपका स्वावलम्बन अधिक अभीष्ट होगा।"

मजुला का उत्तर सुनकर श्रीकान्त सन्न सा रह गया। क्या उसे इतनी बुद्धिशालिनी, त्यागवती और ओजस्वी पत्नी मिली है। वह अपनी आशा से भी अधिक आदर्श पत्नी पाकर निहाल सा होने लगा। प्रसन्नता जैसे उसके रोम-रोम से फूटने लगी, वह भाव विह्वल होकर कहने लगा—

"मजु, मैंने सकल्प लिया था कि सशक्त होते ही माँ के दूध की तरह अपने पिता की छोडी हुई सम्पत्ति का उपभोग नही करूँगा और अपने ही पुरुषार्थ से कमाई करने के लिये तैयारी कर लूँगा। बच्चा बडा होने के बाद माँ का दूध नही पीता तो भला मैं ही पिता की सम्पत्ति का उपभोग क्यो करूँ? वह तो न्यास हो चुकी है जिसका सम-वितरण करना होगा। इसलिये मैंने आज ही परदेश के लिये विदा हो जाने का फैसला लिया है'..."

श्रीकान्त तो चुप हो गया, किन्तु ऐसा निर्णय सुनकर मजुला के मन में थोडी हलचल सी हुई। किन्तु तभी उसे अपने उषाकालीन सपने का ध्यान आया और ध्यान आया अपनी अडिग निष्ठा का। जो होना है, उसे शान्त भाव से ही सहन करना चाहिये। किसी भी कारण से कमजोरी लाना उसके स्वभाव में नही था। वह दृढता से बोली—

"मुझे अपना सुख प्रिय नही, जीवन की श्रेष्ठता प्रिय है जो निज पुरुषार्थ की सफलता से ही प्राप्त होती है। आपका उद्देश्य सही और साहसपूर्ण है। आप जीवन के रणक्षेत्र में युद्ध करने के लिये प्रस्थान कर रहे हैं तो मैं आपको तिलक लगाकर खुशी-खुशी विदा करूँगी।"

"तुझ जैसी आदर्श पत्नी से मुझे यही विश्वास था। पत्नी पति को सन्मार्ग की ओर ले जाने वाली होती है और तुम्हारा आदर्श मुझे सर्वदा व सर्वत्र प्रेरणा देता रहेगा। अब तो तुम यह भी समझ गई होगी कि मैं तुम्हारे गृह प्रवेश के आनन्द को कितने चाव से रोज याद करता रहूँगा? तुम सी गुणशील पत्नी को पाकर मैं अपने आपको अत्यन्त भाग्यशाली मानता हूँ।"

"यह आपके हृदय की उदारता है जो मुझे आप ऐसी समझ रहे हैं। मै आप जैसे पुरुषार्थी पति को पाकर क्या कम धन्य हूँ जो अपने पुरुषार्थ के लिये बडे से बडे सुख का बलिदान दे रहा है? आप तो मुझे अपनी आज्ञा बताइये।"

२

निज पुरुषार्थ सबसे पहले

प्रत्यक्ष रूप से अभी भी अपरिचित अपनी जीवन सगिनी से यो अचानक पहली भेंट करने को श्रीकान्त तैयार नही था। उसे सूझ नही पड रहा था कि वह सबसे पहले क्या कहे—कैसे कहे ? उसे आज ही विदा होना था और पता नही था कि वापिस लौटना कब होगा ? अब जो भी हो, बात तो उसे करनी ही पड़ेगी।

बहुत सोचने के बाद भी श्रीकान्त इतना ही कह सका—"प्रिये, तुम्हारा इस घर मे प्रवेश बडा ही मगलमय तथा आनन्दपूर्ण रहा। मैं तो इस आनन्द को हमेशा याद करता रहूँगा" और वह यकायक चुप हो गया। उसके बोलने का स्वर तथा चुप होने का रुख ऐसा था मानो उसे हर्ष भी हो रहा हो और विषाद भी।

इसका कारण और अभिप्राय न समझ पाने से मजुला बिना कोई उत्तर दिये चुप ही रही और गहराई से श्रीकान्त की आँखो मे झाँकने लगी कि आखिर वे कहना क्या चाहते हैं ?

आखिर चुप्पी श्रीकान्त को ही तोडनी पडी। बात बदलते हुए वह बोला—"मंजुले, तुम अपने खुद के पुरुषार्थ से जीवन चलाने मे विश्वास करती हो अथवा पिता द्वारा छोड़ी हुई सम्पत्ति से ?"

"पतिदेव, आपकी दोनो बातें मैं स्पष्ट रूप से समझी नहीं। एक तो मेरे गृह प्रवेश के आनन्द को याद करते रहेगे—यह कैसे ? आनन्द तो हम दोनो के बीच प्रतिदिन की कर्त्तव्यपरायणता मे निरन्तर बहता ही रहेगा—फिर उसको याद करते रहने की क्या बात है ? किसी के साथ रहते हुए उसे याद नही किया जाता, किसी के अभाव मे ही उसे याद किया जाता है, दूसरे, पुरुषार्थ और सीधी सम्पत्ति की तुलना आप किस सदर्भ मे पूछना चाहते हैं ?"

मजुला की बुद्धि की तेजी से श्रीकान्त प्रभावित हुए बिना नही रह सका, दिल को कडा करके मिठास के साथ बोला—"प्रिये, आनन्द को याद करने की बात का खुलासा मैं बाद मे दूँगा। पहले इस बात मे तुम्हारी राय चाहता हूँ कि मैं जबकि सशक्त हो गया हूँ, यहाँ बैठकर पिता द्वारा छोडी गई सम्पत्ति को उपभोग करके जीवन चलाऊँ या निज पुरुषार्थ की कमाई से जीवन चलाने के लिये आज ही परदेश चला जाऊँ ?"

पहली ही भेंट के प्रारम्भ मे एक बहुत बडे निर्णय मे अपनी राय देने की बात पर मजुला जरा विचार में पड गई। उसे कुछ घटित होने का जो पूर्वानुमान हुआ था, वह जैसे अब घटित होने जा रहा था, किन्तु वह घबराने वाली महिला नही थी। किसी भी अवस्था में वह अपना धैर्य नहीं खो सकती थी। कुछ क्षण विचार कर लेने के बाद उसने स्पष्ट शब्दों मे उत्तर दिया—"पतिदेव, मैं निज पुरुषार्थ में ही सम्पूर्ण रूप से विश्वास करती हूँ। जो अपने ही पुरुषार्थ पर चलता है, उसी की जय-विजय होती है। यहाँ जो आपने अपने लिये ही मुझ से राय माँगी है तो मैं निवेदन करूँगी कि मुझे मेरे सुख की अपेक्षा भी आपका स्वावलम्बन अधिक अभीष्ट होगा।"

मजुला का उत्तर सुनकर श्रीकान्त सन्न सा रह गया। क्या उसे इतनी बुद्धिशालिनी, त्यागवती और ओजस्वी पत्नी मिली है। वह अपनी आशा से भी अधिक आदर्श पत्नी पाकर निहाल सा होने लगा। प्रसन्नता जैसे उसके रोम-रोम से फूटने लगी, वह भाव विह्वल होकर कहने लगा—

"मजु, मैंने सकल्प लिया था कि सशक्त होते ही माँ के दूध की तरह अपने पिता की छोडी हुई सम्पत्ति का उपभोग नही करूँगा और अपने ही पुरुषार्थ से कमाई करने के लिये तैयारी कर लूँगा। बच्चा बडा होने के बाद माँ का दूध नही पीता तो भला मैं ही पिता की सम्पत्ति का उपभोग क्यो करूँ? वह तो न्यास हो चुकी है जिसका समवितरण करना होगा। इसलिये मैंने आज ही परदेश के लिये विदा हो जाने का फैसला लिया है…"

श्रीकान्त तो चुप हो गया, किन्तु ऐसा निर्णय सुनकर मजुला के मन मे थोडी हलचल सी हुई। किन्तु तभी उसे अपने उषाकालीन सपने का ध्यान आया और ध्यान आया अपनी अडिग निष्ठा का। जो होना है, उसे शान्त भाव से ही सहन करना चाहिये। किसी भी कारण से कमजोरी लाना उसके स्वभाव मे नही था। वह दृढता से बोली—

"मुझे अपना सुख प्रिय नही, जीवन की श्रेष्ठता प्रिय है जो निज पुरुषार्थ की सफलता से ही प्राप्त होती है। आपका उद्देश्य सही और साहसपूर्ण है। आप जीवन के रणक्षेत्र में युद्ध करने के लिये प्रस्थान कर रहे है तो मैं आपको तिलक लगाकर खुशी-खुशी विदा करूँगी।"

"तुझ जैसी आदर्श पत्नी से मुझे यही विश्वास था। पत्नी पति को सन्मार्ग की ओर ले जाने वाली होती है और तुम्हारा आदर्श मुझे सर्वदा व सर्वत्र प्रेरणा देता रहेगा। अब तो तुम यह भी समझ गई होगी कि मैं तुम्हारे गृह प्रवेश के आनन्द को कितने चाव से रोज याद करता रहूँगा? तुम सी गुणशील पत्नी को पाकर मैं अपने आपको अत्यन्त भाग्यशाली मानता हूँ।"

"यह आपके हृदय की उदारता है जो मुझे आप ऐसी समझ रहे हैं। मै आप जैसे पुरुषार्थी पति को पाकर क्या कम धन्य हूँ जो अपने पुरुषार्थ के लिये बडे से बडे सुख का बलिदान दे रहा है? आप तो मुझे अपनी आज्ञा बताइये।"

"हम गृहस्थी के रथ के दोनो समान पहिये हैं, मैं भला तुम्हें आज्ञा देने का अधिकारी कैसे हूँ ? मेरी अपेक्षा यह है कि तुम मेरी बूढी माँ की सेवा करके उसे पूरा-पूरा सन्तोष दोगी और घर की प्रतिष्ठा को बढाओगी।"

"मैं विश्वास दिलाती हूँ कि आपकी अनुपस्थिति मे मैं माताजी की सेवा तथा घर का रख-रखाव पूरी शालीनता से करती रहूँगी। आप निश्चिन्त रहें।"

श्रीकान्त ने कुछ रुककर कहा—"दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि हम अनुराग के धागो से जुडे है, मोह दशा हमे कमजोर नही बनावे। भीतर से स्वस्थ रहने वाले दम्पती एक दूसरे के आन्तरिक उत्थान की बात सोचते हैं—स्वय कष्ट सह लेते हैं पर दूसरे को कमजोर नही करते हैं। तुम्हारा साहस तुम्हें कभी हारने न दे, मजुले।"

"मेरी दृढ भावना है और आपकी मगल कामना—फिर मैं घोषणा कर सकती हूँ कि ससार की कोई शक्ति मुझे कभी भी कमजोर नही बना सकेगी चाहे सकट कितना ही विकट क्यो न हो ? आप मुझ पर पूरा विश्वास रखें।"

अब श्रीकान्त को क्या चाहिये था ? उसके उद्देश्य मे सहयोग देने वाली ही नही, उससे भी बढकर उद्देश्य रखने वाली मजुल मजुला उसे मिली थी। वह कृतकृत्य हो गया था। ऐसी सन्नारी को कहने को क्या रह गया था ? उसके होठो पर एक मुस्कुराहट बिखर आई—वह मुस्कुराहट शरीर की नही, आत्मा की दिव्य मुस्कुराहट थी जिसे मजुला ने अपने भीतर समा ली। इस मुस्कुराहट के माध्यम से दोनो सुसंस्कारी मन एकमेक हो गये। शरीर-सम्बन्ध के बिना भी दोनो की आत्मीयता एक हो गई थी। श्रीकान्त मे मजुला समा गई थी और मजुला मे श्रीकान्त। श्रीकान्त को लगा जैसे इस घर आँगन मे ही नही, उसके जीवन पथ मे भी मजुला के कु कुम के पगलिये गहराई से अकित हो गये थे।

× × ×

मंजुला का रोम-रोम हर्ष से विभोर हो गया था। जब पति पत्नी के आदर्श एक हो जाय तो फिर उनके जीवन मे दोपना कहाँ रह जाता है ? श्रीकान्त से उसकी पहली भेट क्या हुई थी कि जैसे मधु यामिनी ही बीती हो। वह खुशी के झरने मे नहा रही थी।

अन्तरात्मा का आनन्द कैसा होता है जो किसी भी बाहरी पदार्थ पर टिका हुआ नही होता ? विवाह होते ही बिना शरीर सम्बन्ध किये पति अज्ञात समय के लिये परदेश जा रहे हैं और सोचिये कि मजुला खुशी के झरने मे नहा रही है। जिनका मन लौकिकता से ऊपर उठता है, वे ही अलौकिक आनन्द का अनुभव कर सकते हैं। मंजुला को महसूस हो रहा था कि श्रीकान्त की एक ही मुस्कुराहट में उसे अपने जीवन का प्राप्य मिल गया था। दो दीपशिखाएँ एक दूसरे की प्रकाश-रेखा को छूकर एक हो गई थीं।

मजुला ने मन ही मन पति की पुरुषार्थ भावना की सराहना की और स्वय भी सकल्प लिया कि वह इस घर मे बहुत ही सादगी से अपना जीवन चलायगी और सासूजी की तन-मन से सेवा करके उन्हे सतोष देगी। उसने निश्चय किया कि वह अपने साधना

क्रम को भी बराबर बनाये रखेगी ताकि आत्मशक्ति का निरन्तर विकास होता जाय और प्राणीमात्र के साथ समत्व भावना फैलती जाय ।

श्रीकान्त और मजुला दोनो आमने-सामने बैठे थे, किन्तु दोनो इतने विचारमग्न थे कि दोनो शरीर से ही वहाँ थे, वरना वे आदर्शों के दिव्य पथ पर आत्मलीन होकर विचरण कर रहे थे । दोनो के मुखमडल पर एक अद्‌भुत तेज चमक रहा था ।

"मुझे अधिक विलम्ब तो नही हुआ श्रीकान्त, और क्यो रे, क्या तू आज ही चला जायगा ?"—श्रीकान्त की माँ जल्दी-जल्दी कदम बढाते हुए अपने कक्ष की ओर आई, जहाँ श्रीकान्त और मजुला दोनो उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे ।

"माँ, तुम्हें मैं अपना सकल्प तो बता ही चुका हूँ"—श्रीकान्त ने धीरे से कहा ।

"हाँ भाई बता चुका है, मगर क्या अपनी मा की एक बात और नही मान सकता ?"

"माँ की एक नही, हजार बातें मानने के लिये तैयार हूँ, किन्तु क्या तुम पसन्द करोगी माँ, कि तुम्हारे बेटे का सकल्प टूट जाय ? मगर तुम्हारी वह एक बात क्या है ?"

"बस यही कि कुछ दिन ठहर जाओ, फिर परदेश चले जाना ।"

"माँ, मोह व्यर्थ है । तुम्हारी मजुला ने भी साहस के साथ मुझे विदा देने की तैयारी कर ली है, फिर तुम्हें तो मुझे अधिक साहस देना चाहिये । तुम्हारा आशीर्वाद मुझे मेरा संकल्प पूरा करने का बल देगा । तुम मुझे आशीर्वाद दो और परदेश प्रस्थान करने की आज्ञा ।"

यह सुनकर माँ का हृदय विह्वल हो उठा । विवाह होते ही इकलौता बेटा उससे दूर हो जाय—यह माँ को कैसे सहन होता ? उसकी आँखो मे आँसू तैरने लगे । यह देखकर मजुला बोली—

"माताजी, आपके पुत्र एक अच्छा उद्‌देश्य पूरा करने के लिये परदेश जा रहे हैं तो उसमे सभी को सहायक बनना चाहिये । यह हमारे लिये गौरव की बात होगी कि वे स्वावलम्वी बनकर पुरुषार्थ का प्रभाव कायम करेंगे । मैं आपके पुत्र की कमी तो दूर नही कर सकूँगी किन्तु एकनिष्ठ सेवा करके उस कमी को अखरने नही दूँगी—यह मेरा पूरा प्रयास रहेगा ।"

जब पत्नी ही अपने सुखो की तिलाजलि देकर वीरतापूर्वक अपने पति को विदा देने के लिये प्रस्तुत है तो माँ को भी धीरज धारना चाहिये और बेटे को निज पुरुषार्थ के पथ पर आगे बढते रहने की प्रेरणा देनी चाहिये । श्रीकान्त की माँ ने थोड़ा सहज होते हुए कहा—

"प्यारे बेटे, तुमने धार लिया है तो तुम जाओगे, मैं तुम्हे रोकूँगी नहीं । मैं आशीष देती हूँ कि तुम अपने उद्‌देश्य मे पूरी सफलता प्राप्त करो और जल्दी लौटकर मेरे पास आओ.... ।"

फिर श्रीकान्त को आश्वस्त करते हुए आगे कहने लगी—"श्रीकान्त, मैं तेरा रूप अपनी वहू मे देखूँगी। मुझे विश्वास होने लगा है कि वह मेरी सेवा मे कोई कसर उठा नहीं रखेगी। मैं भी इसे सहेज कर रख सकूँ तो यह मेरा परम सौभाग्य होगा।"

उस समय मजुला ने उठकर अपनी सासूजी के एक वार और धोग लगाई और कामना प्रकट की—"माताजी, आपके स्नेह की छत्रछाया मुझे वरावर मिलती रहे—ऐसी मेरी आकाक्षा है। मैं आपकी वेटी ही तो हो गई हूँ।" यह सुनते ही माँ ने अपनी इस नई वेटी को गले से लगा लिया। वातावरण वडा भावनापूर्ण हो गया था।

जव वातावरण कुछ हल्का हुआ तो श्रीकान्त ने माँ को फिर धोग लगाकर नम्रता से निवेदन किया—"माँ, मुझे अव आज्ञा और विदा दो कि मै प्रस्थान करूँ और तुम्हारे आशीर्वाद से अपने पुरुषार्थ को सफल वनाऊँ····" फिर अपनी अगुली आगे करके वह माँ से वोला—"परम स्नेह से दी हुई तुम्हारी यह मुद्रिका (अगूठी) मैं इसी तरह अपनी इस अगुली मे पहने रहूँगा और तुम्हारे इस वात्सल्य का पुण्य स्मरण करता रहूँगा। मा, तुम्हारी वहू वहुत सद्गुणी है, उसे अपनी वेटी ही समझना····।"

माँ ने श्रीकान्त और मजुला को स्नेह की थपकी दी, मगर भावावेग मे वोली कुछ नहीं और खुद भी दौड-दौड कर श्रीकान्त की विदाई की तैयारियो मे जुट गई।

३
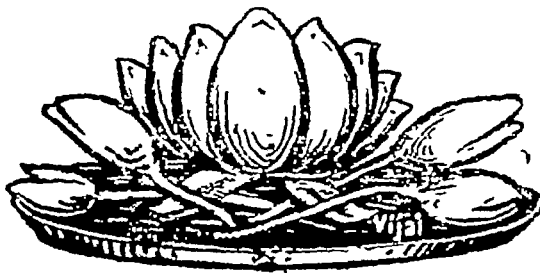
अपना भाग्य बनाने की दिशा में

सैंकडों कोस की कठिन यात्रा पूरी करके श्रीकान्त परदेश पहुँचा श्रौर एक धर्म-शाला मे ठहरा। कर्त्तव्य की दृष्टि से उसके मन मे एक नया उत्साह तरगें ले रहा था कि उसे अपने ही हाथो अपना भाग्य बनाना है। वह सोच रहा था कि जल्दी से जल्दी वह पहले अपने आपको स्वावलम्बी बनाले श्रौर धीरे-धीरे अर्जन के क्षेत्र मे वह नीतिपूर्वक इस तरह आगे बढे कि सारे परिवार का निर्वाह अपनी ही कमाई से करने लगे। एक बार व्यापार का ढाचा जम जाय तो वह अपने नैतिक बल श्रौर बुद्धि कौशल से उसमे शीघ्र ही प्रगति कर लेगा तथा अपने परिवार को समृद्धि की दिशा मे अग्रसर बना लेगा।

लेकिन समस्याएँ भी कम जटिल नही थी—पूँजी का जुगाड करना, अपना नित्य प्रति का निर्वाह चलाना तथा फिर अर्जन की दिशा मे आगे बढते जाना। सबसे बडी कठिनाई तो मूल आधार कायम करने की ही थी।

अरे श्रीकान्त, तुम यहाँ कब आ गये ?"

श्रीकान्त ने आगन्तुक सज्जन को देखा, किन्तु वह उन्हें पहचान नही पाया। एक मम्पन्न लगने वाला सार्थवाह जैसा पुरुष उसके सामने खडा था। श्रीकान्त ने उठकर उसका सम्मान किया लेकिन सूनी आँखो से उसे देखता ही रहा।

"श्रीकान्त, शायद तुमने मुझे पहचाना नहीं श्रौर पहचानोगे भी कैसे ? मुझे यहाँ आये हुए कई वर्ष हो गये हैं। मैं भी श्रीपुर का ही निवासी हूँ। कहो, तुम्हारे पिताजी-माताजी, बहिन सब कुशल तो हैं ?"

पिताजी का उल्लेख सुनकर श्रीकान्त की आखें भर आई श्रौर वह तुरन्त कुछ उत्तर नहीं दे सका।

वह सार्थवाह ही फिर बोला—"अरे, तुम्हारा मुँह क्यों उतर गया ? क्या पिताजी को बहुत ज्यादा घाटा लग गया जिसके कारण तुम्हें परदेश के लिये निकलना पडा है ?"

अब श्रीकान्त ने गभीरता से उत्तर दिया—"भाई साहब, कुछ अर्सा हुआ पूज्य पिताजी का देहावसान हो गया तथा माताजी के आग्रह से मुझे विवाह भी करना पडा। घर मे पिताजी की अखूट सम्पत्ति है, लेकिन समर्थ हो जाने के बाद माँ के पवित्र दूध की

तरह उस पवित्र सम्पत्ति का उपयोग करना मैंने उचित नहीं समझा और अपना भाग्य स्वय बनाने के विचार से खाली हाथ परदेश के लिये निकल पड़ा।"

"अच्छा, तो क्या कही कुछ काम जमाया है ?"

"नहीं, भाई साहब, मैं कल सायकाल ही यहाँ पहुँचा हूँ और अभी सोच ही रहा था कि क्या कुछ कैसे किया जाय कि आपका पधारना हो गया।"

"चलो यह बहुत अच्छा हुआ श्रीकान्त, तुम मेरी भागीदारी मे आ जाओ। मैं जानता हूँ कि तुम व्यापार मे दक्ष बुद्धिशाली पिता के कुशल पुत्र हो—जल्दी ही सफलता पा लोगे।"

"आपका सरक्षण मिल जाय तो मैं अपना सौभाग्य मानूँगा। क्या मैं आपका शुभ परिचय जान सकता हूँ ?"

"यह तो मैं कह ही चुका हूँ कि मैं भी श्रीपुर का ही निवासी हूँ, मेरा नाम धनसुख है, बाकी साथ रहेंगे तब जान जाओगे। मेरा प्रस्ताव है कि पूँजी जितनी चाहिये मुझ से लो, उत्साहपूर्वक व्यापार चलाओ और लाभ मे दोनो का भाग बराबर। क्यो मजूर है न ?"

अधे को मिल जाय दो आँखें, फिर उसे क्या चाहिये ? श्रीकान्त ने खुशी-खुशी कहा—"भाई साहब, आपका प्रस्ताव मुझे मजूर है।"

यह सुनते ही धनसुख सार्थवाह ने श्रीकान्त को अपने गले लगा लिया और कहा—"अब तुम मेरे साथ रहोगे भाई। चलो, अभी ही चले चलो।" और धनसुख श्रीकान्त को उसी समय अपने साथ ले गया, उसके निवास की समुचित व्यवस्था की और शाम का खाना खाने के बाद दोनो विचार करने लगे कि व्यापार की क्या योजनाएँ हो ?

× × ×

श्रीकान्त ने अपनी भरपूर बुद्धि, लगन और कुशलता से धनसुख सार्थवाह के साथ अपने नये व्यापार को जमाना शुरू किया। अब तक धनसुख का व्यापार उस नगर तक ही सीमित था और उसमे विशेष लाभ नही होता था। श्रीकान्त ने धनसुख के व्यापार को सुदूर क्षेत्रो तक फैलाना चालू किया। वह सुदूर क्षेत्रो मे अधिक उपलब्ध माल को वहाँ कम दामो मे प्राप्त करके यहाँ लाता और अच्छे दामो मे वह माल हाथोहाथ यहाँ बिक जाता। इस तरह इधर के माल को वहाँ पहुँचाता और उसमे भी अच्छा लाभ कमाता।

किन्तु माल को इधर से उधर और उधर से इधर लाने-ले जाने मे कम खतरे नही थे। बीहड जगलो और बाधाओ को तो पार करना ही पडता था लेकिन जान भी जोखिम मे पडी रहती थी। बीच मे कई चोर पल्लियाँ पडती थी जिनका धधा ही आते-जाते सार्थवाहो के काफिलो को लूटना होता था। वे माल भी लूट लेते और काफिले वालो को मारते पीटते थे। यह श्रीकान्त का ही साहस था कि इन सारी कठिनाइयो के बावजूद उसने उस व्यापार को बहुत लाभप्रद बना दिया।

धनसुख इस बढते हुए लाभ को देखकर चकरा सा गया था। इतने वर्षों के व्यवसाय मे वह जितना नही कमा सका, उससे अधिक अब कमाई होने लगी थी। कहा है तृष्णा वैतरणी नदी है—उसका कही पार नही आता। ज्यो-ज्यो धन बढ़ने लगा, धनसुख की तृष्णा अधिक से अधिक प्राप्त करने की ओर बढने लगी। इस तृष्णा ने उसके दिल मे ऐसा ज्वार पैदा कर दिया कि रात-दिन हाय-हाय का दौरा लगने लगा। अब तो उसका मन ऐसा हो गया कि कैसे भी मिले, नीति से अथवा अनीति से भी ज्यादा से ज्यादा धन कमाया जाय ताकि एक दिन वह अपनी हवेली पर एक नही, कई ध्वजाएँ फहरा सके।

इस बीच एक घटना घटी। श्रीकान्त का स्वास्थ्य कुछ ठीक नही था, इस कारण इस बार का काफिला लेकर धनसुख को जाना पडा। मार्ग मे एक चोर पल्ली आई, वहाँ उसके काफिले को चोरो ने घेरा और उसे लूटना चाहा। तभी धनसुख आगे बढा और चोरो के सरदार से कहने लगा—

"सरदार साहब, आप भले ही मुझे लूट लो मगर मैं आपसे एक काम की बात करना चाहता हूँ जिससे हमेशा के लिये हमारा और आपका खूब लाभ होता रहेगा।"

चोरो का सरदार भी यह बात सुनकर प्रभावित हुआ। उसने पास आकर पूछा—"बोलो सेठ, क्या कहना चाहते हो ?"

दोनो जरा एक तरफ हटकर दूर चले गये तब धनसुख ने समझाया कि आप काफिलो का माल लूट तो लेते हो लेकिन बहुत सारा माल इधर उधर न ले जा सकने के कारण फालतू बरबाद होता होगा सो हमेशा के लिये अपने सौदा कर लेते हैं कि आपका लूटा हुआ सारा माल मैं खरीदता रहूँगा और आपको नकद भुगतान करता रहूँगा। यह प्रस्ताव सरदार के मन पर चढ गया। हकीकत मे लूटा हुआ बहुत माल बेकार होता था और इस कारण उस तरह के काफी माल को वे लूटते भी नहीं थे जिसे वे फरोख्त नही कर सकते थे। इस प्रस्ताव से उनका लाभ कई गुना बढ सकता था और वे अपनी लूट का दायरा भी बढा सकते थे क्योकि सारे माल का भुगतान उन्हे नकद मुद्रा मे मिल सकेगा। बस दोनो के बीच इस करार के साथ दोस्ती हो गई।

इस तरह धनसुख हर चोर पल्ली पर ऐसे करार करता गया और उपलब्ध माल को कौडियो के दाम खरीदता गया। जब वह पूरा दौरा करके अपने नगर को लौटा तो उसका दिल बल्लियो उछल रहा था। वह जल्दी से जल्दी श्रीकान्त को बताना चाहता था कि इस दौरे मे पहले से चार गुना लाभ हुआ है। अब हर दौरे मे लाभ की मात्रा बराबर बढती ही चली जायगी।

श्रीकान्त के पास पहुँचकर धनसुख ने उसके स्वास्थ्य का हाल चाल पूछा और उसकी तबियत ठीक जानकर खुशी जाहिर की। उसके बाद उसने अपने दौरे का सारा हाल बताया तथा चोरो के सरदारो के साथ किये गये करारो का जिक्र किया। वह भी

वताया कि अब उनके द्वारा कई करोडो की सम्पत्ति इकट्ठी करने मे अधिक समय नही लगेगा ।

वडी धीरज के साथ श्रीकान्त ने यह सव सुना, उसके मन मे आक्रोश आने लगा किन्तु उसको दवाकर उसने प्रेमपूर्वक कहा—"धनसुख भाई साहव, धन के लालच मे आपने यह क्या किया ? हम नीति से व्यापार करने वाले हैं चाहे लाभ कम ही मिले । और आपने चोरो के सरदारो के साथ ऐसे करार करके अनीति की हद कर दी है । अव काफिलो की लूट और खूनखरावा वहुत वढ जायगा और उस लूट का माल आपके घर मे पहुँच कर क्या आपको सुख से रहने देगा ? करोडो का धन इकट्ठा करने की तृष्णा मे यह तो आप अकाज कर आये हैं, भाई साहव ।"

धनसुख से तुरन्त कुछ कहते नही वना, किन्तु उसके मन के भीतर वैठे धन के लालच ने तुरन्त चाल पकडी । भाव क्रूर होने लगे, आँखो मे ललाई आने लगी और कठोर होकर फूट पडी—"श्रीकान्त, कैसे भी मिले, मुझे तो अपार धन चाहिये । मैं नीति-अनीति के चक्कर मे नही पडना चाहता । तुम्हारी नीति तुम अपने पास रखो । मैंने तो करार कर लिये हैं और उनका वरावर पालन किया जायगा ।" श्रीकान्त ने धनसुख का यह वीभत्स रूप देखा तो हृदय उसके पाप के प्रति घृणा से भर उठा । अव उसे समझाने की कोई गुंजाइश नही दिखाई दी ।

श्रीकान्त खडा हो गया और हाथ जोडकर शान्ति से वोला—"भाई साहव, मेरे लिये तो नीति पहले और लाभ वाद मे है । इसलिये अव अपनी भागीदारी निभेगी नही ।" कुछ रुककर उसने आगे कहा—"मैं अभी ही आपसे विदा लेना चाहूँगा । आपसे अव तक कोई कहा सुनी हुई हो, उसके लिये माफी चाहता हूँ ।" इतना कहकर वह धीरे-धीरे हवेली से वाहर हो गया किन्तु धनसुख का लोभी मन पिघला नही । नीति से व्यापार जमा कर लाभ कमाने के श्रीकान्त के अहसानो को भी वह भूल गया ।

× × ×

श्रीकान्त फिर खाली हाथ सडक पर आ गया था । उसने अपनी नैतिकता की रक्षा के लिये अव किसी के भी साथ भागीदारी नही करने का निश्चय किया और सोचा कि वह एकाकी ही कोई धंधा करेगा ताकि उसकी नैतिकता को कभी भी किसी भी तरह की आँच नही आवे ।

इधर-उधर जानकारी लेने के वाद श्रीकान्त को जचा कि दूर वियावान जगलो मे रत्नो की खानें वताई गई हैं । उनकी खोज की जाय और रत्न-व्यवसाय शुरू किया जाय जिसमे नीति की रक्षा भी होगी तो समृद्धि भी जल्दी आ सकेगी ।

यह विचार करके श्रीकान्त उस दिशा की ओर वढ चला । वह अध्यवसायी था और साहसी भी कम नहीं था । राह मे आई वाधाओ का मुकावला करते हुए वह जंगल

के भीतरी चट्टानी इलाको मे पहुँच गया किन्तु खानो का कोई निशान नही दिखाई दिया। जब वह बहुत थक गया तो इधर-उधर किसी अच्छे स्थान की तलाश करने लगा तभी उसे कुछ ऊँचाई पर एक गुफा दिखाई दी। सोचा—गुफा मे कोई तापस आदि हुआ तो खानो का भी पता चल सकेगा। वह गुफा मे घुसा तो वास्तव मे वहाँ एक तापस ध्यान मे बैठा हुआ था। श्रीकान्त भी यह सोचकर वहाँ की ठडक मे बैठ गया कि इनका ध्यान टूटेगा तब तक वह आराम कर लेगा और फिर इनसे खानो का मार्ग पूछेगा व अपने गंतव्य की ओर आगे बढेगा। कडी थकान के बाद श्रीकान्त को वहाँ विश्राम करना बहुत अच्छा लगा।

तभी वहाँ एक विद्याधर अपने एक साथी के साथ गुफा मे घुसा। वे दोनो कुछ बहस करते हुए आ रहे थे और गुफा मे तापस व श्रीकान्त जैसे ओजस्वी तरुण को देखकर विद्याधर बोला—"मित्र, यहाँ हमारे विवाद का कुछ निर्णय हो सकेगा।"

तापस तो ध्यान मे थे। श्रीकान्त ने ही पूछा—"आप कौन हैं और यहाँ किस मार्ग से होकर पधारे हैं?"

"हम विद्याधर है और पृथ्वी के मार्ग से नही चलते, आकाश-मार्ग से चलते हैं। हमारा विमान 'हसयान' बाहर रखा हुआ है। लेकिन तुमने मार्ग के लिये क्यो पूछा?"

"मैं इस जगल मे रत्नो की खानो का पता पाने के लिये भटक रहा हूँ। इन योगीजी से यही पूछना चाहता था किन्तु ये तो ध्यान मे है। इसी कारण मैंने आपसे भी मार्ग का पता पूछ लिया।"

"अच्छा तरुण, यह तुम्हे फिर बतायेंगे। अभी तो मैं अपने इस साथी के साथ एक विवाद मे उलझा हुआ हूँ। मेरा मानना है कि आज की रात इतने शुभ नक्षत्रों का योग है जिसमे कोई सद्गृहस्थ योग साधे तो वह भारी लाभ उठा सकता है और योगी भी इस योग को साधे तो वह सिद्धियाँ पा सकता है। मेरा साथी कहता है कि मैं विश्वास नही करता। मैं चाहता हूँ कि इस नक्षत्र योग का लाभ प्रत्यक्ष रूप से दिखाकर मेरे साथी को आश्वस्त कर दू।"

श्रीकान्त सुनता रहा, इसमे उसको उत्तर देने के लिये कुछ था नही। किन्तु विद्याधर ने आगे कहा—"नक्षत्र चाहे आकाश मे होते हैं किन्तु मैं मानता हूँ कि उनका धरती के प्राणियो पर प्रभाव गिरता है।" तभी उसका साथी बीच मे बोल पडा—"यह सब तुम्हारी कल्पना है। इतनी दूर रहे हुए नक्षत्रो का भला यहाँ के प्राणियो पर क्योकर असर पडेगा? अगर तुम इसका प्रत्यक्ष उदाहरण ही प्रस्तुत करना चाहते हो तो इस तेजस्वी तरुण से कुछ बात करें।" श्रीकान्त चौंका कि इस बहस मे उससे क्या बात की जा सकती है?

विद्याधर को यह सुझाव एकदम पसन्द आ गया। वह श्रीकान्त की ओर मुडा और पूछने लगा—

"क्यो तरुण तुम विवाहित हो ?" श्रीकान्त ने हाँ भरी तो वह बोला—"क्या तुम हमारे इस विवाद का समाधान निकालने मे सहायक बन सकते हो ?"

"वह कैसे ?"

"आज रात का नक्षत्र-योग इतना शुभ है कि यदि कोई सद्गृहस्थ अपनी धर्मपत्नी का सहवास करे तो उसको ऐसे भाग्यशाली पुत्र-रत्न की प्राप्ति होगी जो शरीर, बुद्धि, लावण्य और आकृति आदि मे तो श्रेष्ठ होगा ही किन्तु जब भी वह हँसेगा तो उसके मुह से एक बहुमूल्य लाल नीचे गिरेगी। हम तुम्हारे माध्यम से अपनी विद्या के इस प्रयोग को सिद्ध करना चाहते हैं क्योकि तुम हमे अत्यन्त विचक्षण तथा सच्चरित्र तरुण प्रतीत हुए हो। और तुमने रत्नो की खानो का पता भी जानना चाहा है तो इस तरह तुम्हे एक अमूल्य रत्न और लालो की खान ही क्यो न दे दें ? बोलो, अब तो तैयार हो न ?"

श्रीकान्त सब सुनकर चकित सा रह गया कि रत्नो की खोज उसे कहाँ तक ले आई ? अपना भाग्य बनाने की दिशा मे वह निकला है तो इस रत्न प्राप्ति के अवसर को वह भला कैसे ठुकरादे ? किन्तु इसके बीच उसे एक बाधा दिखाई दी, इसलिये वह बोला— "श्रीमान्, मेरा घर यहाँ से सैंकडो कोस की दूरी पर है और सूर्यास्त होने वाला है अत आज की रात मै घर पहुँच ही कैसे सकता हूँ ?"

विद्याधर ने तुरन्त कहा—"भाई, इसका प्रबन्ध मैं करूँगा। हम जिस हंसयान से यहाँ पहुँचे हैं वह बाहर रखा हुआ है। वह कुछ घटो मे ही आकाश मार्ग से तुम्हे तुम्हारे घर पर पहुँचा देगा। यह विमान तनिक भी आवाज नही करता अत. तुम अपने मकान की छत पर चुपचाप उतर सकते हो। किसी को कानोकान भी खबर नही होगी। बस शर्त यही है कि सूर्योदय से पूर्व तुमको हर हालत मे यहाँ पहुँच जाना चाहिये वरना अनिष्ट हो सकता है।"

"मैं आपका विश्वास हर हालत मे निभाऊँगा और सूर्योदय से पूर्व लौट आने मे किसी भी बाधा को आडे नही आने दूँगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है।"

"तो शीघ्रता करो तरुण और हमारे इस ज्योतिषीय से सम्बन्धित प्रयोग को सत्य सिद्ध करो।" विद्याधर फिर अपने साथी की ओर मुडा और बोला—"भाई, यह तरुण प्रातःकाल लौट आवे तब तक हम यही विश्राम करते हैं और योगीजी का सत्सग करते हैं।"

तापस सारे वार्तालाप को सुन रहे थे और अपने ज्ञान मे भी देख रहे थे कि विद्याधर की बात सही है किन्तु उन्होने अपना ध्यान तोडा नही कारण कि वे गृहस्थी के कार्य का याने अब्रह्मचर्य का अनुमोदन नही करना चाहते थे। तापस को तब भी ध्यानस्थ पाकर विद्याधर ने अपने साथी को आश्वस्त किया—

"वन्धु, उस तरुण के लौट आने पर हम अपने ज्ञान से यह देख लेंगे कि शुभ नक्षत्र योग के फलानुसार तेजस्वी बालक गर्भस्थ हुआ है या नही और तभी इस विवाद का सही समाधान भी तुम्हें मिल जायगा।"

"तव मैं अवश्य तुम्हारी बात सिर झुकाकर मान लूँगा।"

और दोनो श्रीकान्त का हाथ पकडकर गुफा से बाहर आये। उसे हसयान को चलाने की विधि समझाई तथा उसे विमान पर सवार किया। दोनो ने विदा देते हुए कहा—"तरुण, तुम्हारा भाग्य फलदायी बने। हाँ, अपने होने वाले पुत्ररत्न की यह पहचान मत भूलना कि जब भी वह हँसेगा तो उसके मुँह से एक बहुमूल्य लाल नीचे गिरेगी।"

"आपका मैं सदैव आभारी रहूँगा"—कहकर श्रीकान्त ने हाथ जोड लिये और विमान को चला दिया।

४
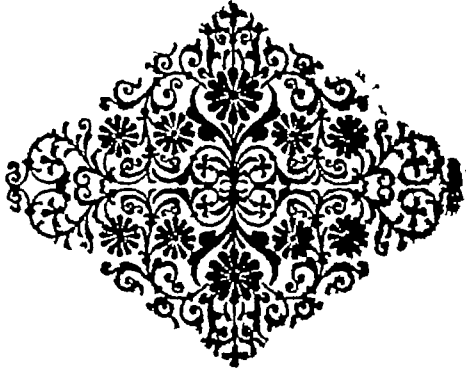
माँ, बहू, बेटी का त्रिकोण टूटा

दुनिया मे मोटे तौर पर दो तरह की शक्तियाँ होती हैं—एक अच्छाई की शक्ति तो दूसरी बुराई की शक्ति। इन दोनो शक्तियो के बीच मे बराबर टक्कर चलती रहती है। बुराई की शक्ति नीचतापूर्वक अच्छाई की शक्ति पर वार करती रहती है लेकिन अच्छाई की शक्ति उन चोटो को धीरज से झेलती है और बुराई की शक्ति को सुधारने की भावना से अच्छा वर्ताव करती है ताकि बुराई का वातावरण मिट सके। अच्छाई की शक्ति को बुराई की शक्ति के हाथो चाहे जितना कष्ट उठाना पडे और अधिकतर कष्ट उठना ही पडता है परन्तु वह अच्छाई की शक्ति कमजोरी नही पकडती है। निरन्तर सघर्ष करते हुए अन्तिम विजय को वह प्राप्त करती ही है।

आपने वोरडी (वेर की झाडी) देखी होगी। उसकी एक ही डाली पर सीधे काँटे भी होते हैं और टेढे काँटे भी होते हैं। उसी प्रकार मनुष्य जाति मे भी सीधी प्रकृति के लोग भी होते हैं और टेढी प्रकृति के लोग भी होते हैं। सीधी प्रकृति के लोग अच्छाई लेकर चलते हैं तो टेढी प्रकृति के लोग विना कारण भी बुराई करने पर उतारू हो जाते हैं।

श्रीकान्त के परदेश चले जाने के बाद उसके परिवार मे फिर से तीन प्राणी ही रह गये और तीनों महिलाएँ। माँ, उसकी वहू मजुला और उसकी वेटी पद्मा। यो समझलें कि माँ, वहू और वेटी का त्रिकोण वन गया। इस त्रिकोण मे एक कोण मजुला का, जिसे अच्छाई की शक्ति कह दीजिये। दूसरा कोण पद्मा का जिसे बुराई की शक्ति का रूप समझ सकते हैं तो दोनो कोणो के बीच मे माँ का कोण।

पद्मा शुरू से टेढी प्रकृति की लडकी थी। स्वस्थ पारिवारिक वातावरण के वावजूद वह सद्गुणो को धारण नही कर पा रही थी वल्कि यह मानें कि उसके स्वभाव मे दुर्गुण ही दुर्गुण भरे हुए थे।

मजुला ने तो श्रीकान्त की अनुपस्थिति मे अपनी सास की पूरी सेवा करने तथा घर की प्रतिष्ठा वनाये रखने का सकल्प उठा रखा था अत वह तो अपने कर्तव्यो के पालन के प्रति विशेष जागरूक वन गई थी। माताजी की सेवा तो तन-मन से करती थी किन्तु अपनी ननद वाई के प्रति भी छोटी वहिन से वढकर स्नेह रखने लगी थी।

किन्तु पद्मा का खयाल और वर्ताव उल्टा चलने लगा था। वह सोचती थी कि भाभी ने आते ही उसकी मां पर जैसे जादू कर दिया था। उसने मां को इस तरह वश मे कर ली कि मां हर समय भाभी को ही याद करती थी और उसे तो जैसे वह भूल ही गई है।

टेढी प्रकृति मे टेढे काम ही सूझते हैं। ऐसा टेढा व्यक्ति गुणग्राही नही होता है तो पद्मा ने भी यह नही सोचा कि वह भी भाभी की तरह या उससे भी वढकर मां की सेवा करने लगे, वल्कि वह भाभी से डाह करने लगी। वह विना कारण ही रात-दिन ईर्ष्या की आग मे जलने लगी और कुटिलाई से विचार करती रहती कि किस प्रकार कोई षडयंत्र रचकर वह मां और भाभी के वीच मे मोटी दरार डालकर भाभी पर वढते जा रहे मां के स्नेह को तोड दे ताकि मां फिर उसी के वश मे हो जाय। इसलिये वह मजुला के हर काम मे दोष निकालने लगी और उसे क्लेशित करने की चेष्टाएँ करने लगी। मंजुला जव भी सामने आती, उससे वह नाक भौं सिकोडती और यह दिखाती कि वह उससे वहुत घृणा करती है फिर भी मजुला उसका कुछ भी वुरा नही मानती और कह देती—"वाईसा, आप ही मुझे काम करने के सही तरीके सिखादो।" यह सत्य है कि जिसके स्वभाव मे धर्म होता है वह नम्र भी होता है क्योकि वह जानता है कि नम्रता धर्म का मूल होती है। नम्रता तो सवसे गुण ग्रहण करना चाहती है, परन्तु जिसको अपने पुरुषार्थ का भान नही होता, वह थोथे अभिमान से भरा रहता है तथा अपने को सवसे ऊपर समझता है। पद्मा भी ऐसी ही थी जो अपने झूठे अभिमान और कुटिल ईर्ष्या के पीछे भाभी को काटने पर तुल गई।

पद्मा के मन मे लगी हुई थी कि भाभी के प्रति मां के स्नेह को कुछ भी करके तुडवा देना और मां को अपने वश मे करके भाभी से वदला निकालना। मंजुला को कैसे गिराना और कैसे गिराने का षड़यंत्र रचना—इसी उद्‌वोधन मे पद्मा अपनी आत्मशक्ति का दुरुपयोग करने लगी। इसी आत्मशक्ति का यदि वह सदुपयोग करती तो अपने दुर्गुणो को दूर हटा सकती थी, किन्तु उसने तो उसका दुरुपयोग करने की ही ठान ली थी। वह भाभी के छिद्रो की खोज करने मे लग गई कि कही कोई छिद्र मिल जाय तो तिल का ताड वनाकर वह अपना खेल वना ले। ऐसे दुष्ट स्वभावी व्यक्ति तोड सकते हैं, जोड नही सकते।

दूसरी ओर मजुला अपनी कर्तव्यनिष्ठा, नम्रता और सेवावृत्ति पर कायम थी एव उसके सद्व्यवहार से उसके सासूजी उससे पूरी तरह से सन्तुष्ट थे। मजुला के मन मे कोई हलचल नहीं थी, इसलिये वह पद्मा के मन की हलचल का कोई अनुमान नही लगा सकी। पद्मा के प्रति भी उसकी तो सम और स्नेह भावना ही थी।

अच्छाई और वुराई की शक्तियां जैसे किसी भावी संघर्ष के लिये सावधान हो रही थीं।

× × ×

थप्……थप्……थप्……

मजुला हवेली की तीसरी मजिल के अपने एकान्त कक्ष मे. धर्माराधन करके सोई ही थी कि उसने किवाडो पर थप् थप् थप् की आवाज सुनी। वह तो सोच रही थी कि उसके पुरुषार्थी पति न जाने क्या-क्या कष्ट उठा रहे होंगे और वह उनकी सहभागिनी नही वन पाई। किन्तु यह सोचकर सन्तोष का अनुभव कर रही थी कि वह अपने पति के निर्देशानुसार माताजी की सेवा पूरी निष्ठा से कर रही थी।

किन्तु उस समय सारी हवेली मे किसी भी हलचल की आहट सुने विना अपने एकान्त कक्ष के किवाड़ो पर ही थाप सुनकर वह चौकी ही नही, वल्कि डरी भी कि यह क्या सकट है? वह धीरे से उठी और दरवाजे के पास तक जाकर सुनने लगी तो सुना कि उसके स्वामी श्रीकान्त ही उसे हौले हौले पुकार रहे हैं। उसे अपने कानो पर विश्वास नही हुआ। वर्षों की यात्रा पर गये हुए उसके पतिदेव भला चार ही माह मे सैकडो कोस फिर से पार करके वापिस कैसे आ सकते हैं? और क्या उनका पुरुषार्थ इतनी जल्दी और इस तरह हताश हो सकता है? एक पल के लिये वह रुकी कि कही उसके मन मे मोह तो नही समा गया है और उसने भ्रम तो नही पैंदा कर दिया है? किन्तु दूसरी तीसरी वार पुकारने से वह आश्वस्त हो गई और उसने किवाड खोल दिये। देखा कि वहाँ उसके स्वामी श्रीकान्त ही थे।

"स्वामी… आप? और इस समय?" मंजुला अव भी जैसे आश्चर्य मे ही डूवी जा रही थी।

"हाँ मंजु, मैं ही हूँ। वात ही कुछ ऐसी हो गई है कि तुम्हे आश्चर्य होना स्वाभाविक है।"

"किन्तु आप ऊपर पधारे कैसे? हवेली के किवाड खुलने की तो आवाज ही नही आई और फिर पधारते ही क्या माताजी से भी नही मिले?" मंजुला अव भी चकित सी श्रीकान्त के मुँह को निहार रही थी।

श्रीकान्त ने मजुला को आश्ववस्त करते हुए शय्या पर विठाया और स्वय भी वह पास मे वैठा तव उसने कहा—"मजुले, मैं अभी आकाश मार्ग से आया हूँ। जिस विमान 'हमयान' से मैं यहाँ पहुँचा हूँ, उसे मैंने सीधा इस कक्ष के वाहर छत पर ही उतारा है। इस विमान से कोई आवाज नही होती अत. इतनी रात की निस्तव्धता मे भी कोई नही जान सका है कि मैं तुम तक पहुँच गया हूँ।"

"तो इतने कम समय मे आपने अमित पुरुपार्थ से क्या इतनी वडी उपलव्धियाँ प्राप्त कर ली है? क्या यह हसयान उन्ही मे से एक है? अव आप फिर से परदेश तो नही जायेंगे न? चलिये, पहले माताजी के दर्शन कर लीजिये—" कहती-कहती मजुला उठ खडी हुई।

श्रीकान्त ने उसे फिर बैठाया और अब तक की आप बीती सुनाने के बाद विद्याधर की बातें बताई। खुशी बिखराते हुए श्रीकान्त ने कहा—

"प्रिये, विद्याधर ने मुझे दूसरी बार याद दिलाया था कि हमारे होने वाले सुपुत्र की पहिचान होगी—हँसते-हँसते ही मुँह से एक बहुमूल्य लाल रत्न का गिरना।" और जैसे खुशी सब ओर बिखर गई।

नीद कुछ देरी से खुली, पिछली रात्रि कुछ ज्यादा बीत गई थी अत. श्रीकान्त हड़बड़ाकर उठ बैठा और समय देखकर घबरा सा गया कि उसे सूर्योदय से पहले-पहले हसयान विद्याधर को सौंप देना है। उससे पहले एक प्रहर की यात्रा भी बाकी है। देरी इतनी हो गई थी कि वह एक पल भी वहाँ और रुकने की स्थिति मे नही था।

मजुला भी साथ-साथ ही उठ गई थी और हड़बड़ाकर बोली—"क्या हो गया है स्वामी? क्या लौटने का समय हो गया है?"

"विलम्ब हो गया है प्रिये, सूर्योदय से पूर्व हसयान विद्याधर को लौटाकर मुझे अपना वचन निवाहना है।"

"माताजी से तो मिलकर जायेंगे न?"

"नही मजु, अब यह जरूरी काम भी मैं नही कर पाऊँगा। समय बिल्कुल नही है।"

"किन्तु........"

"किन्तु क्या प्रिये?"

"नही, कोई बात नही।"

"मैं समझ गया मजुले। लो यह मेरी माँ की दी हुई अगूठी। तुम अपने पास रख लो ताकि जरूरत पड़े तो प्रमाण बता सको क्योकि माँ जानती है कि मैं इसे अगुली मे पहिनकर ही परदेश के लिये रवाना हुआ था।"

मजुला ने वह अगूठी ले ली। अपने पति के चेहरे को भरपूर नजर से देखते हुए उसने इतना ही कहा—"प्राणनाथ, जल्दी ही लौटियेगा।"

दोनो की आँखो मे एक नई ही चमक थी। श्रीकान्त ने अपने मनोभावो को सन्तुलित बनाते हुए मजुला की पीठ थपथपाई जैसे कि दोनो ने दोनो की दृढ़ता की अनुभूति ली हो।

त्वरित गति से श्रीकान्त बाहर निकला और अपने हंसयान पर सवार हो गया। जैसे पत्ता भी न खड़का हो, हसयान एकदम शान्त गति से आकाश मार्ग पर आगे से आगे बढ़ चला। मजुला तब तक उधर देखती रही जब तक उसके पुरुषार्थी पति और उनका

विमान आँखो से ओझल नही हो गया। फिर वह समत्व भावना से अपने प्रात:कालीन धर्माराधन मे प्रवृत्त हो गई।

× × ×

"मंजुला, ओ वेटी मजुला……"

माँ ने वहुत स्नेह से पुकारा, शायद उसको कोई काम था। मजुला किसी काम से घर से वाहर गई हुई थी अत इस पुकारने को पद्मा ने सुना और सुनकर जल भुन गई कि माँ ने इतने अधिक स्नेह से उसको कभी नही पुकारा था।

पिछले अर्से मे उसने मजुला का एक छिद्र भी पकड लिया था। भाई साहव को परदेश गये आठ माह का अर्सा होने आया था जवकि उसे ऐसा लग रहा था कि मजुला को तीन-चार माह का गर्भ होना चाहिये और उसे एक वहुत वडा छिद्र लगा जिसके आधार पर वह अपने षड़यत्र को सफल वना सकती। अत इस अवसर का लाभ उठाने की नीयत से माँ के मजुला को पुकारने पर वह खुद ही माँ के पास चली गई। उसने रोष दिखाते हुए माँ से कहा—

"क्या माँ, हर वक्त तुम 'मजुला-मजुला ही पुकारती रहती हो? मुझे तो कभी इतने स्नेह मे नही पुकारती, जवकि मैं तो तुम्हारी वेटी हूँ।"

माँ ने पद्मा के चेहरे पर एक सरसरी नजर दौडाते हुए धीमे स्वर मे कहा—

"तुम सच कहती हो पद्मा, मजुला मेरी सेवा इतनी लगन से करती है कि वह मेरे लिये वेटी से भी वढकर हो गई है।"

अव तो पद्मा का क्रोध ज्वालामुखी वनकर फूट पडा। वह हाथ नचा-नचाकर कहने लगी—"माँ, तुम तो मजुला के प्रति अधी हो रही हो। कभी उसके दुराचरण की तरफ भी तुम्हारा ध्यान गया है?"

"क्या कहती हो पद्मा? मेरी मजुल वह परम सदाचारिणी है। तू उसका कौनसा दुराचरण वताना चाहती है?"

"तुम सुन सकोगी माँ? वडी कडवी वात है, सुनते ही चक्कर खा जाओगी।"

माँ को हकीकत मे चक्कर आने लगा कि यह नटखट छोकरी क्या वुरी वात कहने वाली है? वह वोली—"ऐसी क्या वात है पद्मा, मुझे जल्दी वताओ; मेरा मन आकुल हो रहा है।"

यह पद्मा को भाभी पर वार करने का सही मौका दिखाई दिया। वह कटाक्ष करते हुए वोलने लगी—"माँ, मेरी जिस भाभी से तुम इतनी ज्यादा प्रभावित हो और जिसकी प्रशंसा के हर समय तुम पुल वाँधते हुए थकती नही हो—जानती हो, उसे इस समय तीन-चार माह का गर्भ है जवकि भाई साहव को परदेश गये आठ माह होने आये हैं।"

"क्या यह सच है ?"—माँ ने कह तो दिया. लेकिन उसे लगा जैसे बिच्छू ने डक मार दिया हो। धुधली आँखो से उसे दीखने लगा कि उसके परिवार की यश.पताका आसमान से नीचे गिर रही है और वर्षों की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल रही है। वह स्तब्ध थी।

अब तो पद्मा ने नमक मिर्च लगाकर कहना शुरू किया—"यह तो सात पीढ़ी पर कलक लगने की वात है माँ, निश्चय ही यह गर्भ किसी दूसरे का ही होगा। भाभी के दुश्चरित्र का जव आसपास मे और फिर चारो ओर भाडा फूटेगा तो क्या तुम और क्या मैं—मुँह दिखाने लायक भी रह जायेंगे ? वहुत स्नेह दिया तुमने अपनी वहू को और उसका ऐसा नतीजा अव आँख खोलकर देख लो।"

माँ की रुलाई फूट आई, उसकी आँखों के आगे अधेरा छा गया कि वह यह क्या सुन रही है ? और पद्मा खुश थी कि आज उसका तीर पूरी कामयावी से चल गया है। माँ और भाभी के वीच इतनी मोटी दीवार खडी हो गई है कि अव दोनो को वह कभी भी एक नही होने देगी, वल्कि भाभी को जहाँ तक होगा, इस घर से वाहर करके ही वह दम लेगी। अव माँ को तो उसी के वश मे रहना पडेगा।

तभी माँ ने गमगीन होकर वेटी से पूछा—"पद्मा, अव तू ही वता कि मैं क्या करूँ ! मेरी वुद्धि तो कुछ भी काम नही कर रही है।" पद्मा ने सोचा कि काम इस तरह किया जाय कि माँ के कन्धो पर रखी हुई वन्दूक ही छूटे और गोली खाने वाला मर जाय। इस नजर से उसने माँ के कान मे तरकीव वताई और मन ही मन खुश होती हुई अपने कक्ष मे चली गई।

भाग्य की कैसी विडम्बना थी कि मजुला के पगलियो का कुकुम अभी भी लाल था, तव भी उस ललाई पर राख की छाया के घिर आने की आशका पैदा हो गई थी।

× × ×

हमेशा की तरह आज जव मजुला सुवह-सुवह अपने सासूजी के धोग लगाने आई तो उन्होने आशीर्वाद देने की वजाय अपना मुह फेर लिया। फिर नाक भौं टेढी करके नेत्रो मे लालिमा व क्रूरता के भाव लाती हुई कटु स्वर मे वे वोली—

"अरी निर्लज्जा, तू मुझे नमस्कार करने क्यो आई है ? क्या तू अव मुझे अपना यह मुँह दिखाने लायक भी रही है ? मैंने तुझे शीलवती मानकर अपना विश्वास दिया था, किन्तु अपना मुह काला करके तूने मेरे साथ विश्वासघात किया। हे पापिनी, तूने मेरे प्रतिष्ठित कुल पर भयकर कलक लगा दिया है—फिर भी तू मेरे सामने आई है—अत्यन्त लज्जा की वात है।"

इतना यह सव कुछ सुनकर एक वार तो मंजुला भौंचक्की सी रह गई। कहाँ तो माताजी की मिश्री से भी ज्यादा मीठी वोली वह रोज सुनती थी और कहाँ आज के ये दिल छेद देने वाले कर्कश वचन ! कुछ समझकर और कुछ नही समझकर उसने अपने

दिल व दिमाग पर नियंत्रण किया, क्योकि उसका जीवन श्रेष्ठ सस्कारों से सजा हुआ था। कैसी भी उत्तेजना का समय हो, उसने हमेशा सौम्य व्यवहार करना ही सीखा था उसने मन मे सोचा कि यद्यपि वह सच्ची है फिर भी इस समय अगर वह उत्तेजित हो गई तो सत्य भी असत्य के रूप मे समझ लिया जायगा। अतएव उसने अधिक विनम्रता लाते हुए अपने सासूजी से निवेदन किया—

"माताजी, मेरी नम्र प्रार्थना है कि आप मेरी पूरी बात सुनें विना एकतरफा फैसला न करें। आप दोनो तरफ की बात तटस्थ भाव से श्रवण करें एव हंस-चोंच की तरह अपना न्याय और निर्णय प्रदान करें। आप लज्जा और कलक की बात कर रही हैं—यह बहुत जल्दबाजी है।"

श्रीकान्त की माताजी मजुला के इस कथन से अधिक रुष्ट होती हुई बोली—

"जब मामला साफ है तो तटस्थ भाव से क्या निर्णय देना है? तुम तीन चार माह का अपना गर्भ तो स्वीकार करती हो न?"

"हाँ, यह सही है।"

"तब यह साफ है कि श्रीकान्त को परदेश गये आठ माह हो गये हैं, फिर यह गर्भ कलक नही तो और क्या है?"

"माताजी, मैंने जब से होश सभाला है, तब से शील को सबसे ऊपर समझा है और मेरा विवाह हुआ तब से भी मैं अपने शील धर्म पर पूर्ण रूप से दृढ हूँ। मेरी प्रतिज्ञा है कि प्राण भले चले जाय, मेरा शीलव्रत अखडित रहे। इस कारण आप किसी भी तरह का गलत विचार अपने मन मे नही लावें। वैसे आप धैर्य रखें तो समय आने पर सब स्पष्ट हो जायगा, फिर भी आप अभी भी मेरी पूरी बात तो सुनें।"

जब मजुला ने शान्त भाव से इतना कहा तो उसके सासूजी कुछ नरम होने लगे। ऐसा लगा कि जैसे मजुला के प्रति उनका वही विश्वास फिर से लौट आना चाहता है। दूर से इस तरह दृश्य को बदलते हुए देखकर पद्मा से रहा नही गया। उसने अपने षडयत्र को विफल न होने देने के लिये कमर कस ली।

आगे बढकर पद्मा ने अपनी भाभी से कटुता और कुटिलतापूर्वक कहना शुरू किया—

"भाभी, तुम्हारा जीवन धिक्कार है। इतना बड़ा कलंक लगाकर भी तुम बोलने की हिम्मत कर रही हो और माँ को अपनी गलत सफाई से भरमा रही हो! लेकिन तुम काले कर्म करने के लिये कहाँ-कहाँ जाती हो—यह सब मैं जानती हूँ और सारे तथ्यो की जाँच कर चुकी हूँ। जो बात माँ ने तुमसे कही है, वह एकदम सच है। मैंने भी हमेशा तुम्हे मान दिया लेकिन तुम इतनी नीच निकल जाओगी यह मैंने भी नहीं सोचा था। खैर, यह तो बताओ कि तुम किसका गर्भ उठाकर लाई हो।"

मुँह-दर-मुँह इतनी कडवी वात सुनकर भी मजुला ने अपना धैर्य नही छोडा और सीधा सा जवाव दिया—

"यह गर्भ तुम्हारे भाई साहव का ही है, और किसी का नही और चाहो तो सारी वात तुम विस्तार से भी सुन लो।"

पद्मा को सुनना कहाँ था ? वह तो जोर-जोर से चिल्लाने लगी—

"वहुत सुन लिया भाभी, भूठ वोलने की भी हद हाती है। क्या मेरे भाई साहव तीन चार महीने पहिले आकाश से टपक कर आये थे ?"

"हाँ, हकीकत मे वे आकाश मार्ग से उडकर आये थे।"

"अरे मानने के लिये तुम्हारी यह वात मान भी लें तो क्या वे परदेश जाने के चार माह वाद ही इतने कपूत वन गये कि तुम्हारे साथ तो सारी रात गुजार सके, मगर अपनी माताजी के दर्शन करने का भी उनको समय नही मिल सका ? ये सव तुम्हारी छल-वल की वातें है।"

माँ ने भी पद्मा के स्वर मे स्वर मिलाकर कहा—"दुष्टा, काला मुँह करके तू मेरे सपूत की भूठी आड ले रही है और अपने पाप को इस वहाने छिपाना चाह रही है। मेरा फैसला है कि तू इसी वक्त हमारा घर छोडकर चली जा और अपना मुँह काला कर।"

मजुला वार पर वार सहती जा रही थी। उसने सोचा भी नही था कि उसकी वात भी नही सुनी जायगी और यो वात का वतगड वना दिया जायगा। वह हतप्रभ सी हो गई, किन्तु उस दशा में भी उसने अपना सन्तुलन नही खोया। उसके सामने परिस्थिति अत्यन्त कठिन सी हो गई थी। वास्तव मे विपदा मे ही सहन शक्ति की परीक्षा होती है। वह एक सफल विद्यार्थिनी थी अत फिर भी वहुत शिष्टता के साथ वह वोली—

"आप लोग विश्वास करें कि जीवन मे न कभी भूठ वोली हूँ और चाहे मुझे कितना ही कष्ट भुगतना पडे, भविष्य मे भी कभी भूठ वोलूँगी नही। चार माह पहले एक विद्याधर की वात पर पतिदेव हसयान लेकर आकाश मार्ग से देर रात सीधे ऊपर की छत पर उतरे थे और चूँकि हसयान सूर्योदय के पहले-पहले वापिस विद्याधर को लौटाना था और उठने मे कुछ देरी हो गई सो जल्दी-जल्दी पुन प्रस्थान कर गये। मैंने आपसे मिलकर जाने का वहुत अनुरोध किया, लेकिन समयाभाव के कारण वे वैसा नहीं कर सके।"

वाह, अपना पाप छिपाने के लिये भूठो-भरी कहानी भी गढ ली है भाभी तुमने ? इतनी ज्यादा चालाक तो मैं तुम्हे नही जानती थी—" पद्मा ने एक और ताना कसा।

"अव तो आप विश्वास करेंगे माताजी, यह आपके सुपुत्र की अँगूठी है जो वे प्रमाण के लिये उस समय मुझे देकर वापिस पधारे—" यह कहकर मजुला ने वही अगूठी—

जो श्रीकान्त परदेश के लिये विदा होते समय पहने हुए था और माँ को उस रूप मे दिखाकर भी गया था, अपने सासूजी के सामने रख दी ।

इस स्पष्ट प्रमाण के सामने श्रीकान्त की माँ यकायक सहम गई और उसे भीतर ही भीतर महसूस हुआ कि सारी धुध हटकर मन का आसमान एकदम साफ हो गया है। मजुला का शील सौ टंच का सोना सावित होकर निखर उठा है। माँ के चेहरे पर फिर से विश्वास की गहरी रेखाएँ खिच गईं ।

सारा मामला यो पलटते देखकर पद्मा झुझला उठी । वह दुर्गुणी थी—निर्बुद्धि थी और उस समय उसने अपनी बुद्धि का पूरा दुरुपयोग करने की ठान ली—चाहे सोलहो आना झूठ ही वोलना पडे, मगर भाभी की अकड को तो वह ठडी करके ही रहेगी। दुष्ट बुद्धि वाले यह नही सोचते कि उनके किसी रुख से किन-किन पर कितनी-कितनी विपत्तियो का पहाड टूट पड़ेगा और भविष्य कितना दु खद वन जायगा ? वे तो अपनी ही क्रूर भावना मे अधे वन जाते हैं। पद्मा को उस समय किसी वात का कोई भान नही रहा और वह तुरन्त वरस पडी—

"रहने दो, भाभी, अपने वचाव की झूठी कोशिश रहने दो। तुम माँ को धोखा दे सकती हो, मुझे नही। यह सही है कि यह अगूठी भाई साहव ने माँ से विदा लेते समय पहिन रखी थी, मगर वाहर निकलते हुए वे इस अँगूठी को मुझे दे गये थे। मैंने तभी सम्हाल कर इसे अपने कक्ष मे रख दी थी"" "तो तुमने अपने पाप को छिपाने के लिये इसकी चोरी भी करली। झूठ और उस पर चोरी-दुगुनी शर्म की वात है। असली त्रिया चरित्र मैं तुम्हारे मे देख रही हूँ.......।"

मजुला के सिर पर मानो गाज गिरी। अगर पद्मा ने उसके इस साफ सवूत को ही मिट्टी मे मिला दिया है तो अव वह क्या कह सकेगी और ये भला उसे क्योकर मानेंगी ? वह सोचने लगी कि यह उसके निकाचित कर्मों का उदय है और ऐसे कुसमय मे पच परमेष्ठि एव धर्म की शरण मे ही चले जाना चाहिये। व्यर्थ विवाद निरर्थक है। तव उसके मुँह से एक भी वोल नही निकला। उसके नेत्र जैसे मुँद गये और वह महामत्र का जाप करने लगी।

इस तरह फिर पासा पलट गया। मजुला का मौन जैसे उसी के खिलाफ तनकर खड़ा हो गया और माँ के मनोभावो मे जितनी तेजी से परिवर्तन मजुला के पक्ष मे हुआ था उतनी ही तेजी से पुन परिवर्तन उसके विरोध मे हो गया। श्रीकान्त की माँ अव तो गरजकर लरजकर टूटते शब्दो मे वोली—

"पापिनी, अव तो विना कुछ कहे इस घर से इसी समय निकल जा। अव मैं तेरे मुँह से कुछ भी सुनना नही चाहती और तेरा मुँह एक पल के लिये भी इस घर मे देखना नही चाहती।"

मजुला के सामने अव कोई चारा नही था। अपने श्रेष्ठ जीवन के साथ कितनी

पवित्र वह थी किन्तु दुर्बुद्धि के हाथो कितनी अपवित्र साबित की जा रही थी वह—पर प्रतिकार का कोई उपाय नही था। जिस घर मे कुकुम के पगलिये मडाकर समारोह के साथ उसे प्रवेश कराया गया था, उस घर से इतनी वेइज्जती के साथ उसको निकलने के लिये कहा जा रहा है—यह कितना बड़ा दुर्योग है ? कुकुम मगल का प्रतीक होता है परन्तु उसके पगलियों को उससे भी वडा मगल माना गया था, उसी मंगल को आज इतनी कुटिलता के साथ सम्पूर्ण अमगल के रूप मे खड़ा कर दिया गया और वह अब कुछ बोलने की मन·स्थिति में नही थी। इसे ही कहते हैं पूर्वाजित कर्मों का उदय, जिन्हे भोगे विना छुटकारा नही मिलता।

तव मजुला ने हमेशा की तरह उतने ही विनय के साथ अपने सासूजी को दूर से ही नमस्कार किया, ननदवाई को भी हाथ जोडे और धीरे-धीरे हवेली के मुख्य द्वार से उसी अवस्था मे वाहर निकल गई—उसी मुख्य द्वार से जिसमे वह कुकुम के पगलिये मांडती हुई घुसी थी। वे मगलमय पगलिये वाहर क्या निकले—मानो सारे मंगल को ही इस घर से वाहर ले चले।

मॉं, वहू, वेटी का त्रिकोण टूट गया वेटी के कारण। वचे हुए दोनों कोण क्या फिर से त्रिकोण-चतुष्कोण या षट्कोण वना सकेंगे—इसे भविष्य के गर्भ मे मानिये।

५
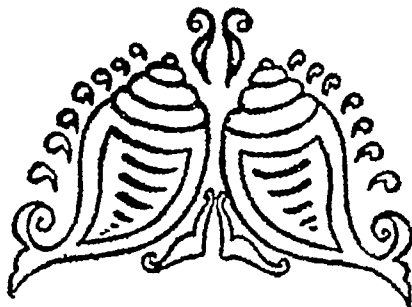
दो कोमल पाँव और एक धीर गंभीर आत्मा

दो कोमल पाँव वीहड जगल के मार्ग पर चल रहे थे। वे पांव जो कभी कठोर धरातल पर नही चले थे, धूल मे, कीचड मे, काटो पर, नुकीले पत्थरो पर चल रहे थे—लहूलुहान विना रुके चल रहे थे। कुटिल अपमान ने उन्हे तोडना चाहा था, उन्हे पगु वना देना चाहा था परन्तु वे स्थिर गति से चल रहे थे—अकेले और विना लडखडाये।

मक्खन से सुन्दर और सुकोमल पाँव किसी भी वाधा को स्वीकार नही करते—खून वह रहा था तो वहे, चमडी छिल रही थी तो छिले मगर चाल डगमगाती नही और उसका कारण था कि उस नाजुक शरीर मे एक धीर गभीर आत्मा का निवास था। सारी प्रतिकूल परिस्थितियो का धीरता और गभीरता से सामना करती हुई मजुला जगल की ओर चली जा रही थी। जव नगर ने उसे अपमान की कडवी घूट पिलाई थी तो उसका जगल की ओर जाना ही उचित था।

मजुला इतने शान्त भावो से चल रही थी जैसे कि कुछ हुआ ही नही हो। क्लेश और वदले के कुविचारो का तो सवाल ही नही, सामान्य उत्तेजना को भी उसने अपने मन मे टिकने नही दिया था। पहले के वधे हुए कर्म जव उदय मे आते हैं तो उन्हे शान्तिपूर्वक भोग लेने से ही उनसे छुटकारा पा सकते हैं। लेकिन अगर उनको भोगते समय अपनी मनोदशा को और विगाडते हैं तो फिर नये पाप कर्मों का वध हो जाता है जिन्हें भावी मे फिर भोगना पडता है। ऐसे समय मे धीर गभीर आत्मा पहले के कर्मों को अमित शान्ति के साथ भोग कर समाप्त कर लेती है और अपने आत्म स्वरूप को उज्ज्वलता की ओर ले जाती है। मजुला भी एक जागृत आत्मा थी इसलिये विना किसी खेद और दुख के वह आगे वढी जा रही थी।

नारी को अवला कहा जाता है—यह एक अपेक्षा से गलत भी है क्योकि आत्म-शक्ति को सुदृढ एव विकसित वनाने मे नारी और नर मे कोई भेद नही है—वह भी उतनी ही आत्मवली हो सकती है। किन्तु शरीर की अपेक्षा से नारी अवला हो सकती है। इसी कारण नर की कामना का प्रतिरोध करने की दशा मे नारी को वहुत सावधान रहना पडता है। मजुला चूकि वीहड वन की ओर चली जा रही थी—वह इस खतरे के प्रति

पूरी तरह सावधान थी। एक और सावधानी भी उसके मन मे जगी हुई थी कि उसे अपने गर्भ का श्रेष्ठ सस्कारो के साथ निर्वाह करना है। वह सावधान थी, साहसी थी और भावनाओ की श्रेष्ठता से सजी हुई थी। सद्गुणो मे रमे हुए उसके जीवन से ऐसी सुवास फैलती थी, जो सामने वाले को श्रद्धा के साथ नम्र वना देती थी। उस जीवन से ऐसा प्रभाव फूटता था जो क्रूर से क्रूर प्राणी को भी वरवस झुका देता था। मजुला के नारी देह मे एक परम प्रभावशाली आत्मा का ओज विखरा हुआ था।

पति परदेश मे थे जो जानते भी नही कि उसकी धर्मपत्नी पर क्या गुजर रही है ? परिवार वालो ने विना कारण, विना सोचे तिरस्कार के डडे से उन मगलकारी पगलियो को अपने घर से वाहर निकाल दिया था जिन पर कुछ ही अर्से पहले कु कुम का लेप करके अपने घर आगन मे पदचिह्नो का अकन किया था। अपने माता-पिता को उसने कोई सूचना देनी उचित नही समझी। अकेले ही आपदाओ से जूझने की क्षमता उसमे वहुत थी और इसीलिये मजुला दिल और दिमाग से कही भी टूटी नही, वल्कि अपनी सहनशीलता भी इतनी वढा ली कि उसने शरीर की परवाह भी छोड दी। उसके मन मे किसी प्रकार का शोक नही, चिन्ता नही, अहकार नही, ममकार नही। वह पूर्णतया स्वस्थ थी।

मजुला सती का तेज लिये निर्भयता के साथ अपनी आत्म शक्ति का विकास करती हुई चल रही थी। वह भयकर अटवी मे पहुँच रही थी। वहाँ उसने जगली जानवरो की आवाजें सुनी, भयावने दृश्य सामने आये, नदियाँ और घाटियाँ उसे पार करनी पडी, लेकिन वह निश्चल गति से चली जा रही थी। वह सोच रही थी कि निर्दयी आदमी हो या जगली जानवर—उनमे भी मेरी ही जैसी आत्मा है, उनमे भी मैं मेरी आत्मा के सदृश सिद्धात्माओ का स्वरूप देखती हूँ। अज्ञान मे फसी आत्माएँ भले ही इसे न समझें और मेरे शरीर पर आक्रमण करना चाहे तो कर सकती हैं, किन्तु मैं उन्हें सचेत करूगी और होगा वहाँ तक उनकी आन्तरिकता को जगाऊँगी। फिर भी वे नही मानी तो भला शरीर कहाँ मेरा है ? इसे छोडना ही पडा तो निर्भयता से छोडूँगी। ऐसी स्वस्थ विचारणा के साथ मजुला अपने मार्ग पर धीरता-गभीरता से अग्रसर होती जा रही थी।

तभी उसे सिह की गर्जना सुनाई दी और ऐसा लगा कि वह उसके समीप आता जा रहा है। उसने मन-ही-मन महामत्र का जाप करना शुरू कर दिया और इतनी तल्लीन हो गई कि सिह को ही भूल गई। जिन्हे हम जगली जानवर मानते हैं, वे भी इतने मर्यादित होते हैं कि अकारण वे किसी पर हमला नहीं करते। मजुला ध्यान मग्न थी, सिह पास से निकल गया किन्तु उसने उसका कोई नुकसान नहीं किया। जव मजुला ने आँखें खोली तो सिह जा चुका था और वह उसी निर्भयता से आगे वढ गई।

× × ×

चलते-चलते अचानक मजुला के पाँव रुक गये। यद्यपि उसे अपने शरीर पर कोई ममत्व नही था किन्तु अपने शील और गर्भस्थ शिशु की रक्षा हेतु सावधानी जरूरी थी।

उसने क्या देखा कि वृक्षों के घने झुरमुट मे से एक विकराल आकृति बाहर निकल कर उसके सामने चली आ रही थी। उसका स्थूल शरीर डरावना था, लाल-लाल बडी आँखें जैसे अगारे बिखेर रही थीं, लम्बे तीखे दात जैसे काट खाने को उतारू थे तो उसके सारे शरीर की भयानकता सिहरा देने वाली थी। वह नर राक्षस जैसा लग रहा था।

मजुला से सिर्फ दस कदम की दूरी पर आकर वह नर राक्षस खडा हो गया और हाथ फैला कर कहने लगा—"मैं बहुत भूखा हूँ, तुझे खाऊँगा।" किन्तु उसके मन मे दो तरह के विचार आ रहे थे कि इस सुन्दर नरम-नरम शरीर से पहले अपनी वासना की पूर्ति करूँ और फिर खाऊँ अथवा पहले ही इसे खा जाऊँ। वह मजुला के सामने अपनी जीभ लपलपाने लगा।

इस दृश्य को देखकर मजुला रुक गई और विचार करने लगी कि उसके सामने एक बहुत बडा खतरा आ गया है जिसे विवेकपूर्वक टाला जाना चाहिये। इस विचार से उसका मन मजबूत हो गया और वह उस नर राक्षस का साहस के साथ मुकाबला करने के लिये तैयार हो गई। उसने बहुत ही मिठास के साथ पूछा—

"भाई, आप कौन हैं ?"

शब्दो का भी आश्चर्यजनक असर होता है। शब्द किसने और किस शक्ति के साथ बोले हैं, कैसे और किस रूप मे बोले हैं - उसके अनुसार उनका असर पडता है जो कभी-कभी इतना गहरा होता है कि सामने वाले को तात्कालिक रूप से ही प्रभावित नही करता, बल्कि उसके जीवन मे एक क्रान्तिकारी परिवर्तन भी ले आता है। मंजुला के उन शब्दो की ध्वनि से कुछ ऐसा ही अनूठा असर फूटा था।

आत्मीय पवित्रता मे उच्चारे गये उन शब्दो से वह नर राक्षस भी प्रभावित हो गया। उसने सोचा कि मैं तो इसके जीवन को नष्ट करने के लिये आगे बढ रहा हूँ और यह कैसी नारी है जो मुझे 'भाई' के स्नेहपूर्ण सम्बोधन से बुला रही है? उसको उस सम्बोधन मे जैसे एक निराली सी शान्ति मिली। उसकी चेतना जागी। उसे सामने खडी नारी असामान्य सी दिखाई दी, जो उसे बुरा भला नही कह रही थी, रो और चिल्ला नही रही थी और न ही उसके चेहरे पर डर या घबराहट का कोई निशान था। उसने ऐसी निर्भीक नारी पहली बार देखी थी जो उसे 'भाई' कहकर पुकार रही थी। वह अपनी क्रूर वृत्तियो को भूल गया और एकटक मजुला को देखता रह गया। वह उसे मानवी के रूप मे देवी जैसी महसूस होने लगी।

इस नर राक्षस की क्रूरता से वह सारा जगल आतकित था। उसका आहार बनते-बनते सारे पशु-पक्षी—यहाँ तक कि जगली जानवर भी उसके निवास के चारो ओर के बीस-बीस कोस की सीमा मे या तो खत्म हो गये थे या वहाँ से भाग गये थे। भूल से ही कोई प्राणी उस सीमा मे आ जाता था तो वह उस नर राक्षस का भोजन बन जाता था। इस कारण उस जगल में फल-फूलो का बाहुल्य हो गया था। आज वही नरराक्षस मजुला की आत्मशक्ति के सामने जैसे झुक जाने के लिये तैयार हो रहा था। वह बोला—

"तुम मेरा क्या परिचय पूछ रही हो ? मैं भी मनुष्य ही हूँ लेकिन जंगल मे रहने के कारण क्रूर और खूखार हो गया हूँ और इतना खूखार कि जगली जानवरो को भी पकड़ कर मैं चबा जाता हूँ। इसी कारण इस बीस कोस के जगल से सभी प्राणी भाग गये हैं। मेरी राक्षसी वृत्ति अब मेरे ही लिये कठिन समस्या हो गई है क्योंकि मासाहार ही मेरा भोजन है और मुझे मासाहार मिलना मुश्किल हो गया है। अत: अब किसी भी प्राणी को देखते ही मैं हमला कर देता हूँ और चट कर जाता हूँ। न जाने क्यो, मैं तुम्हे देखकर हतप्रभ सा हो गया हूँ ?"

मजुला को यह प्रभाव बड़ा प्रसन्नता दायक महसूस हुआ। उसका साहस बढ गया, विवेक मृदुल बन गया और हार्दिकता बरस पडी --

"यह ऐसा इसलिये हो रहा है भाई—कि तुम्हारी आत्मा मे जागृति की किरण फूट पडी है जो तुम्हे जगा रही है। वह किरण कह रही है कि तुम सिर्फ मासाहार पर जो जी रहे हो, उस आदत को बदल दो। देखो—पेट की भूख मिटाने के लिये चारो ओर कितने अच्छे-अच्छे फल लग रहे हैं ? किसी प्राणी को कष्ट पहुँचाने से खुद को ही कष्ट मिलता है। अपने कष्ट मिटाने हैं तो दूसरो के कष्ट मिटाओ मेरे भाई, दूसरे प्राणियो को मारना एकदम छोड दो।"

हिंसा का प्रतिकार अहिंसा से होता है और बहुत ही सफलतापूर्वक होता है। बस शर्त यही है कि अहिंसा को प्रयोग मे लाने वाले का स्वय का जीवन अहिंसा से ओतप्रोत होना चाहिये। अहिंसक जीवन से शान्ति की वे किरणें फूटती हैं जो हिंसा की आग को शीतल बना देती हैं। मजुला के शान्त जीवन ने नरराक्षस के मन मे शान्ति का सचार कर दिया था। वह उसके जीवन को बदल कर सुखमय बना देने के लिये कटिबद्ध हो गई। वह कहने लगी—

"मेरे भाई, मैंने तुम्हे अपना भाई बनाया है तो मैं तुम्हारी बहिन हो गई हूँ और बहिन का फर्ज हो जाता है कि वह अपने भाई को भूखा न रखे। एकदम तुम्हारी मासाहार छोड देने की आदत नहीं बन पायगी इसलिये आज तो तुम मुझे खाकर अपनी भूख मिटा ही लो—मुझे अपने इस शरीर पर कोई मोह नही है। मोह है तो अपने गर्भस्थ शिशु का है—बस।"

यह सुनना था कि नरराक्षस ने अपना सिर नीचा कर लिया और धीरे-धीरे कहा—

"देवी और अब मैं तुम्हे अपनी बहिन ही मानूँगा तथा बहिन ही कहूँगा—तुम ठीक कह रही हो, मुझे अपने भीतर कुछ ऐसा प्रकाश दिखाई दे रहा है—कुछ ऐसा उल्लास महसूस हो रहा है कि मैं तुम्हारा शिष्य बन जाऊँ और अपना उद्धार करलूँ। मैं तुम्हे खा डालूँ बहिन—क्या यह अब मेरे लिये शक्य है ? मैं तो तुम्हारी सरक्षकता मे अब अपना जीवन ही बदल देना चाहता हूँ। तुम इसी जगल में निर्भय होकर रहो और

अपने गर्भस्थ शिशु का पालन करो। आज से मैं मांसाहार को भी छोड देता हूँ।" उस नरराक्षस ने मजुला के धर्म प्रभाव के सम्पर्क मे आकर राक्षसत्व छोडने, नरत्व ग्रहण करने और देवत्व की तरफ आगे वढने की राह पर अपने कदम उठाने का इस तरह निर्णय कर लिया।

"मुझे वहुत खुशी हुई है मेरे भाई कि तुमने मासाहार छोड देने का निश्चय कर लिया है। अव तुम अन्न-फल को ही अपनाओ—यही श्रेयस्कर है। इससे तुम्हारा क्रूर कर्म समाप्त हो जायगा और अनेकानेक प्राणियो की घात टल जायगी। आखिर तुम भी मनुष्य ही हो, तुम्हारे जीवन मे भी मनुष्यता का विकास होगा ही"—मजुला ने धर्मानुराग से भाव विभोर होकर उसको समझाया, क्योकि उसके समझाने से उस नरराक्षस का जीवन परिवर्तित जो होने लगा था।

नरराक्षस ने सरलता के साथ पूछा—"वहिन, अव तुम्ही मुझे नया मार्ग वताओ और मेरे नये जीवन को ढालो।"

"पहली वात यह कि 'वीती ताहि विसार दे, अरु आगे की सुधि लेहि'—भविष्य को वनाने के प्रयत्न मे लग जाओ और वह वनेगा अहिंसा को अपनाने से, सद्गुणो को धारण करने से तथा प्राणी मात्र को शान्ति पहुँचाने से—"

"और फिर वहिन ?"

"फिर ऊपर से ऊपर चढने के लिये सीढियाँ हैं सो जीवन का विकास करते चलो और एक से दूसरी सीढी के ऊपर चढते चलो। इस उत्थान यात्रा का आनन्द ही निराला होता है।"

"तुमने मेरी चेतना को जगाकर मुझे उत्थान मार्ग की ओर खीच लिया है वहिन—यह भारी उपकार है। मैं शरीर से हट्टाकट्टा दीखता हूँ परन्तु मेरी आत्मा जीर्ण-शीर्ण होकर अंधेरे मे भटक रही थी, उसे तुमने उजाले की राह दिखलादी है। वहिन, मुझे तुमसे यह जानने का मन हुआ है कि ऐसा ज्ञान तुमने कहाँ से पाया है ?"

"भाई, मेरा सुसंस्कारी परिवार मे जन्म हुआ और वचपन से मुझे धर्म की शिक्षा दी गई जिसमे मेरे जीवन मे ज्ञान का प्रकाश फैला और आन्तरिकता को समझने की जागृति आई। आगे जाकर सद्गुरु का सत्संग मिला जिसके कारण जीवन मे सद्गुणो का विकास हुआ और समस्त प्राणियो के प्रति समभाव उत्पन्न हु—

मजुला को तो आश्रय की आवश्यकता थी ही, फिर एक क्रूरकर्मी के जीवन परिवर्तन के साथ सुरक्षित आवास की सुविधा मिल जाय—उससे अधिक उस समय उसको कुछ नही चाहिये था, क्योकि उसके चित्त मे गर्भस्थ शिशु के लालन-पालन के साथ उसको सुरक्षित रूप से जन्म देने की समस्या की चिन्ता भी थी। वह उतने ही स्नेह से बोली—

"जब भाई रहने को कहेगा तो बहिन भला क्यो न रहेगी ? जानते हो न, भाई-बहिन का स्नेह कितना पवित्र होता है ?"

"मैं तो अब तुम्हारा शिष्य भी हो गया हूँ अत स्नेह के साथ श्रद्धा भी मिल गई है। इतना जल्दी मेरे जीवन मे जो परिवर्तन आने लगा है—इसका श्रेय तुम्हे ही है।"

इतना कह कर वह आगे-आगे हो गया और मजुला को पीछे-पीछे चली आने को कहा। वह उसे एक निरभ्र स्थान तक ले गया और बोला—"आपके मगलमय पगलिये इस जगल मे क्या पड़े हैं कि चारो ओर मगल-ही-मगल हो गया है जिसकी शुरुआत मेरे से हुई है। आप यहाँ आराम करें। मैं आपकी सार सम्हाल करता रहूँगा और आपके चरणो की सेवा से अपने को धन्य समझूँगा।"

× × ×

एक वीर गभीर आत्मा के आन्तरिक बल ने जगल मे भी मगल कर दिया था। फल-फूल से अपना निर्वाह चलाते हुए वह धर्माराधन मे दत्तचित्त हो गई थी—अपने आनन्द के साथ उसे होने वाले बालक के जीवन को भी आनन्दमय बनाना था। और इस आनन्द मे उसका भाई नरराक्षस (जो अब राक्षस नही रहा था) भी भागीदार हो रहा था।

मजुला का समय आनन्द के साथ व्यतीत हो रहा था।

हमेशा की तरह उसका वह धर्म भाई एक दिन उसकी सेवा मे बैठा हुआ था तो अनायास ही पूछ बैठा—

"बहिन, आपके पति कौन हैं ? कहाँ हैं ? आप कहाँ जाना चाहती हैं ? इस सम्बन्ध मे मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

"भाई, मेरे पति श्रीकान्त हैं, जो इस समय परदेश गये हुए हैं। मैं उन्ही के चरणो मे जाना चाहती हूँ। किन्तु तुम जैसे भाई मुझे मिल गये हैं तो सोचती हूँ कि श्रीकान्त की सुयोग्य सन्तान को यहाँ के प्राकृतिक रम्य वातावरण मे ही जन्म दूँ—" इसके साथ ही मजुला ने सक्षेप मे अपनी जीवन गाथा अपने उस भाई को सुनादी।

किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का प्रभाव उसकी बाहरी आकृति से नही पडता बल्कि उसके निज पुरुषार्थ तथा चारित्रिक गुणो के कारण पडता है। आपने देखा होगा कि गुलाब का फूल बगिया मे खिलता है। उसे अपनी सुगध को बनाने के लिये किसी को कुछ कहना नही पडता, अपितु सुगध के चहेते स्वय ही उसके पास पहुँच कर उसकी सुगध को

ग्रहण करते है एवं उसकी सराहना करते हैं। इसी तरह सच्चरित्र व्यक्ति की ख्याति स्वयमेव दूर-दूर तक पहुँच जाती है, लेकिन जब वे प्रत्यक्षत: सामने आ जाय तो फिर उनके प्रभाव का कहना ही क्या ? और ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क मे कोई रह जाय तो वह कैसा भी क्रूरकर्मी क्यो न हो—अपने जीवन मे क्रान्तिकारी परिवर्तन कर लेता है। ऐसा ही सुखमय परिवर्तन हो रहा था उस नर राक्षस का जो राक्षस तो रहा ही नही, मगर नर से भी नारायण बनने की दिशा मे कदम उठा रहा था। ऐसा था मजुला के चारित्र्य-शील सम्पन्न जीवन की सुगध का सत्प्रभाव।

मजुला की विपद्-कथा उस भाई ने ध्यान से सुनी तो मजुला के प्रति उसका सम्मान कई गुना बढ गया। कितनी सहनशीला सती नारी है उसकी बहिन और गुरुणी ?

उसने बहिन की सुख सुविधा की पूछताछ की और अपने स्थान पर चला गया। मजुला सोचने लगी कि समत्व भावना मे कितना आनन्द रहता है जो इस जंगल मे भी उसका निवास मंगलमय बन गया है। वह धर्माराधन मे प्रवृत्त हो गई कि गर्भस्थ शिशु पर सुसस्कारो की छाप पडे।

६
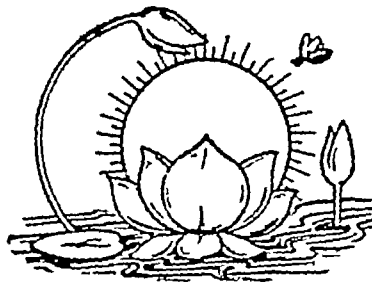
बालक जन्मा वन में : माता राज भवन में

समय किसी की भी राह नही देखता—न सुखी की, न दु खी की, न सम्पन्न की, न विपन्न की—वह तो निरन्तर वीतता ही जाता है । मजुला जव इस जगल मे आई थी, उसे चार माह का गर्भ था । लेकिन समय का प्रवाह वहता गया और पाच माह व्यतीत हो गये । गर्भ का समय पूरा हो चुका था और अव कभी भी उस भाग्यशाली वालक का जन्म हो मकता था, हँसने पर जिसके मुँह से एक वहुमूल्य लाल गिरा करेगा । यह उसकी पहिचान श्रीकान्त ने वताई थी ।

मजुला सोच रही थी—लाल तो एक सामान्य रत्न होता है, किन्तु अपनी जीवन साधना से उपजे अनेकानेक सद्‌गुणो के रत्नो का उपहार जो वह अपने आत्मज को देती आ रही है, वह उपहार ही उसके सम्पूर्ण जीवन को प्रकाशमान वनायेगा । विचारो का प्रवाह अनेक विध चलता रहता है । वह यह भी सोचने लगी कि यहाँ किसके सहारे वह वालक को जन्म देगी, कैसे उसका लालन-पालन होगा और कहाँ से उसकी सुख-सुविधा की सामग्री जुटाई जा सकेगी ?

मन की अनेक तरगें उछल रही हैं । उसके मन मे आया—पति ने तो कहा था कि भाग्यशाली सुपुत्र का जन्म होगा लेकिन भाग्य का यह कैसा दृश्य है कि अभाव मुँह वाये खडे हैं और इसके पिता तक भी पास मे नही हैं । फिर दूसरी तरग आई—श्रीकृष्ण का जन्म भी तो विकट परिस्थितियो मे ही हुआ था, पुण्यशाली जीव तो ऐसी परिस्थितियो मे जन्म लेकर भी जीवन मे सौभाग्य की सुगन्ध फैला देते हैं । तव नई तरग ने उसके मन मे उत्साह जगाया कि मेरे पास तो अमित आत्मशक्ति है—भय और आशकाए मेरे मन को क्यो घेर रही हैं ? मैं किसके सहारे की आशा करू ? अपने ही सहारे को मजवूती मे क्यो न पकडू ? ये विपदाएँ तो जीवन मे आती-जाती रहती हैं और सच तो यह है कि विपदाएँ ही जीवन को निखार देकर उज्ज्वल स्वरूप प्रदान करती हैं । सजग होना चाहिये हमारा पुरुषार्थ जो कभी थके नही, कभी हारे नही । यो चल रही थी मजुला की विचारधारा, जो प्रतीक्षा कर रही थी एक नये जीवन को जन्म देने की ।

मजुला पुरुपार्थ की वात पर विचार करती है कि पुरुपार्थ हमेशा सफल होता है। पुरुपार्थ करते हुए भी अगर सफलता नही मिलती है तो सोचिये कि ऐसा क्यो हो रहा है ? इसका अर्थ यही माना जायेगा कि पुरुपार्थ की विधि मे कही न कही कमी रह गई है। जैसे एक दस वर्प का वच्चा एक मन वजन उठाने की कोशिश करता है लेकिन वह नहीं उठा पाता है तो क्या यह सोचा जायेगा कि भाग्य की वजह से वह ऐसा नही कर पा रहा है ? नही, यही सोचा जायेगा कि अभी एक मन वजन उठाने के लिये उसे और अधिक शारीरिक शक्ति प्राप्त करनी होगी। इसी तरह प्रत्येक प्रयत्न मे पुरुपार्थ का महत्त्व सर्वाधिक होता है। यह दूसरी वात है कि पुरुषार्थ की मात्रा और विधि की कमी हो और सफलता न मिले। तो उसके लिये पुरुषार्थ को ही परिपक्व वनाने की जरूरत रहती है। सिर्फ भाग्य के भरोसे वैठने को उचित नही कह सकते हैं। समझिये कि खाना आपके सामने पडा है और भाग्य की ही वात सोचते हुए हाथ से कोई पुरुपार्थ न करें तो क्या खाना खुद ही आपके मुंह मे चला जायगा ? इसलिये पुरुषार्थ प्रमुख है—ऐसा मजुला की पुरुपार्थी आत्मा ने निर्णय लिया। क्योकि आने वाली समस्या का समाधान भी उसे अपने पुरुपार्थ के वल पर ही निकालना था।

— अरण्य मे आने वाली कठिनाइयो से कई योगी भी घवरा जाते है और अपनी योग साधना छोड वैठते हैं, लेकिन वह तरुणी, पतिपरायणा और सत्य की उपासिका मजुला अरण्य के वीच मे भी शान्त एव पुरुपार्थी विचारो को प्रमुख वनाकर चल रही थी।

सहसा मजुला के उदर मे पीडा होने लगी। यह व्याधिजन्य पीडा नही थी, वल्कि इस वात की सकेत रूप पीडा थी की अव गर्भस्थ शिशु इस ससार मे आने वाला है। मंजुला ने खुद ही अपनी झोपडी मे घास-फूस विछाई और उस पर लेट गई। पहली वार अनुभव की जाने वाली वह पीडा वहुत कठिन थी—इस कारण मजुला को थोडी-थोडी वेहोशी-सी आने लगी। फिर जव उसे होश आया तो देखा कि उसने एक सुन्दर, सुकुमार सुपुत्र को जन्म दे दिया है।

एक ओर खुशी हुई तो दूसरी ओर उसे विचार आया कि यदि इसका जन्म श्रीपुर मे हुआ होता तो क्या ऐसी कठिनाइयाँ सामने खडी होती ? सभी सुविधाओ के साथ मगलमय वातावरण गु जित हो उठता और चारो ओर मे वधाइयो का ताता लग जाता। मगल गीत गाये जाते और मिठाइया वाटी जाती ? लेकिन आज क्या स्थिति सामने है ?

मजुला फिर सोचती है कि सम्पन्नता और विपन्नता मे ही तो मनोदशा कसौटी पर चढती है कि उसमे दृढता कितनी है ? सम्पन्नता मे सुख की सम्पूर्ण सामग्री हाथ वाँधे सामने खडी रहती है तो विपन्नता में वह आखो से ओझल हो जाती है तो क्या इसके सद्भाव और अभाव के अनुसार मन फूल उठे या कि घवरा जाय ? सम्पत्ति और विपत्ति मे जो समान रहता है, वही मन महान् कहलाता है। और मजुला ने सोचा कि यह तो

मन की विचारणा का प्रश्न है। वह सोचती है कि श्रीपुर के गाजे-बाजे तो कृत्रिम होते। यहाँ जगल मे सुनाई देने वाला पक्षियो का कलरव और झरनो के जल का कलकल कैसा सगीतमय है? अपने पखो को ऊपर उठाये ये मोर जो नृत्य कर रहे हैं—क्या अतुलनीय नही है? वृक्षो की टहनियाँ भी तो वायु वेग मे झूम-झूम कर नाच रही हैं। क्या यह सब प्रकृति द्वारा रचा गया मेरे लाल का ही जन्मोत्सव नही है? वह उषा देवी अपने रक्ताभ आचल को फैलाकर मेरे लाल को अपनी स्नेहमयी गोद मे लेने को कितनी आतुर हो रही है। श्रीपुर के दियो की रोशनी की तुलना मे उषा की लालिमा कितना सुन्दर तरल प्रकाश फैला रही है। ऐसा सोचते-सोचते मजुला का चेहरा खिल उठा—उसके रोम-रोम मे प्रसन्नता का उल्लास समा गया।

तब उसने अपने लाल के चेहरे को भाव-विभोर होकर देखा—उसके मुख मण्डल से कैसी अद्भुत तेजस्विता फूट कर फैल रही थी? और क्यो न फूटकर फैलती? आखिर वह एक तेजस्वी माता का पुत्र ही तो था। वह अपनी सारी पीडा को भूल गई। साहस समेट कर धीरे-धीरे उठी—बच्चे की यथोचित सफाई की। अब उसे प्रसव की अपनी गन्दगी की सफाई करनी थी जो सरोवर पर ही की जा सकती थी। सरोवर तनिक सी दूरी पर था इसलिये वह वहाँ जावे उससे पहले बालक की सुव्यवस्था करना जरूरी था। अगर बालक को जमीन पर ही छोडकर चली जावे तो किसी जीव-जन्तु द्वारा उसे हानि पहुँचाने की आशका थी। अत उसने एक झोली बनाई और उसे वृक्ष की कुछ ऊँची टहनी पर बांध दी। तब बच्चे को उसने उस झोली मे सुला दिया। उसने सोचा कि वह सफाई का कार्य करके जितनी जल्दी हो वापिस आकर बच्चे को सम्हाल लेगी।

मजुला ने तब नवजात को वृक्ष पर लटकाकर झोली मे सुलाया और उसे थपकी देते हुए कहा—"हे मेरे प्राणप्यारे लाल, तुम इसमे आनन्द से सोये रहना। मैं पास वाले सरोवर पर जाकर सफाई करके तुरन्त लौट रही हूँ।" फिर झोली को झूला देकर वह सरोवर की तरफ बढ चली।

× × ×

सरोवर पर पहुँच कर मजुला ने अपने शरीर तथा वस्त्रो की जल्दी-जल्दी सफाई की ताकि जल्दी से पहुँच कर अपने लाल को माँ का नेह भरा दूध पिला सके। वह निवृत्त होकर लौटने को उद्यत हुई ही थी कि तभी एक दुर्घटना घटित हो गई।

मजुला का सारा ध्यान अपते नवजात की तरफ केन्द्रित हो रहा था कि कितनी जल्दी जाकर वह उसे दूध पिलावे, रमावे और झोली मे झुलावे। उसने दो तीन डग ही आगे भरे थे कि सामने का दृश्य देखकर वह एकदम हक्की-बक्की रह गई। न तो कुछ कर सकने का ही समय था और न सभल सकने का ही। बचकर निकल जाने का कोई उपाय ही नही सूझा। सामने आया सकट एक पागल हाथी के रूप मे था—वृक्षो को अपनी सूड से उखाड़ता हुआ वह एकदम सामने ही आ गया था। महामन्त्र का उच्चार

करते हुए मजुला जो वेहोश हुई तो उसे भान ही नही रहा कि वाद मे उसका क्य हुआ ?

हुआ यह कि उस पागल हाथी ने आनन-फानन मे मजुला को अपनी सूंड मे जकडा और पूरे वेग से आकाश मे फेंक दिया। प्रसव वेदना से दुर्वल वनी मजुला उस उछाल मे ही अपने होश खो वैठी। परन्तु उस उछाल से वह धडाम से सरोवर मे आ गिरी। सरोवर मे गिरने से उसे विशेप चोट तो नही लगी, लेकिन उसकी वेहोशी भी नहीं टूटी।

यह पागल हाथी इस जगल से कुछ दूरी पर स्थित चन्द्रनगर के राजा जयशिखर का था। राजा जयशिखर के पास हाथियो का वडा समूह था। उस समूह मे से एक हाथी को उन्माद चढ गया जिसे काफी कोशिश के वाद भी नियन्त्रण मे नही रखा जा सका और वह राजभवन से भाग निकला। यह जानकर राजा कुछ घवरा सा गया क्योकि यह उसका प्रिय हाथी था और इस वात की भी उसको चिन्ता हुई कि उन्माद की दशा मे वह जन-हानि न कर वैठे। इसलिये कुछ सैनिको को साथ लेकर राजा भी घोडे पर सवार होकर पीछे-पीछे भागा।

पागल हाथी के पाव देखते-देखते जव तक वे लोग सरोवर तक पहुँचे, हाथी तो वृक्षो को उखाड़ता हुआ कुछ आगे निकल गया था, परन्तु सरोवर के जल मे एक अति सुन्दर नारी का तैरता हुआ देह देखकर राजा जयशिखर स्तम्भित रह गया। एक तो इस वियावान जगल मे यह अकेली यहाँ तक कैसे पहुँची और दूसरे, इस समय यह सुन्दरी मर गई है या जीवित है ? दूर से धमाका सुनकर राजा ने यह अनुमान तो लगा लिया था कि उसके पागल हाथी ने ही इसको सूड से उछाल कर सरोवर मे पटक दी होगी।

राजा जयशिखर ने अपने सैनिको को आज्ञा दी कि वे उस सुन्दर स्त्री को पूरी सावधानी से तुरन्त वाहर लाकर उसके सामने प्रस्तुत करें। जव मजुला राजा के सामने लाई गई, तो वह वेहोश थी। राजा करीव से उसकी अनुपम सुन्दरता को निरख कर ठगा सा रह गया और अपलक उसे निरखता ही रहा। यह भी भूल गया कि उसे इस तरह निहारते हुए देखकर उसके सैनिक ही क्या कहेंगे ? सैनिक तो जानते थे इसलिये समझ गये कि सुन्दरी तो वेहोश है, किन्तु राजा भी अपना होश खो चुका है या यो मानिये कि एक पागल हाथी की सूड से तो यह सुन्दरी वच गई है किन्तु अव इस दूसरे पागल हाथी की पकड मे क्या यह सुन्दरी वच सकेगी ?

सैनिको ने मंजुला के शरीर की परीक्षा करके कहा—"राजन्, यह महिला मरी नही, जीवित है किन्तु मूर्छित है। पेट मे भरा पानी तो हमने निकाल दिया है किन्तु ऐसा लगता है कि मूर्छा कुछ समय वाद ही हटेगी।" यह पता लगाने के लिये कि इसके साथ इसके कोई परिवार जन भी हैं या नही, अथवा यह अकेली ही है—राजा ने सैनिको को आसपास मे खोज करने के लिये भेजा और स्वय मोह ग्रस्त होकर मजुला की निश्चल आकृति को एकटक देखने लगा। जव सैनिको ने वापिस आकर सूचना दी कि आसपास दूर तक के क्षेत्रों में भी उन्हें कोई भी नही दिखाई दिया है तो राजा ने सन्तोष की सास

ली । उसका दिल वाग-वाग हो उठा कि यह सुन्दर रत्न उसी के हाथ लग गया है—ऐसी अद्‌भुत सुन्दरता उसने अपने जीवन मे पहले कभी नही देखी थी । मजुला को देखकर वह तो अपना आपा ही खो वैठा था ।

रूप मूर्छित राजा ने मूर्छित रूपवती के लिये अपने सैनिको को आदेश दिया कि वे उसे वहुत सावधानी से राजभवन मे पहुचावें और राजवैद्य को निर्देश दें कि इसकी तत्काल चिकित्सा की जाय ।

कैसा रहा विधि का विधान कि वालक जन्मा वन मे जो अकेला रह गया और माता पहुच गई राजभवन मे ।

७
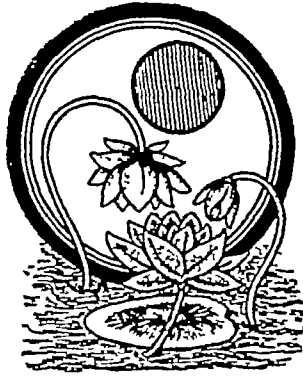
सोना ही आग में डाला जाता है

मूर्छा हटने पर मजुला ने ज्यो ही नेत्र खोलकर चारो ओर देखा, वह एक विचित्र प्रकार के आश्चर्य मे डूब गई। याद आया उसे अपने लाल का भोला सा मुखडा, उसे झोली मे सुलाकर सफाई के लिये सरोवर पर जाना और लौटते हुए एक पागल हाथी का सामने आना व सूड मे पकडकर उसे ऊपर उछालना। लेकिन उसके बाद क्या हुआ—उसे कुछ भी याद नहीं आया। परन्तु विचित्र आश्चर्य तो उसे यह था कि वह ऐसे भव्य भवन मे कैसे पहुच गई है ?

उसने अपनी नजर चारो ओर घुमाई। राजसी वैभव की साज सज्जा थी। अजीव ढग से वेश धारण किये दासियाँ सेवा मे खडी थी। वह स्वय भी एक सोने से मढे पलग के नरम-नरम गद्दो पर सोई हुई थी। यह सब देखकर वह शका करने लगी कि अवश्य ही किसी देव अथवा राजा ने उसका अपहरण कर लिया है। ऐसा विचार आते ही चिन्ता की रेखाएँ उसके चेहरे पर घिर आईं कि न जाने वह किन परिस्थितियो की पकड मे जकड ली गई है तो न जाने उसके नवजात का क्या हाल-वेहाल हो रहा होगा ?

मजुला को सचेतन होते हुए देखकर सामने खडी दासियो मे हलचल मच गई। राजवैद्य भी प्रसन्न होते हुए उठ खडे हुए और उसे शक्तिदायक नई औषधि पिलाने लगे। दासियो को राजा जयशिखर के निर्देश मिले हुए थे अत नवागता को समझाने तथा उसके मन को राजा के मन के अनुकूल बनाने की उनमे होड सी मच गई। एक अधिक बुद्धि-शालिनी दासी ने पहल की। मजुला के अनुपम लावण्य से अत्यधिक प्रभावित होते हुए उसने अतीव शिष्टता से निवेदन किया—

"ओ हो देवीजी, आप जैसी रूपवती इस ससार मे विरली ही हो सकती है और यह किसी विरले पुरुष का ही भाग्य होता है कि उसे आप जैसी नारी प्राप्त हो। हमारे राजा जयशिखर भी, जिनके राजभवन मे अभी आप विराज रही है—बहुत ही प्रभाव-शाली एव प्रतिष्ठित हैं फिर भी हम तो यही मानती हैं कि आपको पाकर वे निहाल हो गये हैं ··· "

"कौन राजा जयशिखर ? उन्होने मुझे कहा से पा लिया है ?"—हठात् मजुला चीखकर बोल उठी।

"सरोवर मे से निकाल कर जव राजा जयशिखर आपको अपने राजभवन मे लाये तव आप वेहोश थी। तव से ये राजवैद्यजी आपकी चिकित्सा करते रहे हैं और अभी ही आप सचेतन हुई हैं……… .. ."

मजुला को वर्तमान परिस्थितियो का कुछ-कुछ आभास हुआ। वह यह समझ गई कि इस वार वह फिर एक नये सकट मे फस गई है जिससे छुटकारा पाना शायद आसान नही दिखाई देता है। इसलिये पूरे विवेक और धैर्य से ही कार्य करना चाहिये, लेकिन पहले वह सभी परिस्थितियो को भली-भाति समझ तो ले। उधर दासिया उसकी आकृति और उस पर खिची चिन्ता की गहरी होती रेखाओ को देखकर यह समझ गई कि यह महिला रूप से ही असामान्य नही है वल्कि अपनी वैचारिकता एव भावुकता की दृष्टि से भी असामान्य लगती है। उन्हे यह भी प्रतीत हुआ कि यह असामान्य महिला यहा पहुँच-कर प्रसन्न नहीं है वल्कि चिन्ताग्रस्त हो गई है, अत हमारे लिये इसको राजा के मन के अनुकूल वनाना अथवा इसको फुसलाना वहलाना एक कठिन कार्य है। फिर भी उन्हे पूरे प्रयास तो करने ही थे। अत वही दासी खुशामद करती हुई मजुला को तरह-तरह के प्रलोभन दिखाने लगी। दासिया खुद प्रलोभन मे पडी हुई थी कि यदि वे इस सुन्दरी को राजा के मोह पाश मे वाध सकें तो उन्हें विविध प्रकार के वहुमूल्य पुरस्कार मिलने वाले थे। इस कारण दासी ने फिर मजुला से अनुनय की—

"हमारे राजा वहुत ऐश्वर्यशाली हैं, देवीजी, आपके अभावो को पल भर मे दूर कर देंगे। यही नही, आपके चारो ओर स्वर्ग जैसे सुखो की वे सृष्टि कर देंगे और स्वय भी आपकी चरण सेवा मे लग जायेंगे। वस आप अपने मगल मुख से 'हाँ' फरमा दीजिये ..."

अपने लाल के स्नेह-स्मरण और जयशिखर की वासना की आने वाली आधी के वीच मजुला फिर से मूर्छित हो गई और फिर से उसकी चिकित्सा शुरू हो गई।

× × × ×

"देवी, तुम तो नारियो का भूषण हो। तुम्हारे जैसी सुकोमल एव सुन्दर स्त्री जगल मे रहकर अपने जीवन को यो ही नष्ट कर दे—यह शोभा नही देता है। अव तो तुम्हारी मूर्छा दूर हो गई है तथा शरीर मे शक्ति भी आ गई होगी सो अपनी दृष्टि पसारो और घूमो तो तुम्हे जरूर लगेगा कि तुम्हारे चारो ओर वैभव विखरा पडा है। तुम्हे तो अपना सौभाग्य मानना चाहिये कि तुम अरण्य से निकल कर इस राजभवन मे ले आई गई हो।

………… और मैं कहना चाहता हूँ कि यह चारो ओर विखरा वैभव समझो कि तुम्हारा ही है। अपने दरिद्री भूतकाल को भूल जाओ और इस अपार वैभव का उपभोग करो" ………" कहकर राजा जयशिखर इस तरह मजुला के चेहरे की ओर देखने लगा कि उसके कथन की क्या प्रतिक्रिया प्रकट होती है।

ज्योही मजुला दूसरी वार की मूर्छा से सचेतन हुई तो राजा के निर्देश के अनुसार दासियाँ दौड़ी-दौड़ी गई और राजा को मजुला के पास वुला लाई। कारण, राजा ने

मजुला को उसके अनुकूल बनाने के काम को दासियो के सामर्थ्य से बाहर माना और दूसरे, राजा का मन हर समय मंजुला को अपने ही दृष्टिपथ मे बनाये रखने को तडपता था।

राजा ने आते ही मजुला को उसकी तबियत के बारे मे पूछा तो उसने शिष्टाचार-वश उत्तर दे दिया जिससे उत्साहित होकर उसने मजुला को राज्य वैभव का लोभ बताया कि वह उसकी बात मानले।

मजुला विचार मे पड गई कि वासना मे जो अधा बना हुआ है वैसे इस शक्ति सम्पन्न राजा से अपना पिंड कैसे छुडा पायेगी ? उसने क्रूरकर्मी को तो धर्मी बना लिया था, क्योकि अबोध को समझाना तो सरल होता है लेकिन समझे हुए को समझाना बडा ही कठिन। वह गहराई से सोचने लगी कि वर्तमान अवस्था मे उसे किस रीति से व्यवहार करना चाहिये ?

जयशिखर ने जब देखाकि अपार वैभव को भोगने का लोभ दिखाने के बावजूद भी मजुला ने न तो कोई उत्तर दिया है और न ही अपनी आकृति पर कोई अनुकूल रुख दिखाया है तो उसने कुछ प्रतिकूल भय दिखाने का निश्चय किया। किन्तु फिर उसने अपना इरादा बदला और साम नीति से ही काम लेने का प्रयास जारी रखा। राजा ने फिर कहना शुरू किया—

"हे सौभाग्यशालिनी, सच मानो तो मैंने ही तुम्हे नया जन्म दिया है। जब पागल हाथी ने तुम्हे ऊपर उछालकर सरोवर मे गिरा दिया था तब तुम मूर्छित हो गई थी। यदि मैं आकर तुम्हे बाहर न निकलवाता और तुम्हारी समुचित चिकित्सा नही करवाता तो तुम अपने जीवन से हाथ धो चुकी होती। अगर मैने तुम्हे नया जीवन दिया है तो तुम भी मेरी आशा पूरी करो, देवी ! ....

.... ओ चन्द्रमुखी, तुम मेरे जीवन मे शीतलता उडेल दो। यह सारा राजभवन तुम्हारे बिना सूना लग रहा है—इसे तुम रौशन कर दो ......मै तुम्हारी 'हाँ' सुनने के लिये बेचैन हो रहा हूँ ... "

एक बार तो राजा के ये वासनामय वचन सुनकर मजुला का दिल रोष से भर उठा, किन्तु तत्काल ही उसे खयाल आया कि इन परिस्थितियो मे रोष दिखाना सकटमय बन जायगा, अत अपनी सुरक्षा के लिये विवेक पूर्ण व्यवहार ही किया जाना चाहिये। फिर भी मंजुला राजा की बात का कोई जवाब नही दे सकी। राजा ने मौन को कमोबेश स्वीकृति मानकर बहुमूल्य वस्त्रो, अलकारो, रत्नो तथा सुख सुविधापूर्ण सामग्री के मजुला की शैया के चारो ओर ढेर लगवा दिये किन्तु मजुला ने उन ढेरो की तरफ एक नजर डालकर भी नही देखा। तब राजा ने समझा कि मेरा प्रस्ताव शायद इसकी दृष्टि मे अभी तक इसके स्तर के अनुरूप नहीं है, अत राजा ने अपना सबसे ऊँचा प्रलोभन पेश कर दिया—

'हे कोमलागी, तुम मेरे दिल मे इस गहराई तक समा गई हो कि मैं तुम्हें सामान्य रानी नहीं, अपनी पटरानी बनाऊगा। इसका यह मतलब होगा कि तुम मेरे दिल पर राज

करोगी। ' ';अब तो बोलो-कि क्या कहती हो ? भली प्रकार से सोच-विचार करलो। अपना शुभ निर्णय मुझे बताओ' ...... ।"

मन ही मन तो मजुला इस प्रणय-निवेदन पर छि छि कर उठी—अमित शक्तियो का स्वामी होकर भी मनुष्य वासना का ऐसा गुलाम हो जाता है जिसके लिये मेरे हृदय मे कभी कोई जगह नही हो सकती। मैं भी कैसी हतभागिनी हूँ कि जिस बालक को सवा नौ माह मैंने अपने गर्भ मे रखा, उसे स्तनपान तक न करा सकी और इधर इस कामी कीडे ने मेरे लिये अजीब सी आपदा खडी कर दी है। फिर वह सोचने लगी कि सीता को भी इसी तरह रावण ने परेशान किया था किन्तु उनको तो राम जैसे पति और हनुमान जैसे सेवक का बल था किन्तु मेरे पति को तो जानकारी भी नही है कि मैं कहाँ हूँ और मेरे साथ कैसी बीत रही है ? उन्हें क्या पता कि उनकी मा और बहिन ने मुझे घर मे ही निकाल दी है। वे तो सोच रहे होगे कि विद्याधर के वचनो के अनुसार उनका भाग्यशाली सुपुत्र श्रीपुर की हवेली मे ठाठबाट से बडा हो रहा होगा। काश, मेरे पतिदेव इधर आ जाते और इस सकट से मुझे उबार लेते।' ' लेकिन उसने अपने आपको सचेत बनाया कि वह हतोत्साहित क्यो हो रही है ? क्या जन्म से उसे मिले सुसस्कार आज वह भूल रही है ? क्या वीतराग वाणी और सन्तो के सत्सग को भी भूल रही है जो इस तरह घबराकर वह कुछ का कुछ सोचने लगी है ? उसने अपने आत्मबल का आह्वान किया और सारे सकट का सूझबूझ के साथ सामना करने का निर्णय किया ताकि साप भी नही मरे और लाठी भी नही टूटे।

राजा जयशिखर उसके उत्तर की इन्तजार मे खड़ा था। वह उसे समझा भी नही सकती क्योकि वह कामान्ध बना हुआ था। वह उसे फटकार भी नही सकती क्योंकि उसके पास बाहरी ताकतो की कमी नही थी जिनके कारण वह उसके शील को भी खतरे मे डाल सकता था। अभी तो वह याचना कर रहा था लेकिन क्रोधित होकर वह कुछ भी अनर्थ कर सकता था। इसलिये इसका इलाज कडवी दवा की बजाय मीठी दवा से करना ही ज्यादा उपयुक्त रहेगा। मन मे उसने सारी योजना सोची, लेकिन प्रकट रूप मे वह राजा को कहने लगी—

"राजन्, आप जो कुछ कह रहे हैं, उसको मैं ध्यान मे सुन रही हूँ और उस पर सोच भी रही हूँ। मेरे पास मन का योग भी है, वचन की शक्ति और शरीर मे प्राण भी मौजूद हैं, लेकिन पहिले सामने वाले की पूरी बात को सुन लेना मैं उचित मानती हूँ ताकि उसका इच्छा से योग्य उत्तर दिया जा सके।"

मंजुला के इस उत्तर को सुनते ही राजा ने सोचा कि यह महिला रूपवती ही नहीं, बुद्धिमती भी खूब है, इसलिये इसकी बात को ध्यान से ही सुननी चाहिये। उसने उत्साहित होते हुए कहा—"हाँ, हां बोलो, मैं तुम्हारी सारी बात सुनूगा।" मजुला बोली— "क्या बात करू, राजन्, आप जानते ही है कि इस ससार मे नारी विशिष्ट स्थान रखती है। यदि नारी न हो तो पुरुष की कैसी दशा बन जाय ? बच्चे का पालन-पोषण न हो तो

क्या वह जिन्दा रह सकता है ? यह माता के वात्सल्य का असर होता है तो पुरुष, पुरुष बन पाता है। मैं भी कारणवश जगल मे रहकर अपने पुत्र का लालन-पालन करना चाह रही थी—मेरा भी मातृत्व सफल हुआ था किन्तु एक पागल हाथी ने मुझे उछाल कर सरोवर मे गिरा दिया। मैं आपकी आभारी हूँ कि आपने दया लाकर मुझे बाहर निकलवाया और मेरी चिकित्सा करवाई। आप सरीखे योग्य पुरुष ही नारी जाति को पहिचान सकते हैं। आपकी दयालुता के कारण ही मैं राजभवन मे आनन्द से रह रही हूँ। शरीर और मन से मुझे पूरी तरह स्वस्थ हो जाने दीजिये ताकि मैं भलीभाति सोच-विचार कर स्थायी निर्णय ले सकू।"

राजा जयशिखर ने जब मजुला का यह कथन सुना तो उसका मन मयूर नाच उठा। अब तक उसका मन जो शका-कुशकाओ से घिरा हुआ था, कुछ स्पष्ट सा होने लगा कि इस रूपवती ने मेरा अहसान भी माना है, आनन्द से रहना भी माना है तो सोच विचार कर स्थायी निर्णय लेने का आश्वासन भी दिया है। जिससे पूरी आशा बधती है कि वह मेरे अनुकूल बनने का यत्न कर रही है। उसने यह भी सोचा कि ऐसे नाजुक मामले मे जल्दबाजी कतई नही करनी चाहिये—मन मनाकर ही सारी बात को जमानी चाहिये क्योकि जल्दबाजी करने से सारी स्थिति ही बदल सकती है और बनती बात बिगड सकती है। इस कारण उसने मजुला को पूरा सन्तोष बधाते हुए हर्षपूर्वक कहा—

"देवी, मुझे विश्वास है कि जल्दी ही तुम पूर्णतया स्वस्थ हो जाओगी और तब तक सोच विचार कर स्थायी निर्णय भी ले लोगी, क्योकि मुझे तुम पर पूरा-पूरा विश्वास है।"

यह कहकर राजा मजुला के कक्ष से बाहर चला गया। मजुला सोच रही थी कि सोना ही आग मे डाला जाता है।

८

कितना मनमोहक बालक ?

विद्याधर ने श्रीकान्त को अपने विमान हंसयान द्वारा घर भेजते हुए यह बताया था कि उसके होने वाला सुपुत्र अतीव ही भाग्यशाली होगा। उसी भाग्यशाली सुपुत्र को जन्म देते ही मजुला सफाई करने के लिए जो सरोवर पर गई थी, वह वापिस लौटी ही नही। उस वीहड वन मे एक वृक्ष की टहनी से बधी झोली मे वह नवजात शिशु सोया हुआ था। वह भूखा था, क्योकि उसकी मा उसे स्तनपान तक नही करा सकी थी। वह अपनी खुली आँखो से ऊपर देख रहा था—शायद सोच रहा हो कि जिस नये ससार मे वह आया है, क्या उसका रूप-स्वरूप यही है ?

मजुला के सरोवर पर चले जाने के कुछ समय वाद उधर से एक वनजारा अपनी वालद लेकर गुजरा। उस वियावान जंगल मे उस लटकती हुई झोली को देखकर वह आशकित हुआ कि उसमे क्या हो सकता है ? ज्योही वह झोली के समीप पहुँचा उसे नवजात शिशु का रोना सुनाई दिया। तव तो वह आश्चर्य चकित रह गया कि इस स्थान पर केवल यह नवजात शिशु अकेला कैसे है ? इसको जन्म देने वाली मा तक कहाँ चली गई है ? जव उसने झोली मे झाक कर देखा तो उसके मन मे हर्ष की लहर दौड गई कि कितना मनमोहक है यह बालक ?

वनजारे ने अपने अनुचरो को आसपास मे कोई हो तो उसकी खोज करने का निर्देश दिया और स्वय उस वालक को अपने हाथो मे लेकर खुशी-खुशी रमाने लगा। एक अनुचर से उसने दूध भी मगवाया और रूई के फोहे से बूंद-बूंद दूध वालक को पिलाने लगा। उस वालक को अपने हाथो मे लेकर रमाने और दूध पिलाने मे उसे अपार सुख की अनुभूति होने लगी। इसका एक विशेप कारण भी था। प्रौढ़ावस्था तक पहुँच जाने के वाद भी उस वनजारे को कोई सन्तान नही हुई थी जिस कारण से वह और उसकी धर्मपत्नी दोनो वडे दु खी रहा करते थे। उनकी सदा यही कामना वनी रहती थी कि कम-से-कम एक सन्तान तो उन्हे प्राप्त हो ही जावे किन्तु सभी प्रकार के उपाय कर लेने के वाद भी उनकी कामना फलीभूत नही हुई थी। अव तो सतान प्राप्ति की तरफ से वे करीव-करीव निराश हो चुके थे।

वालक की सुन्दरता, कोमलता और प्राभाविकता इतनी अद्भुत थी कि उसे सर्वांगत निहार कर वह वनजारा ठगा सा रह गया। उसने वालक की मा अथवा अन्य परिजन की खोज करने के लिये अपने अनुचरो को भेज तो अवश्य दिया था किन्तु मन-ही-मन वह कल्पना करने लगा कि कोई भी नही मिले तो वहुत ही अच्छा हो ताकि वह मनमोहक वालक उसे यो ही प्राप्त हो जाय। उसकी कल्पना आगे दौड़ने लगी कि जव वह ऐसे विलक्षण वालक को घर ले जाकर अपनी धर्मपत्नी के हाथो मे देगा तव अतीव आनन्द से वह कितनी भावविभोर हो जायगी ? फिर वह इसका वहुत नेह पूर्वक लालन-पालन करेगी और इसकी वाल-लीलाओ से सारे घर को आनन्दित वना देगी। दत्तक पुत्र के रूप मे यह वालक उनके कुल का दीपक वन जायगा।

"स्वामी, हमने चारो ओर सारे जगल को छानमारा लेकिन हमे तो कोई मानव या मानवी कही पर भी नहीं दिखाई दी। ऐसा लगता है कि किसी महिला ने रास्ता भटक कर यहाँ वालक को जन्म तो दे दिया किन्तु किसी कार्यवश वालक को झोली मे लटका कर वह इधर उधर गई होगी और कोई जगली जानवर उसे खा गया होगा।" थके हुए अनुचरो ने अपने स्वामी को यह व्यौरा देते हुए सुझाव दिया कि वे इस वालक को अपने साथ ले चलें।

"तुम ठीक कह रहे हो भाई, मैं खुद इसे घर ले चलने के लिए वहुत उत्सुक हूँ किन्तु हमे इसकी माता के आने की अभी भी कुछ और इतजार करनी चाहिये क्योंकि किसी नवजात शिशु को उसकी माता से विलग कर देना अच्छा नही है। इसलिए दो दिन तक अपना पडाव यही रहने दो, खाना वनाओ, खाओ और विश्राम करो।"

स्वामी का यह आदेश सुनकर सभी अनुचर वडे प्रसन्न हुए क्योंकि हकीकत मे वे वहुत थके हुए थे और उन्हें विश्राम की सख्त जरूरत थी। वनजारे ने अपने एक प्रिय अनुचर को अपने पास रोक लिया कि वह उसके पास ही ठहरे और जो कुछ निर्देश दे, तत्काल उन्हे पूरा करे।

वनजारा तो खाना, पीना, आराम करना सव कुछ भूल गया। उसका मन ही नही होता था कि वह उस वालक को अपने हाथो से नीचे उतारे। वह खुद ही वालक को दूध पिलाता, रमाता और हँसाता था। वालक जव किलकारियाँ मारता तो वनजारे को जैसे खजाना ही मिल जाता, वह भी जोर-जोर से कूदने और मोद मनाने लगता।

पडाव डाले हुए दो दिन भी पूरे होने आये लेकिन वहाँ कोई भी नहीं आया। इससे यह निश्चित हो गया कि उस वालक की मा जीवित नहीं वची है और अव वनजारा विना किसी हिचक के उस वालक को अपने घर पर ले जा सकता था। इस खुशी मे पडाव उठाने से पहले वनजारे ने अपने सभी साथियो और अनुचरो को इकट्ठा किया और उनको सम्बोधित करते हुए वोला—

"भाइयो ! आप देख रहे हैं कि इस वालक का कोई भी पालक नही दिखाई दे रहा है अत यदि आप सव लोग सहमति दे तो मैं इसे अपने साथ ले लूँ और अपना दत्तक पुत्र वना लूँ।"

सभी लोगो ने आपस मे विचार-विमर्श किया और उनमे से एक ने वनजारे की वात का जवाव दिया—

"मुखियाजी, हम वनजारे तो फर्ज को भी अच्छी तरह समझते हैं। यह ठीक है कि आपको सतान नही होने से वालक की जरूरत है किन्तु ऐसा नही भी होता तव भी क्या हमारा फर्ज नही होता कि इस वियावान जगल मे अकेले रहे हुए इस वालक को हम साथ मे ले जाते और इसका उचित रीति से लालन-पालन करते। हमे तो वहुत खुशी है कि हमे हमारे मुखियाजी का उत्तराधिकारी मिल गया है।"

"तो भाइयो ! अपन यहाँ से प्रस्थान करें उसके पहिले एक सहभोज का आयोजन करें और इस मनमोहक वालक का जन्मोत्सव मनावें।"

× × ×

"महाभाग, देखो तो सही इस वार मैं तुम्हारे लिए कैसी अनोखी वस्तु लेकर आया हूँ जिसे तुम देखोगी तो खुशी से पागल हो जाओगी।" मुखिया वनजारा ने अपनी वनजारिन को जोर से पुकारते हुए कहा।

"अरे आप आ गये ! क्या अनोखी वस्तु लेकर आप आये हैं, जरा देखूँ तो ?"

वनजारिन भागती आयी और अपने पति की ओर उत्सुकतापूर्वक देखने लगी। वनजारे ने अपने अनुचर को आदेश दिया कि वह वालक को ले आवे। जव उस सुन्दर और सुकुमार वालक को वनजारिन ने अपने हाथ मे लिया तो उसको उतना ही अतिशय आनन्द आया जैसे कि उस वालक को उसने ही जन्म दिया हो। वह तो वालक को गोदी मे लेकर भावातिरेक मे स्तनपान कराने लग गई और यह क्या हुआ कि उस वाझ के आँचल मे भी दूध उमड आया। वालक प्रसन्नतापूर्वक स्तनपान करने लगा और वनजारिन उसको देख-देख कर प्रमुदित होने लगी। उसकी प्रसन्नता का जैसे आर-पार ही नही था।

वनजारे ने कहा—"क्यो पसन्द आ गया न अपना नया पुत्र ! यह धर्म का प्रसार है। तुमने लम्वे समय तक धैर्य रखा जिसका ही सुपरिणाम है कि हमें ऐसा अद्वितीय पुत्र रत्न सहज ही मे प्राप्त हो गया है। अव तुम अपने मन के खूव अरमान निकालो और इस मनमोहक वालक का श्रेष्ठ रीति से लालन-पालन करो।"

वनजारिन ने विना आँखें ऊपर उठाये ही जवाव दिया—"स्वामी, मैं तो इसे पाकर निहाल हो गयी हूँ। हो सकता था कि मैं अपने जाये पुत्र पर भी इतना स्नेह नही

दे पाती किन्तु घोर निराशा के वाद जो इस अद्वितीय पुत्र की प्राप्ति हुई है—इस पर तो मैं वलि-वलि ही जाऊँगी । लेकिन इसका जन्मोत्सव घूमधाम से मनाने के वारे मे क्या आपने कुछ भी नही सोचा है ?"

"ऐसा कैसे हो सकता है प्रिये, छोटा-मोटा जन्मोत्सव तो हमने जगल मे ही मना लिया था । अव तो तुम इसका कोई अच्छा सा नाम सुझाओ ताकि नामकरण सस्कार के रूप मे ऐसा वडा उत्सव मनावें जैसा मुश्किल से ही कभी आयोजित किया गया हो ।"

"मुझे वहुत खुशी हो रही है कि आपने इतना वडा आयोजन करने का विचार किया है । भला यह तो वताइये कि आपने इसका क्या नाम सोचा है ?"

"देखो हम तो पैसा कमाना जानते हैं दूसरी वातो मे पीछे ही रहते हैं इसलिए तुम ही कोई अच्छा सा नाम सोच कर तय कर लो ।"

वनजारिन को जव पति ने यह मान दिया तो उसने अपना सिर ऊँचा करके कहा—"जव आपने यह काम मुझ पर ही छोड दिया है तो मैं अवश्य ही एक अच्छा सा नाम खोज लेती हूँ । क्या आपने इस वालक को अच्छी तरह से देखा है ?"

"अच्छी तरह से देखने की वात पूछती हो ? जगल मे जव से मैंने इसे झोली मे से उतार कर अपनी गोद मे लिया तव से एकटक इसको देखता ही रहा हूँ । यह इतना प्यारा वालक है कि इस पर से नजर हटती ही नही है । लेकिन इसका नाम क्या होना चाहिये यह तो तुम ही सोचो ।"

वनजारिन वालक को नेह भरी नजरो से निहारती ही रही और सोचने लगी कि इस वालक का कोई ऐसा नाम होना चाहिये जिसमे इसके शारीरिक सौन्दर्य का पूर्णतया वोघ हो सके । वालक एकदम गौर वर्ण का था, नाक नक्श सुन्दर थे और शरीर का अग-अंग वहुत ही सुकोमल था । वनजारिन इन सभी विशेपताओ को एक ही शब्द मे वाध लेना चाहती थी जिससे उस नाम को पुकारने के साथ ही ये सारी विशेपताएँ उभर कर सामने आ जाय । वह सोचती रही, वालक को निहारती रही और गहराई मे सोचती रही । अचानक ही उसके दिमाग मे जैसे विजली सी चमकी और वह खिलखिलाती हुई अपने पति से कह उठी—

"क्यो स्वामी, हमारा यह लाल वहुत ही स्वरूपवान है न ?"

"अवश्य है, इतना स्वरूपवान कि इसकी जोड का कोई दूसरा वालक ढूँढ लेना कठिन ही लगता है ।"

"तो यह स्वरूपवान है, आकर्पक है और कोमल इतना है कि शायद फूल भी इतना कोमल न हो ।"

"तो इसका नाम फूल का अर्थवाचक ही क्यो न रख दिया जाय ? फूल सुन्दर होता है, आकर्पक होता है और सुकोमल भी होता है । इसके अलावा फूल मे सुवास होती

है वही उसकी सच्ची पहिचान होती है। हमारा यह लाल भी भविष्य मे ऐसे श्रेष्ठ जीवन वाला बनेगा कि इसकी यश कीर्ति रूपी सुवास चारो ओर खूब फैलेगी और ससार मे खूब सराही जायगी।"

"मैं भी ठीक यही सोच रही थी। आपने मेरे ही मुँह की बात छीन ली है। मैंने सोचा है कि इसका नाम कुसुमकुमार रख दिया जाय। क्यो ठीक रहेगा न ?"

नाम सुनकर बनजारा खुशी मे झूम उठा और कहने लगा—"प्रिये, अपना यह पुत्र अब कुसुमकुमार कहलायेगा। मुझे यह नाम बहुत पसद आया है। अब जल्दी ही इसके नामकरण सस्कार के उत्सव की तैयारियाँ शुरू करता हूँ… ।"

बनजारा तो बाहर चला गया किन्तु बनजारिन को तो कुसुमकुमार के सिवा कुछ दीखता ही नही था। कभी उसे दूध पिलाती, कभी उसे नहलाती, कभी उसे सजाती तो कभी उसे सुलाते हुए हालरिया गाती। हर समय उसी की सेवा टहल मे लगी रहती और जब नन्हा सा कुसुम अठखेलियाँ करता तो उसे ऐसा लगता कि उसकी मन की बगिया चारो ओर से हरी भरी होकर खिल उठी है।

इस तरह बनजारा और बनजारिन के लाड प्यार मे कुसुमकुमार दूज के चाद की तरह बडा होने लगा।

× × ×

कुसुमकुमार के नामकरण सस्कार के उत्सव का दिन आ ही पहुँचा। मुखिया बनजारा तथा बनजारिन फूले नही समा रहे थे। अपनी सारी बिरादरी के अलावा नगर के गणमान्य सज्जनो को भी विशाल प्रीतिभोज मे आमन्त्रित किया गया था। सबको जिमाने के बाद नामकरण-सस्कार के लिये अलग से आयोजन रखा गया था। दोनो पत्नी-पति घूम-घूम कर तैयारियाँ देख रहे थे और उन्हे सुव्यवस्थित करने के सुझाव दे रहे थे।

यह बनजारा पति-पत्नी के जीवन का प्रमुख एवम् उल्लासमय दिवस था। उनके भाग्य से उन्हें अपनी जाइन्दा सतान नही मिली किन्तु प्रकृति ने उन्हें ऐसा अनुपम पुत्ररत्न प्रदान किया था जिसकी वे कल्पना भी नही कर सकते थे। इसलिए उनके हर्ष की सीमा नही थी। उन्होंने अपने घर आगन को बहुत ही सुरुचि के साथ सजाया था और तोरण व वदनवार लगाये थे। उनके सम्बन्धी सुबह जल्दी ही वहाँ पहुँच गये थे जो सारी तैयारियो मे जुटे हुए थे।

प्रीति-भोज का दृश्य बडा ही सुहावना लग रहा था। विविध व्यजन सबको परोसे जा रहे थे और जीमनें वाले प्रेम पूर्वक भोजन कर रहे थे। भोजन से सबके निवृत्त हो जाने के बाद नामकरण सस्कार का कार्यक्रम आरम्भ किया गया। एक ओर एक सुन्दर नक्काशीदार पालने मे कुसुमकुमार को सुलाया गया था अत. जो भी मेहमान आता उस मनमोहक बालक को देखता और उसे भरपूर आशीर्वाद देता हुआ यथास्थान बैठ जाता।

जब सभी मेहमान आ गये तो मुखिया वनजारा ने सारी कहानी सुनाते हुए इकट्ठी हुई पचायत से निवेदन किया—

"मैं आपका मुखिया जरूर हूँ फिर भी मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक कार्य सबकी सहमति से किया जाय। चूंकि यह बालक मेरा उत्तराधिकारी मुखिया बनेगा इसलिए आप सबकी स्वीकारोक्ति मागता हूँ कि मैं इसे गोद ले लूँ.......।"

"हमारी सबकी पूर्ण सहमति है।"

"तो मैं इसमे भी आप सबकी सहमति चाहता हूँ कि इसका नाम कुसुमकुमार रखा जाना तय किया है।"

"इसमे भी हमारी पूर्ण सहमति है।"

"तो आप कृपा करके सब इस नन्हे बालक को अपना आशीर्वाद दें कि यह दीर्घ-जीवी हो तथा अपने सत्कार्यों से पूर्ण यशस्वी बने।"

फिर सभी ने कुसुमकुमार को अपना हार्दिक आशीर्वाद दिया और एक साथ उच्चरित किया—"कुसुमकुमार दीर्घजीवी हो, यशस्वी हो... ....।"
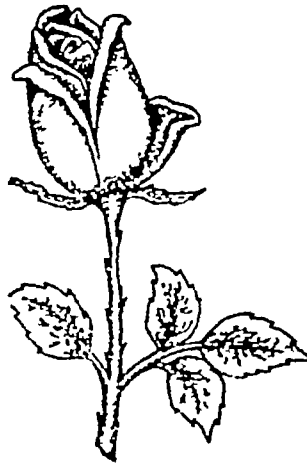
६

मिलने की असीम उत्कंठा, लेकिन यह क्या ?

विद्याधर को यथासमय विमान सौंपकर श्रीकान्त एक नये व्यापार मे लग गया और सयोग की वात कि इस बार उसका व्यापार जमता ही गया और उसमे धीरे-धीरे सफलताएँ प्राप्त करते हुए वह अच्छा अर्जन करने लगा। नैतिकता उसके व्यापार की जान थी याने कि नैतिकता पहले और व्यापार वाद मे। व्यापार से किसी भी तरह लाभ हो जाय—यह उसे पसन्द नही था। लाभ नीति के साथ किये जा रहे व्यापार से हो तभी उसे वह लाभ ग्राह्य था।

नीतिमय व्यापार से जल्दी ही अनाप-शनाप धन इकट्ठा नही हो सकता है अतः श्रीकान्त को अपने व्यापार-कार्य मे फलते-फूलते चार-पाँच वर्ष निकल गये। तव तक उसके पास कुछ धन-सग्रह भी हुआ तो उसके साथ ही उसको घर की याद भी सताने लगी।

वह कल्पना मे दृश्य देखने लगा कि उसका सुपुत्र अव तक वडा हो गया होगा, वह घर आँगन मे खूव खेलता होगा और अपनी वाल क्रीडाओ से सवके मन खुशी से भर देता होगा। माँ का तो वह परम दुलारा होगा ही, किन्तु उसकी माँ और उसकी वहिन के हाथो मे भी वह प्रेमपूर्वक झूलता रहता होगा। और मजुला, उसकी प्रिय धर्मपत्नी उसकी कितनी उत्सुकता से प्रतीक्षा करती होगी कि कव उसके पति पहुचे और दोनो अनुराग के मीठे झरने मे नहाने लगें। कल्पना ही कल्पना मे जैसे वह अपने पुत्र को अपने हाथो में उठा लेता, ऊपर उछालता और उसके नन्हे से मुखडे को चूम लेता। किन्तु कल्पना के क्षेत्र से वाहर निकलते ही वह वास्तव मे घर पहुच जाने के लिए व्यग्र हो उठता। घर पहुच कर सवसे मिलने की श्रीकान्त के मन मे असीम उत्कठा पैदा हो गई थी।

दौडा-दौडा श्रीकान्त अपने साथियो के पास पहुचा और उनसे आग्रह करने लगा कि वे भी उसके साथ परदेश से अपने-अपने घरो के लिये प्रस्थान करें ताकि सवके साथ मे यात्रा आनन्दपूर्वक सम्पन्न की जा सके।

"क्यो मित्र, तुम्हारा भी अव घर चलने का मन हो रहा है या नही ?"—श्रीकान्त ने उत्सुकता से पूछा।

"घर की हमको भी याद आ रही है, श्रीकान्त, लेकिन बहुत जल्दी हम नही चल पायेंगे। तुम कब तक रवाना हो जाना चाहते हो ?"

"कब तक की बात अब मेरे मन मे नही है, मित्र, जल्दी से जल्दी अब मैं चल देना चाहता हू—आज, कल या दो दिन बाद। मुझे अब घर की याद बहुत तेजी से सता रही है।"

"भाई, हम तो अभी छ माह-वर्ष के पहले यहा से प्रस्थान करने की स्थिति मे नही हैं। हमे खेद है कि हम तुम्हारा साथ नही कर पायेंगे।"

निराश श्रीकान्त घर लौट आया और सोच विचार कर उसने निश्चय किया कि अब वह घर के लिये अकेला ही चल देगा। आखिर आया भी तो वह अकेला ही था। इस बार साथ मे जोखिम है तो क्या हुआ ? उसमे कौनसी साहस की कमी थी। और वैसे भी वह सिद्धान्तवादी था कि यह जीव इस ससार मे अकेला ही आता और अकेला ही जाता है—सिर्फ अपने अच्छे या बुरे कर्म ही अपने साथ रहते हैं। इसलिए अकेलेपन से कैसा डर ?

× × ×

घर जाने के लिये निश्चय करने के साथ ही श्रीकान्त का मन फिर कल्पना की उडानें भरने लगा। किसके लिये क्या-क्या वस्तुएँ वह खरीदे—इसकी उसने लम्बी सूची बनाई—वस्त्र, अलकार एव अन्य पदार्थ और उस नन्हे के लिए क्या ले जाऊँ—वह बार-बार सोचने लगा। मन मे आया कि उसके लिये कुछ ऐसा ले जाऊँ कि जिसे देखते ही वह किलकारियाँ भरने लगे—बेहद खुशी की किलकारियाँ कि यह उसके पिता की प्रेममयी भेंट है—दिल से उफनते हुए स्नेह की भेंट।

वह बाजार मे निकल गया और बडे ध्यान तथा नेह से चीजें खरीदने लगा। सब सामग्री एकत्रित करके वह घोडे पर सवार हुआ और श्रीपुर की दिशा मे चल पडा।

घोडा अपनी राह चल रहा था, किन्तु श्रीकान्त का मन कहाँ राह पर बधा हुआ था ? वह तो एक दिशा से अनेक दिशाओ मे बिजली से भी ज्यादा तेजी के साथ सरपट भाग रहा था। उसके मन मे यह लग रही थी कि वह जल्दी से जल्दी मजुला की खबर ले और विद्याधर के ज्ञान की जाँच करे कि उसका सुपुत्र कैसा भाग्यशाली है ? वह यह भी सोचने लगा कि वह एक लम्बे अर्से बाद घर पहुच रहा है तो उसकी धर्मपत्नी, माँ और बहिन कितनी उमग से उसका स्वागत करेंगे और जाति बिरादरी वाले पडोसी भी उससे प्रेमपूर्वक मिलने आवेंगे तथा परदेश के हाल-चाल पूछेंगे। यह सोचते हुए वह मन ही मन भावुक हो उठा कि यह सबको उनके उपहार देता हुआ जब अपने छोटे राजकुमार के सामने उसका उपहार रखेगा तो वह अपनी तुतलाती बोली मे पूछेगा—"यह तैता उपहाल लाये है तिताजी आप मेले लिये ?" तो वह कितना प्यारा लगेगा। उसे हाथो मे उठाकर

चारो ओर घुमा दूँगा मैं—और हकीकत मे उसके हाथो मे से घोडे की लगाम छूट गई और उसने अपने हाथ चारो ओर घुमा दिये।

अब श्रीकान्त ने काफी दूरी पार करली थी और उसका घोडा श्रीपुर के समीप पहुचता जा रहा था। ज्यो-ज्यो वह समीप पहुचता जा रहा था, श्रीकान्त का हृदय वासो उछलता जा रहा था—उसकी मातृभूमि, उसकी माता, उसकी धर्मपत्नी, उसकी भगिनी, उसका लाल और उसके सभी आत्मीय जन उससे मिलने ही वाले हैं। कितना आनन्दित होगा वह उन सवसे मिलकर ?

× × ×

अपनी हवेली के वाहर पहुचते ही जव श्रीकान्त ने अपनी माँ को पुकारा तो माँ ने उसे वाहर ही रोककर आरती का थाल तैयार किया तथा उसकी आरती उतारी। पद्मा ने भाई साहव की वलैया ली और उन्हे सम्मानपूर्वक भीतर ले गई।

किन्तु यह क्या ? श्रीकान्त जिन्हे देखने के लिए उतावला हो रहा था, उन दोनो मे से किसी की भी शक्ल अभी तक उसके सामने नही आई। न तो अभी तक उसे मजुला ही दिखाई दी और न उसका नन्हा लाडला ही इधर उधर कूदता-फांदता नजर आया। वह हैरान था कि आखिर दोनो कहाँ चले गये हैं। या भीतर ही ठहरे हुए हैं। उसने सोचा—उसकी मजुला वहुत सकोचशील और शिष्ट है अत. उसने व्यर्थ की व्यग्रता नही दिखाई हो। आखिर वह स्वय भी उनके लिये अपने हृदय की व्यग्रता को कहाँ प्रकट कर सका है ? वह मजुला के लिए पूछ भी ले, मगर उसकी माँ—उसकी वहिन क्या सोचेगी कि हमसे तो तनिक भी वात ही नही की और अपनी घरवाली की कितनी ललक लगी हुई है ? वह प्रकट रूप से अपने पुत्र-पत्नी के लिये वास्तव मे कुछ भी नही पूछ सका।

माँ ने वहुत लाड से श्रीकान्त को भोजन कराया, पद्मा ने पखा झला और उससे परदेश की—कमाई की, उपहारो की वातें वे दोनो करती रही। वह सुवह के अपने भोजन से निवृत्त हो रहा था तभी उसके पडौसी, सम्वन्धी और जाति भाई मिलने आने लगे। वह अपनी वैठक मे वैठ गया और सव का स्वागत करने लगा। सव उसका कुशल क्षेम पूछते, और परदेश के हाल-चाल जानते। सव उसे इस वात की वधाई दे रहे थे कि वह साहस करके परदेश गया और अपने कार्य कौशल से वहुत धन सग्रह करके लाया। मिलने आने वालो का ताता लगा हुआ था—एक गया तो दूसरा आया। उसे तनिक भी समय नही मिला कि वह स्वय मजुला के कक्ष मे जाकर पता लगाता कि वह वाहर क्यो नही आई है ?

शाम होने लगी तो वह अपनी वैठक से उठ कर भीतर गया, फिर भी उसको दोनो आत्मीय कही भी नही दिखाई दिये। वह अपने मन को तसल्ली देने लगा कि दोनो या तो उसके ससुराल गये होगे या किसी अन्य गाँव मे अपने किसी सम्वन्धी से मिलने गये होंगे।

यदि वह अपनी अधिक अधीरता वतायेगा तो माँ क्या महसूस करेगी और उसकी नटखट वहिन तो उसकी खिल्ली ही उडाने लग जायेगी। इस कारण उसने चुप रहना ही उचित समझा। आखिर तो जव वह माँ-वहिन के पास अभी शाम का खाना खाकर बैठेगा और वातचीत करेगा तव उन दोनो का प्रसग भी छिडेगा ही एव तव उसको उनके वारे मे सव कुछ मालूम हो ही जायगा।

श्रीकान्त भीतर गया तो माँ किसी काम मे लगी हुई थी अत उसने पद्मा की चोटी खीच कर उससे मजाक की, उसको उसके उपहार दिये और फिर धीरे से पूछा—

"क्यो पद्मा, तुम्हारी भाभी दिखाई नही दे रही है—क्या वह कही वाहर गई हुई है ?"

पद्मा ने भाई साहव के इस प्रश्न को सुना तो उसका चेहरा फक पड गया। वह क्या जवाव दे—यह उसे सूझा ही नही। और सूझता भी क्या ? सारा काड ही उसकी पाप वुद्धि के कारण ही तो घटा था। भाई साहव की अगूठी प्रमाण मे दिखाने के वाद भला क्या सन्देह रह गया था मजुला के कथन मे ? भाभी हर तरह से पवित्र थी किन्तु पद्मा ने ही नीचता की अति करके अगूठी के वारे मे सफेद झूठ वोला और भाभी को कलकित करके अकेली घर से वाहर निकलवा दी। तवसे भाभी न जाने कहाँ-कहाँ क्या-क्या भुगत रही होगी—उसके भतीजे का क्या वेहाल हो रहा होगा ? वह अव भाई साहव को क्या जवाव दे ? उसको इतनी लज्जा आ रही थी कि धरती फटे और वह उसमे समा जाय तो वहुत अच्छा—ताकि भाई साहव की ताडना से तो वह वच जाय। वास्तव मे जव दुष्ट मनोभावो के आवेश मे कोई भी पाप कर्म करता है तो उसको उस समय भान नही रहता कि उस पाप कर्म का किस-किस को क्या-क्या कुप्रभाव भोगना पडेगा, लेकिन जव उसके पाप कर्म पर से पर्दा उठने को होता है, तव उसे घोर पश्चाताप होने लगता है। पद्मा की उस समय ऐसी ही दशा हो रही थी।

दूसरी वार पूछने पर भी जव पद्मा ने कोई उत्तर नही दिया तो श्रीकान्त अपनी माँ के पास चला गया। उसने सम्मान और मधुरता के साथ माँ से ही पूछ लिया—

"माँ, मजुला कही दिखाई नहीं दे रही है—क्या वात है ?"

पद्मा तो अपने झूठ को जानती थी, किन्तु वेचारी माँ को क्या मालूम कि अगूठी के वारे मे पद्मा ने सफेद झूठ वोला था। उसके सामने तो यही स्थिति आई थी कि मजुला ने पद्मा के कक्ष मे से वह अगूठी चुरा कर अपना झूठा वचाव करना चाहा था—हकीकत मे तो वह अपराधिनी थी ही, उसने कुल पर कलक लगाया ही था। इस कारण माँ के मन मे कोई दुविधा नहीं थी। वह अपने मन मे साफ थी, अत उसने श्रीकान्त के प्रश्न का कोई सीधा सा उत्तर देने की वनिस्पत सिर्फ इतना ही कहा—

"वेटे, मजुला का तो नाम लेना भी अव श्रेयस्कर नहीं है।"

यह सुनते ही श्रीकान्त के दिल की धडकन तेज हो गई। अव तक तो वह एक या दूसरे विचार मे अपने मन को तसल्ली दे रहा था किन्तु माँ के इस स्पष्ट उत्तर ने तो

उसके सामने प्रश्न-चिह्नो का ढेर खडा कर दिया था। भीतर ही भीतर उसे पक्का अनुमान लगने लगा कि माँ ने ऐसा क्यो कहा है और उस निर्दोष के साथ कैसी दुर्घटना घटी होगी ? उसे याद आया मजुला का वह अनुरोध कि वह कुछ समय के लिये ही सही— लेकिन माँ से मिलकर जावे, किन्तु अपने वचन निबाहने के जोश मे उसने उसके अनुरोध को अनसुना कर दिया था—क्या उसका ही भयकर कुफल इस रूप मे प्रकट हुआ है ? क्यो उसकी दी हुई अगूठी से उसकी स्थिति का बचाव नही हो सका ? तो क्या मजुला के गर्भ को इन लोगो ने अनुचित समझा और उस पर कलक का टीका लगाकर उसे घर से निष्कासित कर दी ? क्या इन लोगो ने उस पर—मजुला पर तनिक भी विश्वास नही किया ? 'उसका नाम लेना भी श्रेयस्कर नही है'—इसका क्या साफ-साफ यही अर्थ नही निकलता कि इन लोगो ने मजुला को दुश्चरित्रा और घोर कलकिनी घोषित कर दी ? क्या उसकी छोटी सी भूल से दो निर्दोष जीवन खतरो मे झूल रहे हैं या कि उनका क्या हुआ है—ज्ञानीजन ही जानें। उसके दिल मे सैंकडो सवाल उठ रहे थे पर उनके उत्तर देने वाला कोई नही था।

श्रीकान्त के मन मे यह निश्चय हो गया कि उसका अनुमान सही है और उसी के कारण माँ यह कह रही है कि मजुला का नाम लेना भी श्रेयस्कर नही है। दूसरे किसी कारण की सम्भावना उसको कम ही लगी। लेकिन सारा विवरण और स्पष्टीकरण वह माँ से कैसे पूछे—इसी पर वह विचार करता रहा। वह विचार करता रहा मजुला के दुर्भाग्य पर—कितनी गुणशील सम्पन्न पत्नी उसको मिली थी लेकिन उसके ही घर मे उसके साथ कितना निकृष्ट दुर्व्यवहार हुआ था और वह भी उसकी भूल के कारण। जिस साध्वी ने बिना शरीर सम्बन्ध विवाह होते ही परदेश जाने के उसके सकल्प को पूरा करने मे भी सहयोग दिया वही साध्वी कलकिनी सिद्ध करदी गई। उसके सद्गुणो पर मुग्ध होकर माँ ही उसे इस घर मे मेरी इच्छा को मोड कर भी लाई लेकिन वही माँ इतनी कटुता से उसके विरुद्ध हो गई ?

मिलने की कितनी असीम उत्कठा लेकर श्रीकान्त अपने घर की ओर भागा-भागा आया था, लेकिन यह कैसा दृश्य उसके सामने आया है ? वह माँ से सारी दुर्घटना का समूचा विवरण जानना चाहता था और तुरन्त जानना चाहता था, किन्तु उतावली करने मे उसे सकोच महसूस हुआ। इसलिये उसने यही निश्चय किया कि परिवार के तीनो सदस्य जब निवृत्त होकर साथ मे बैठेंगे, तभी वह सारा विवरण दोनो से पूछेगा।

१०

श्रीकान्त ने आपा नहीं खोया

"मातेश्वरीजी, आप जानती हैं कि मैं उतनी जल्दी विवाह नहीं करना चाहता था किन्तु आपने ही आग्रह करके मेरा विवाह कराया और जिस मजुला के लिये उसके विविध सद्गुणो के कारण आपकी अत्यधिक पसन्दगी थी, वही मजुला मेरे परदेश जाने के बाद किस प्रकार और क्यो अपराधिनी हो गयी कि आप मुझे अब उसका नाम लेने से भी मना कर रही हैं। मुझे साफ-साफ बताइये कि उसने क्या दोष किया ? मैं सारा विवरण जल्दी से जल्दी जानना चाहता हूँ और निर्णय लेना चाहता हूँ कि सही वस्तुस्थिति क्या रही ? क्या आप इतना भी महसूस नही करती कि मैं आपकी बहू और आपके पोते को देखने के लिये कितना उत्सुक हो रहा हूँ· · · · ।"

श्रीकान्त की आवाज मे अथाह पीडा झलक रही थी और उस पीडा को उसकी माँ ने भी महसूस किया किन्तु वह अपने मन मे इतनी हिम्मत नही जुटा पा रही थी कि जो कुछ बीता है उसे साफ-साफ अपने बेटे को बता दे। अभी-अभी श्रीकान्त ने जो यह कहा कि वह अपने बेटे से मिलने को उतावला हो रहा है—इसका साफ मतलब यह निकला कि जो कुछ मजुला कह रही थी वह सत्य व पूर्ण सत्य था। और इस नजर मे उसके हाथो मजुला के साथ जो भी बर्ताव हुआ है वह एकदम अन्यायपूर्ण था। अब वह अपने बेटे को क्या विवरण बतावे, कैसे बतावे और किस मुँह से बतावे ? उसके मन मे यह डर भी समा रहा था कि सारी बात सुनकर श्रीकान्त न जाने क्या कर बैठे ? वह दो सम्भावनाओ के बीच झूलने लगी।

तब श्रीकान्त की माँ ने सारी बात तरकीब से ही उसे बताने का निश्चय किया, इस कारण वह टालमटोल करती हुई बोली—

"मैंने तुम्हे सही कहा है बेटा कि अब मजुला का नाम भी मत लो। जो बीत गई है उसे भूल जाओ और अब आगे क्या करना है उसके बारे मे सोच विचार करो।"

'आगे क्या करना है—यह बाद मे देखा जायगा। इस समय तो मैं उस मजुला के दोष अपराध की पूरी जानकारी लेना चाहता हूँ जिसे माँ, तुम और मैं परम शीलवती, बुद्धिमती और सद्गुण सम्पन्न मानते थे। बीती बात को यो ही छोड देने के पक्ष मे मैं नही हूँ। किसने क्या नही किया है और किसने क्या गलत—इसका फैसला नही करें तो

ससार के सारे काम अधेरे मे ही चलने लग जायेंगे" · ···· "आप कहती हैं कि मैं उसे भूल जाऊँ तो आप ही सोचिये कि क्या मैं उसे भूल सकता हूँ ? मेरा निवेदन है कि आप पहेलियाँ मत बुझाइये और मुझे साफ-साफ बताइये कि मजुला इस घर मे क्यो नही रही और इस वक्त वह कहाँ है ?"

श्रीकान्त का हठ देखकर माँ का जी घबराने लगा किन्तु उसके मन मे अथाह व्यग्रता और लज्जा समा गई थी, इसलिए उसने यही उत्तर दिया कि मजुला ने गम्भीर अपराध किया था जिसको बताने मे भी उसको भारी शर्म लग रही है। यह भूमिका बाध कर माँ ने श्रीकान्त को समझाना शुरू किया—"बेटे, तुम्हारा जीवन बडा पवित्र है और ऐसा ही पवित्र जीवन मैं मजुला का भी मानती थी लेकिन तुम्हारी गैरहाजिरी मे उसने ऐसा अपराध किया कि जिससे हमारे सारे कुल पर कलक लगता था। इस कारण मुझे मजबूर होकर उसे इस घर से बाहर निकाल देनी पडी।"

माँ के मुँह से निकले इस विवरण को सुन कर इस बात से कि मजुला को इस घर से निकाल दिया गया है—श्रीकान्त अवाक् रह गया। कहाँ तो वह असीम उत्कठा लेकर अपनी प्रिया और अपने लाल से मिलने के लिये परदेश से अकेला ही भागा-भागा आया था और कहाँ यह विडम्बना कि उन दोनो का कोई पता भी नही है कि वे कहाँ और कैसी विपदाओ से जूझ रहे होगे ? कुछ क्षण तक भावावेश मे श्रीकान्त कुछ भी नही बोल सका। भीतर ही भीतर कठिन वेदना से वह सिहर उठा लेकिन वह एक सुसस्कारी एवम् पुरुषार्थी युवक था अत' उसने अपने मन पर नियत्रण किया और उतने ही विनयपूर्वक अपनी माँ से बोला—

"माँ मजुला को घर से निकाले हुए करीब कितना समय हुआ होगा ?"

"यही करीब पाँच वर्ष हुए होगे।"

"क्या पाँच वर्ष हो गये हैं मजुला को इस घर से निकाले हुए ? जिस घर मे उसके कुमकुम के पगलिये मडा कर प्रवेश कराया गया था, उन पगलियो को माँ, तुमने मेरे जाने के सात-आठ माह बाद ही घर मे बाहर कर दिया—शायद है कि तब तक उन पगलियो के कुमकुम की ललाई भी नही मिट पायी होगी। आप बार-बार उसके कलक की रट लगा रही हैं किन्तु मुझे बता तो दो कि उसने क्या कलक लगाया था ?"

"श्रीकान्त, तुम मेरे इकलौते बेटे हो और मैं नही चाहती कि तुम्हारा दिल दुखाऊँ। बस इतना समझ लो कि उसने ऐसा कलक लगाया है जिसे कभी मिटाया नही जा सकता।"

"मैं तुम्हारे हाथ जोडता हूँ माँ कि तुम मुझे उसका कलक बता दो। क्या उसने कोयला खाकर अपना सारा मुँह काला कर लिया था ?"

"क्या बच्चो जैसी बातें करता है। उसने कोयले मे नही, किसी परपुरुष के साथ

मुँह काला किया था और जव हमने उसको घर से वाहर निकाला तव उसे कोई तीन-चार माह का गर्भ था लेकिन उस समय तुम्हे परदेश गये सात-आठ माह हो चुके थे ।"

"ओहो माँ, तुमने गजव कर दिया । वह परपुरुप और कोई नही, मैं स्वय ही था । तुम्हारे हाथो कितना वडा अनर्थ हो गया कि तुमने एक पतिव्रता को और उसके गर्भस्थ भाग्यशाली शिशु को कठिनाइयो के उवलते हुए कुण्ड मे गिरा दिया······ ।" इतना ही कहने के वाद श्रीकान्त की रुलाई इस कदर फूट पडी कि वह वच्चो की तरह विलख-विलख कर रो पडा । अपने वेटे को इस तरह दु ख करते हुए देख कर माँ का दिल भी पिघलने लगा और पश्चात्ताप की आग मे झुलसने लगा । वह भी रुधे हुए कठ से धीरे-धीरे वोली—

"मेरे वेटे श्रीकान्त, तुम मुझे सारी वात वताओ । लगता है मेरे हाथो हकीकत मे वडा अनर्थ ही हो गया है । मुझे भी मजुला पर उतना सन्देह नही था किन्तु पद्मा ने ही मुझे सारी वात इस तरह वतायी कि मुझे उसकी वात को सच माननी पडी ।"

श्रीकान्त ने रोते-रोते उस रात की सारी घटना कह सुनायी और यह भी कहा कि समयाभाव मे वह उसके दर्शन करके नही जा सका । किन्तु उसने यह भी वताया कि वह उस घटना की सत्यता के प्रमाण स्वरूप अपनी अगूठी भी तो मजुला को देकर गया था । फिर श्रीकान्त ने अपनी माँ से पूछा—

"क्या माँ, तुमने मजुला के कहने पर कोई विश्वास नही किया और क्या उसने तुम्हें सवूत के तौर पर कि मैं उस रात आया था—वह अगूठी भी नही दिखाई जो तुम्हारे स्नेह की निशानी के तौर पर मुझे दी हुई थी और जिसे मैंने परदेश रवाना होते समय अपनी अगुली मे पहनी हुई थी । तुम्हे वतायी थी वह अगूठी या नही ?"

"वह अगूठी मजुला ने हमे वतायी थी और मैं उस पर विश्वास भी कर रही थी लेकिन तभी पद्मा ने वताया कि उस अगूठी को वाहर निकल कर तुमने पद्मा को दे दी थी । पद्मा ने यह भी कहा था कि वह अगूठी मजुला ने उसके कक्ष से चुरा ली है । इस कारण मजुला के प्रति मेरा विश्वास टूट गया और तव उसको घर से वाहर निकाल देने के अलावा और कोई चारा नही रहा ।"

श्रीकान्त सिसकियाँ भर रहा था । उसके दिल के दर्द को सिर्फ वही महसूस कर रहा था कि दर्द कितना कठिन है ? वह पतिव्रता मंजुला कहाँ होगी, किन कष्टो से घिरी हुई होगी और उस नन्हें वालक का भी न जाने क्या हाल हो रहा होगा ? वह सोचने लगा कि मैं तो पुरुष हूँ सो कितनी भी कठिन स्थिति हो, वर्दाश्त कर सकता हूँ किन्तु वह नरमी मजुला अपना जीवन किस तरह गुजार रही होगी ? इन्ही विचारो मे खोया श्रीकान्त वहुत अधीर हो रहा था कि वह जल्दी से जल्दी अपनी पत्नी व पुत्र का पता लगाये, फिर भी माँ को उसने वहुत ही धैर्य के साथ कहा—

"माँ, पद्मा के लिए मैं क्या कहूँ लेकिन मजुला पूर्णतया निर्दोष थी। मैं समझता हूँ कि उसने अपने जीवन मे जितनी पवित्रता रखी थी उतनी शायद ही अन्य कोई स्त्री रख सकती हो। मैंने भी तुम्हारा दूध पिया है माँ, इसलिए अपने जीवन को सदा पवित्र रखने की कोशिश की है—परदेश मे रहते हुए भी मन को कभी इधर-उधर भटकने नही दिया। उन्ही हम पवित्र जीवन वालो को इस तरह दु.ख भोगने के लिये मजबूर होना पड रहा है।" इतना कह कर श्रीकान्त चुप हो गया।

जब माँ को पूरी कहानी समझ मे आयी तो उसे यह भी समझ मे आ गया कि उसकी गुणशीला बहू पर उसी के हाथो भयकर अत्याचार हो गया और इस कारण वह अपने भाग्यशाली पोते के लाडलडाने से भी वचित रह गयी। सोचते-सोचते वह भारी पश्चात्ताप करने लगी जो इतना गहरा होता गया कि उसे मूर्च्छा आ गयी।

\+ + + + +

एक कहावत है कि—

पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग।
दावी दूबी ना रहे, रूई लपेटी आग।।

प्रकृति का नियम है कि आखिर जाकर एक दिन तो पाप का भाडा फूटता ही है। पद्मा का पाप भी आज फूट रहा था। माँ की मूर्च्छा ज्यो ही खत्म हुई, माँ ने पद्मा को आवाज लगायी। अब तक वह भाईसा. द्वारा भाभी के बारे मे पूछने के बाद से उनसे टली टली फिर रही थी, किन्तु अब माँ द्वारा बुलाने पर उनके सामने आना ही पडा। तब कडक कर माँ ने उससे पूछा—"पद्मा, तुम्हें याद है न कि मजुला ने श्रीकान्त के एक रात के लिए आने के सबूत मे यह अगूठी दिखाई थी।"— माँ ने तब वह अगूठी पद्मा के सामने रख दी और श्रीकान्त को पूछा—"क्यो श्रीकान्त, क्या तुमने यह अगूठी जाते समय मेरे से विदा लेकर बाहर पद्मा को तो नही दे दी थी?"

श्रीकान्त बोले उससे पहले ही पश्चात्ताप से सतप्त बनी पद्मा ने रोते-रोते कहा—"भाईसा मैं पापिनी हूँ। मैंने ही ईर्ष्या की आग मे जल कर भाभी को सताना चाहा और उस आवेग मे मेरी दुष्टता इतनी बढ गयी कि भाभी को मैंने इस घर की देहरी से बाहर निकलवा कर ही दम लिया। मुझे आप जो भी दण्ड दें मैं लेने के लिये तैयार हूँ। मैंने ही नीचता करके साफ झूठ बोल दिया था कि आप यह अगूठी बाहर निकलते हुए मुझे देकर गये थे और उस अगूठी को भाभी ने चुरायी है। भाईसा भाभी परम सद्गुणी थी और इसीलिए माँ उससे मेरे से भी अधिक स्नेह करने लगी थी—बस यह मुझमे सहा नही गया। इसमे माँ का कोई दोष नही है, सारी नालायकी मेरी ही है।"

मा भी यह सुनकर अत्यधिक विलाप करने लगी और कहने लगी—"पद्मा ने गलत कहा और मैंने उसके कहने पर तो विश्वास कर लिया लेकिन मजुला के कहने को

मैंने सुना तक नही तो इसमे मुझसे भी भारी भूल हुई है। अगर मैं ऐसी भूल नही करती तो इस तरह मेरा सोने जैसा परिवार उजडता नही। आज मुझे अपने जीवन पर भयकर ग्लानि हो रही है। मैं तुझसे माफी माँगती हूँ मेरे वेटे, लेकिन मैं तुम्हें किसी तरह से सात्वना देने की स्थिति मे नही हूँ।"

उस समय परिवार मे कुल तीन सदस्य थे श्रीकान्त, उसकी माँ और उसकी वहिन। और तीनो अतीव दुखभरी मन स्थिति मे पहुँच गये थे। श्रीकान्त की आँखो के सामने अन्धेरा छा रहा था कि वह अपनी पत्नी और अपने पुत्र को कहाँ खोजेगा, वे उसे मिलेंगे या नही और मिलेंगे तो न जाने किस हालत मे? उसके दिल मे रह-रह कर टीस उठ रही थी और आँसुओ की धारा वहती जा रही थी।

श्रीकान्त की माँ एक सरल महिला थी किन्तु अपनी दुर्गुणी वेटी की वातो मे वह आ गई और अपनी सद्‌गुणी वहू को घर से निकाल वैठी। अव वह अपने ही वेटे को क्या जवाव दे? श्रीकान्त तो उस समय विवाह करने के लिए राजी भी नही था, मैंने ही जवरदस्ती की और मैं ही इसके साथ अन्याय कर वैठी और मैंने ही उसके जीवन को उजाड दिया। वह अपनी आँखो से अविरल अश्रुधारा वहा रही थी किन्तु फिर भी उसके मन मे रच मात्र भी शान्ति का प्रवेश नही हो पा रहा था।

और वह दुर्गुणी पद्‌मा आज सारे दुर्गुणो को भूलकर भयकर पश्चात्ताप की अग्नि मे जल रही थी। वही साफ-साफ जान रही थी कि सारी दुर्घटना की एकमात्र जिम्मेदार वही है। वह लगातार रो रही थी किन्तु साथ ही उसका सारा शरीर भी थर-थर काँप रहा था—शायद वह डर रही थी कि उसके भाईसा. उसे कितना दण्ड देने का निश्चय करें।

लेकिन श्रीकान्त तो एक पुरुपरत्न था। उसके पास अटूट साहस ही नही, अमित सहनशक्ति भी थी। जो हो चुका था उसे अनहुआ नहीं वनाया जा सकता था। अव तो यही शेप था कि वह प्राणो की वाजी लगा कर भी मजुला और उसके लाल की खोज करे। उसने माँ और वहिन से मीठे शव्दो के साथ ही अपने निश्चय को सुनाया—

"माँ, आपका भी कोई दोप नही है और वहिन का भी कोई दोप नही है। यह तो मेरे तथा मजुला के निकाचित कर्मों का उदय हुआ और उसके कारण आपके हाथो यह सारा वनाव वना। मुझे आप दोनो पर किसी तरह का कोई रोप नही है। किन्तु अव मैं मजुला के प्रति अपने कर्त्तव्य को अवश्य पूरा करूँगा। मैं उन दोनो की खोज करने के लिए अभी निकल रहा हूँ और अगर सही सलामत मिल गये तो हम सव शीघ्र ही आपकी सेवा मे आ जायेंगे।" यह कह कर श्रीकान्त तुरन्त उठ खडा हुआ और धीरे-धीरे हवेली से वाहर निकल गया किन्तु दोनो मे से कोई भी उसे रोक नही सकी।

इतनी अन्यायपूर्ण एव कष्टपूर्ण घटना के गुजर जाने पर भी श्रीकान्त ने आपा नही खोया। विवेकशील व्यक्ति यही सोचते हैं कि ढुले हुए दूध के लिए रोना-धोना या

ताडना-फटकारना व्यर्थ होता है। वे तब भविष्य की बात सोचते हैं कि नया दूध कहाँ से और कितनी जल्दी लाकर क्षतिपूर्ति की जा सकती है? इस विवेक का सीधा सा असर उस पर होता है जिसके हाथो दूध ढुल गया था। ऐसे सद्व्यवहार से दूध ढोलने वाले के मन का डर तो मिटता ही है, लेकिन उसे अपनी भूल या गलती पर पूरा प्रायश्चित भी होता है, बल्कि अगर किसी ने जानबूझ कर दूध ढोला हो तो उसका मन ऐसे व्यवहार से भीतर ही भीतर तडप उठता है और वह अपने कुकृत्य को धो डालना चाहता है। व्यवहार व्यवहार में कितना अन्तर हो जाता है कि सद्व्यवहार से दोषी का मन निष्कलुष हो जाता है सो तो ठीक लेकिन वह स्वय भी सद्व्यवहारी हो जाता है। इसी के स्थान पर यदि दूध ढोलने वाले के साथ फटकार-दुत्कार का दुर्व्यवहार किया जाय तो विपरीत असर दिखाई देता है। दूध ढोलने वाला अपनी गलती मानने के लिए कभी तैयार नही होता, बल्कि फटकारने वाले को शत्रु मानकर उससे बदला लेने की तरकीबें सोचता है। अत सद्-व्यवहार से सद्व्यवहार और दुर्व्यवहार से दुर्व्यवहार पनपता है, बढता है।

श्रीकान्त ने आपा नही खोया और माँ बहिन की गलती भी नही निकाली—यह उसका सद्व्यवहार था, जिसका जादू भरा असर उसकी माँ और बहिन के मन पर पडा। माँ का दोष उतना नही था जितना पद्मा का था और उस कारण पद्मा के पश्चात्ताप की सीमा नहीं थी। हवेली से निकलते हुए वे दोनो श्रीकान्त को नही रोक सकी, किन्तु प्रायश्चित के अपने ज्वार को भी वे रोक नही पा रही थी।

११

धैर्य और विवेक की कड़ी परीक्षा

महाराजा जयशेखर मन में प्रसन्न हो रहा था कि अव तो कुछ देर से सही लेकिन उसका मनोरथ पूर्ण हो जायगा तथा मंजुला उसकी हृदयेश्वरी वन जायेगी।

मंजुला ने पहले वाहर से अपने अनुकूल रुख का स्वाग रचते हुए यह मांग की थी कि वह अपनी भावनाओ को महाराजा के लिये केन्द्रित करने हेतु एक अनुष्ठान करना चाहती है और जयशेखर ने प्रसन्न होकर उसे उस अनुष्ठान के लिये अनुमति दे दी थी। तव से मंजुला तपाराधन मे लगी हुई थी। उसका मूल उद्देश्य यह था कि किसी भी तरह जयशेखर को वहलाते रहकर समय गुजारा जाय ताकि कही किसी की सहायता की स्थिति पैदा हो जाय अथवा कही राजा को ही सद्‌वुद्धि आ जाय। उसके साथ ही वह स्वय पर पूरा नियन्त्रण रख सके इसके लिये वह कठिन तप भी कर रही थी।

मंजुला उस कठिन परिस्थिति को अपने धैर्य तथा विवेक की कडी परीक्षा मान रही थी क्योंकि वह अपने सतीत्व की रक्षा करते हुए उस आग मे से वेदाग निकल जाना चाहती थी। वह जानती थी कि राजा शक्ति सम्पन्न है अत यदि वह विवेक से नही चलेगी तो राजा को जवरदस्ती करने मे कोई हिचकिचाहट नही होगी, इसलिए इस विवेक के साथ मे उसे पूरा धीरज भी रखना होगा, कारण इस वन्धन से छुटकारा पाने मे न जाने कितना समय लग जाय।

एक प्रकार से जयशेखर और मंजुला के वीच मे मानसिक युद्ध चल रहा था। जहाँ जयशेखर कामभोग की लालसाओं मे अन्धा वनकर किसी भी तरह मंजुला को जल्दी से जल्दी अपनी वना लेने के लिये आतुर था तो वहाँ मंजुला स्वस्थचित्त तथा गम्भीर विवेक के साथ उस कठिनाई को टालने के लिये भीतर ही भीतर ऐसी योजना वना रही थी कि जिसके आधार पर वह राजा की अन्धता का लाभ उठा सके।

तपस्या ऐसा साधन होती है जिसकी आराधना से अपने मन के भीतरी विकार तो समाप्त होते ही हैं किन्तु उसके साथ ही अपनी आत्मा मे एक प्रकार का ऐसा तेज भी प्रकट होता है जो सामने वाले को वरवस ही प्रभावित कर देता है। एक तपस्वी के सामने कोई कितनी ही वुरी इच्छाएँ लेकर के आता है तव भी उसमे ऐसा सकोच पैदा हो जाता है कि वह अपनी मनमानी कर नही पाता है। मंजुला ने तथाकथित अनुष्ठान के वहाने

जो कठिन तपस्या की थी उसके परिणामस्वरूप वह भीतर वाहर से विशेप रूप से साहसी और तेजस्वी वन गई थी। उसका यह सकल्प अतीव सुदृढ हो गया था कि वह वर्तमान सकट से सफलतापूर्वक जूझ सकेगी।

× × ×

"सौभाग्यशालिनी, तुमने यह कैसा अनुष्ठान किया है कि शरीर सूख कर काटे जैसा हो गया है। मुझे इतजार करते-करते भी वहुत समय गुजर गया है अव तो तुम अपना अनुष्ठान पूरा करके मेरे रनिवास की शोभा वढाओ। तुम्हारे आने से पहले मेरे रनिवास मे सितारे ही सितारे टिमटिमा रहे थे किन्तु मेरा मन फूला नही समा रहा है कि तुम्हारे प्रवेश से अव वहाँ पूर्ण चन्द्र का उदय हो जायेगा।" जयशेखर अपने मन के विकारी भावो को यो प्रकट करते हुए वहुत खुश हो रहा था जैसे कि अव उसके मन की मुराद पूरी होने मे कोई देर नही थी।

सामान्य स्थिति होती तो मजुला ने उसका कडा प्रतिरोध किया होता किन्तु वह परिस्थिति के अनुसार अपनी सोची हुई योजना पर ही चलना चाहती थी इसलिए उसने शात भाव से कहा—राजन्, अनुष्ठान करना कोई आसान काम थोड़े ही है और इसमे समय तो लगता ही है। आप तो जानते ही होगे कि राजनीति मे अपने शत्रुओ एवम् स्वय अपनी जनता पर भी नियत्रण करना कितना कठिन होता है, फिर मैं तो अपने ही मन के विचारो से लड रही हूँ कि वे अनुकूलता का रुख पकड सकें। राजन् मन पर शासन करना वहुत कठिन होता है और मैं इस कठिन काम मे लगी हुई हूँ। क्या आप शीघ्रता दिखाकर मेरी साधना मे विघ्न डालना चाहते हैं ?"

राजा जयशेखर उतावलेपन से वीच मे ही वोल पडा—"नही-नही, मैं विघ्न कतई नही डालना चाहता हूँ। तुम मेरे लिये वहुत ही महत्त्वपूर्ण निर्णय लेना चाहती हो और मैं तुम्हारी छोटी सी वात भी नही मानू—यह कभी हो सकता है क्या ? मैं तो यही कहना चाहता हूँ कि तुम व्यर्थ मे हठ न करो और योगिनी की तरह अपने इस सुन्दर और सुकोमल शरीर को नष्ट न करो।"

"आपने हठ की वात कही सो यद्यपि नारी हठी होती है फिर भी मैं व्यर्थ हठ नही कर रही हूँ लेकिन आप भी राजहठ मे न पड़ें और मेरे साथ उदारता का व्यवहार दिखाते हुए मेरी साधना के सम्पन्न होने मे पूरा सहयोग दें।" मजुला ने अपने शब्द इस तरह तौल-तौल कर कहे कि जिनका राजा के मन पर वाछित प्रभाव पड सके।

जयशेखर ने जव मजुला का उत्तर सुना तो उसका मन कुछ ढीला पडा। उसने सोचा कि जव मजुला उसकी ही तरफ आगे वढ रही है तो उसमें जल्दवाजी करने मे कोई फायद नही है, वल्कि ऐसा करने से उसका काम विगड ही मकता है। फिर भी वाहर से उसने कुछ कठोरता लाकर कहा— "हम दोनो ही अपना-अपना हठ न करें यह तो ठीक है लेकिन तुम इतने लम्वे अनुष्ठान से अपने इस शरीर को नष्ट करती रहो यह मैं नही देख सकू गा।" तव मजुला ने और नरम पडकर कहा—"राजन्, जव मैं सही दिशा मे ही

आगे चल रही हूँ तो आप भी जोश के साथ होश रखें । आप उतावल करेंगे तो मेरी साधना मे बाधा पड़ेगी जिसके कारण आपका और मेरा दोनो का हित नहीं सधेगा। आप जानते हैं कि मैं आपके राजभवन से कही बाहर जाने मे समर्थ नही हूँ, फिर भी आप इतने व्यग्र क्यो हो रहे हैं ?"

भीतर से खुश होते हुए भी राजा जयशेखर ने बाहर से कडे बनकर मजुला को चेतावनी दी—"देखो सुन्दरी, कि तुम राजभवन, मे ही हो फिर भी अभी तक मेरे वश मे नहीं हो रही हो यह उचित नही है । अपने मन मे गाठ बाध लो कि तुम्हें मेरी पटरानी बनना होगा और मेरे मन को आनन्दित करना होगा । अब साफ-साफ कहे देता हूँ कि तुम सात दिन के भीतर अपने अनुष्ठान को पूरा कर लो, अपने मन को बना लो और मेरे मन पर शासन करना शुरू कर दो । विश्वास रखो, मैं तुम्हारी अपने प्राणो से भी ज्यादा परवाह करूगा । समझ लेना यह अवधि अन्तिम अवधि है और इसके बाद मैं अधिक प्रतीक्षा नही करूगा ।" इतना कह कर बाहर से क्रोध जताता हुआ राजा जयशेखर मजुला के सामने से चला गया ।

× × ×

जयशेखर तो चला गया किन्तु मजुला का मानसिक सघर्ष और अधिक तेज हो गया । मजुला ने यह नही सोचा था कि उसे कोई अवधि बतायी जायेगी और वह भी मात्र सात दिन की अवधि । अब तो इसी अवधि मे कुछ ऐसा अवसर पैदा होना चाहिये कि उसके शील की सुरक्षा हो सके । आन्तरिक वृत्तियो के इस सघर्ष मे दोनो अपनी-अपनी चालें चल रहे थे । जयशेखर चाह रहा था कि मजुला मेरे मन की लालसाओ की पूर्ति करे और मेरे जीवन मे भोग का आनन्द बिखेर दे । जबकि मजुला सोच रही थी कि मैंने जगत-साक्षी से जिस पुरुष के साथ विवाह किया है वही एकमात्र पुरुष मेरा पति है और बाकी सब मेरे पिता एव भाई के तुल्य हैं । मैं पिता और भाई के तुल्य पुरुषो की सेवा कर सकती हूँ और धर्म रीति से उनकी कृपा प्राप्त कर सकती हूँ किन्तु जहाँ तक शारीरिक सुखोपभोग की बात है मैं इस बारे मे पति के सिवाय किसी अन्य की कल्पना तक नही कर सकती और इसीलिए इस कठिनाई मे मुझे अपने शील को सम्भालना है ।

मजुला ने कल्पना की कि मैं उस पानी के बहाव की तरह बनना चाहती हूँ जो भयकर चट्टानो के आडे आ जाने पर भी बीच मे से कही न कही अपना स्रोत निकाल लेता है । यह जयशेखर मुझे प्रलोभन दे रहा है, साम-नीति से समझा रहा है, दाम-दृष्टि से मुझे अपनी सारी समृद्धि लुटाने के लिये तैयार है, मेरे साथ भेद व्यवहार भी कर रहा है तो अब यह दण्ड-नीति पर भी उतर आया है जिसका सकेत वह अभी-अभी कर गया है । चितन करने लगी कि कामवासना मे अन्धा बना हुआ शक्तिशाली पुरुष सात दिन बाद न जाने कैसा दुर्व्यवहार करे और न जाने कैसी क्रूरता का परिचय दे ?

मजुला की चिंतनधारा बदली—उसके मन मे जो आशका के भाव पैदा हुए थे उन्हें उसने निकाल फेंका । मन मे एक नई दृढता जागी और उसने विचार किया कि मैं

अपने मन की स्वामिनी हूँ और जव मेरा मन अपने वश मे होगा तो ससार की कोई भी शक्ति न मेरे मन को मोड सकती है और न मेरे शरीर को छू सकती है। मेरा यह सकल्प दृढ है। मैं अपने मे अखण्डित हूँ और कोई भी मेरी आत्मशक्ति को खण्ड-खण्ड करने मे समर्थ नही है। जो नारी खण्ड-खण्ड मे वट सकती है, वही अपनी आत्मा और अपने मन से दुर्वल हो जाती है और उस दुर्वलता मे वह अपना सर्वस्व भी खो सकती है। किन्तु मैं तो अपने आराध्यदेव मे एकनिष्ठ हूँ, अखण्ड मन से लगी हुई हूँ तो फिर भला मेरे मन को कौन तोड सकता है। वस मुझे अपने साध्य के प्रति सतत रूप से सजग रहना है।

वैसे भी मजुला अपने विवेक तथा धैर्य की कडी परीक्षा की मन.स्थिति मे चल रही थी, पर परीक्षा की तिथि इतनी नजदीक आ जायेगी यह उसने सोचा नही था। किन्तु उसने अपनी सकल्पशक्ति के वल पर अपने मन को आने वाली उस भीषण कठिनाई के लिए तैयार कर लिया। वास्तव मे कठिन से कठिन सकट से भी सघर्ष किया जा सकता है, वस शर्त यही है कि विवेक और धैर्य कभी भी नही खोवें, वल्कि ज्यो-ज्यो सकट जटिल होता जाय, विवेक और धैर्य भी पैना होता जाना चाहिये।

मजुला वहाँ से उठी, एकान्त स्थान मे आसन लगाया और महामत्र का अविचल जाप करने लगी। तपस्या की आराधना के साथ वह ध्यानयोग मे निमग्न हो गयी ताकि वह आत्मवल से आने वाले सकट के साथ सफल सघर्ष कर सके।

१२
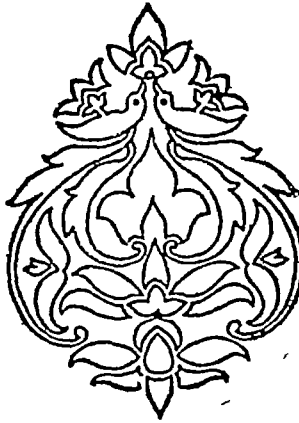
पत्नी और पुत्र की खोज में

मन मे चाहे कितनी ही पीडा हो किन्तु पुरुपार्थ मे शिथिलता नहीं आवे—तभी वैसा व्यक्ति सच्चा पुरुपार्थी कहलाता है। श्रीकान्त ऐसा ही निज-पुरुपार्थी था जो मन मे अथाह पीडा लिये हुए भी अपनी प्रिय पत्नी मजुला एव अनदेखे पुत्र को खोजने के लिये तेजी से अरण्य की ओर चल पडा। घर, नगर पीछे रह गया और वह चलता ही रहा। आशा का दीप सजोए वह निश्चल गति से चलता रहा।

श्रीकान्त ने जगल छाने, गावो-नगरो मे खोज की तो पहाड और कन्दराएँ तलाशी, लेकिन कहीं भी उसकी मजुला या उसके लाल का कोई सूत्र नही मिला। एक स्थान पर पूछताछ करने पर भी उनका कोई पता नही लगता तो वह विना किसी तरह की हताशा लाये अगले स्थान के लिये चल पडता। उसका मजबूत इरादा था कि वह उन दोनो को ढूँढकर ही चैन लेगा। उन दोनो के साथ उसके ध्यान-बेध्यान से जो अन्याय हुआ है, उसे उन्हे खोजकर ही मेटा जा सकता है और तभी वह अपनी भूल का प्रायश्चित्त कर सकता है। यह सोचकर उसका उत्साह कभी ठडा नही पडता और उम्मीद के आसरे वह दर-दर भटकता रहा। किन्तु उसे सफलता की झलक तक कही नही दिखाई दे रही थी।

एक दिन एक जगल मे चलते-चलते जब वह बहुत थक गया तो थोडा विश्राम कर लेने की इच्छा मे एक वृक्ष के नीचे लेट गया। फिर भी उसके मन को विश्राम कहाँ था? पैर रुक गये तो मन तेजी से चलने लगा। श्रीकान्त सोचने लगा—मैंने मजुला की इतनी गहराई से खोज करली कि आसपास का कोई क्षेत्र मैंने नही छोडा तब भी कोई सकेत नही मिला है तो इनका यही अर्थ हो सकता है कि या तो निष्कासन के कष्टो ने मेरी मजुला को तोड डाला हो और वह इस ससार मे नही रही हो अथवा समीप के क्षेत्रो को छोडकर दूर चली गई हो। यदि ऐसा ही तो अब मुझे दूरस्थ क्षेत्रों की ओर चलना चाहिये। सोचते-सोचते थोडा सा उसे निराशा का झटका लगा—आखिर मंजुला को अबला ही तो मानेंगे और एक अबला एकाकी कितना कष्ट भुगत सकती है जबकि उसे केवल अपना ही निर्वाह और सरक्षण नहीं, बल्कि अपने लाल का भी निर्वाह और सरक्षण करना हो? तो क्या अब मेरी मजुला मुझे नही मिलेगी? क्या मैं उसे कभी नही देख पाऊँगा? और क्या मेरा लाल अपने अभागे पिता की छाती से कभी नही लग पाएगा?....

अब उसका मन भी थकने लगा क्लान्त, विक्लान्त हो उठा। थके हारे शरीर और मन को नीद ने अपनी गोदी मे भर लिया।

× × ×

श्रीकान्त कल्पना लोक से स्वप्नलोक मे विचरण करने लगा।

उसे लगा कि वह एक वियावान जगल मे से होकर जा रहा है। रास्ता नुकीले पत्थरो और कटीली झाडियो से भरा पडा है। उसके पैर लहुलूहान हुए जा रहे हैं, मगर चलते रहने से उसके उत्साह मे कोई कमी नही है। जगली जानवरो के चिघाडने-दहाडने की आवाजें भी उसे डरा नही पा रही हैं। वह चलता जा रहा है और इसलिये चलता जा रहा है कि उसे दूर बहुत दूर मजुला का हँसता हुआ चेहरा दिखाई दे रहा है।

तभी उसे ठोकर लगी और उसका सिर एक चट्टान से जा टकराया। आँखो के आगे अँधेरा छा गया और उसके साथ ही मंजुला का वह हँसता हुआ चेहरा उसे दिखाई देना बन्द हो गया। फिर तो उसका मन घवराने लगा। वह निराशा सा अपना चोट खाया हुआ सिर अपने दोनो हाथो मे थामकर वही पर बैठ गया। वह पीडा से कराह उठा और उसका चित्त-सज्ञा शून्य सा होने लगा।

अचानक एक तेज रोशनी चमकी, मगर उसे दिखाई कुछ नही दिया—सिर्फ उसके कानो मे आवाज उभरी—

"अरे श्रीकान्त तुम निराश होकर थक हार गये हो। क्या तुम्हारे जैसे पुरुपार्थी के लिये यह शोभनीय है?"

"आप—आप कौन हैं जो मुझे वुला रहे हैं? आप सच कह रहे हैं कि मैं मजुला की खोज करते-करते थक गया हूँ—हार गया हूँ और लगता है कि मेरी आशा का दीप भी बुझने को है। लेकिन अब मैं क्या करूँ—कहा जाऊँ? आप ही मुझे वताइये, मुझे सुझाइये, मेरे सामने आइये और मुझे उत्साहित कीजिये ......" श्रीकान्त गूजती हुई आवाज मे वोला कि उसका सहायक जिस किसी दिशा मे छिपा हो, उसे सुन ले।

फिर भी सामने कोई नही आया, लेकिन वही आवाज फिर सुनाई दी—"श्रीकान्त, जो काटो के जगल मे चलता हुआ घवराता नही और उसे पार कर लेता है, वही फूलो के वाग मे पहुँचता है। एक पुरुपार्थी अपने पैरो के खून को नही देखता, अपने मन की लौ को देखता है कि वह निरन्तर प्रकाशित होती रहे। तुम भी अपने मन की लौ को देखो, जो जलती रहे, अपने सिर और पैरो के खून से घवराओ मत। चलते रहो, सतत चलते रहो......"

"आप मेरे मन को गलत समझ रहे हैं और मेरे पुरुपार्थ को गलत आक रहे हैं। ये दोनो कभी थकने वाले नही हैं। थकान है तो प्रेरणा के अभाव की—हँसते हुए चेहरे के यकायक छुप जाने की। पुरुपार्थ को प्रेरणा की अपेक्षा होती है। मुझे मेरी प्रेरणा लौटा दीजिये, मैं फिर से चल पडूगा। मेरी गति और शक्ति कभी नही थकेगी..... "

तेज रोशनी फिर चमकी, उस रोशनी में उसे फिर से मजुला का वही हँसता हुआ चेहरा दिखाई देने लगा। प्रेरणा को पाते ही पुरुषार्थ उठ खडा हुआ। श्रीकान्त भूल गया कि उसके पैर लहूलुहान हैं या कि उसका सिर चोट खाया हुआ। वह तो उन्ही काटो-भाटो पर उससे भी दुगुने उत्साह से चल पडा। उस हँसते हुए चेहरे को देखते-देखते वह लगातार चलता रहा। उसे पता ही नही चला कि कब वह बियावान जगल बीत गया और कब वह फूलो की महकती घाटी मे उतर आया। चारो ओर सुबह की लाली फूट रही थी और ठडी बयार चल रही थी।

खिले हुए महकते फूलो की एक झाडी के पास श्रीकान्त ठगा सा खडा रहा। उसका शरीर तन्दुरुस्त था और मन स्वस्थ। निराशा का अधेरा उसको क्या—आसपास के सारे वातावरण को भी कही छू नही रहा था। उत्साह जैसे उसकी नस-नस मे और धरती के कण-कण मे फैल रहा था। तभी उसे लगा कि मंजुला का वह हँसता हुआ चेहरा बडा होता गया, उसके नजदीक आता गया और धीरे-धीरे उसी मे समा गया। प्रेरणा पुरुषार्थ मे मिलकर एकीभूत हो गई बल्कि अपने प्रेम को प्राप्त कर गई।

× × ×

धनसुख सार्थवाह ने श्रीकान्त की भागीदारी के समय अच्छा धन कमाया था, किन्तु जब उसके लोभ ने सीमाएँ तोड दी और वह माल इधर-उधर लाने ले जाने व खरीदने बेचने से होने वाले लाभ की अपेक्षा चोर पल्लियो के सरदारो से अनैतिक समझौते करने लगा तो श्रीकान्त ने उसे छोड दिया था क्योकि उसे कैसे भी पाया हुआ धन नही, नीति से कमाया हुआ धन चाहिये था। श्रीकान्त के छोड देने के बाद कुछ समय तो धनसुख अपने अनैतिक समझौतो के बल पर खूब धन कमाने लगा लेकिन अनीति की उम्र लम्बी नही होती है। अनीति के कारण उसकी प्रतिष्ठा डूबती गई और वह चारो ओर के झगडो मे इस तरह फस गया कि उसे उन चोर पल्लियो का सारा मार्ग ही छोड देना पडा।

उस दिन वह एक नये ही मार्ग मे अपना काफिला ला रहा था। सुरक्षा की दृष्टि से काफिले के आगे-आगे एक घुडसवार चला करता था जो चारो ओर सतर्कतापूर्वक देखते हुए काफिले को आगे बढते रहने का सकेत देता था। बाद मे माल भरे वाहन के आगे-पीछे रक्षक हुआ करते, जिनके साथ सार्थवाह रहता है और पीछे अनुचर चलते। उस काफिले के घुडसवार की नजर दूर से एक वृक्ष के नीचे सोये हुए पुरुष पर पडी। उसने काफिले को रुकने का सकेत दिया और वह अपने घोडे को बढाकर उस वृक्ष तक ले गया। उसने देखा—एक पुरुष बेखबर नीद मे सोया हुआ है जिसका शरीर सूखा हुआ तो चेहरा बढी हुई दाढी मूँछो से भयावना सा दिखाई दे रहा है। उसने सोचा कि वह साधारण व्यक्ति भी हो सकता है यद्यपि लुटेरा भी हो सकता है यद्यपि लुटेरा होने की आशका कम ही थी। फिर भी सारा विवरण सार्थवाह को बताकर ही आगे बढना चाहिये—इस विचार से वह अपने घोडे को दौडाता हुआ सार्थवाह के पास पहुंचा और बोला—

"स्वामी, उस वृक्ष के नीचे एक पुरुष सोया हुआ है जिसका शरीर दुबला और

दाढी मूँछे वढी हुई हैं। होना तो साधारण व्यक्ति ही चाहिये, फिर भी सतर्क होना जरूरी है। आप भी पधारिये और उसे देख लें ताकि उसे जगाकर मिल लें तथा परिस्थिति के अनुसार कार्य करलें।"

धनसुख सार्थवाह भी उसके साथ हो लिया और वे दोनो उस वृक्ष के पास पहुच गये। वह पुरुप तव भी सोया हुआ था। धनसुख ने उसे देखा तो ऐसा लगा कि वह तो उसका पूर्व परिचित है किन्तु शरीर और चेहरे की हालत से वह उसे तुरन्त पहिचान नही पाया। इतना उसे महसूस हो गया कि डर जैसी कोई बात नही है। इस कारण धनसुख ने मीठे शव्दो मे उसे जगाया—

"भाई, उठो, यहा जगल मे अकेले कैसे सोये हुए हो ?"

दो तीन वार पुकारने पर श्रीकान्त चौककर उठ खड़ा हुआ। उसकी नजर ज्योही धनसुख के चेहरे पर पडी, वह चीख पडा—

"अरे धनसुख भाई साहव, आप यहाँ कहा मिल गये ? क्या अपना काफिला लेकर इधर से निकल रहे हैं ?"

अव धनसुख के चौंकने की वारी थी। उसकी भी याद लौट आई और वह दौडकर श्रीकान्त के गले लग गया। वह इतना ही वोल सका—"श्रीकान्त तुम हो, यह तुमने अपनी क्या हालत वना रखी है ?" और हर्षावेग मे रो पडा।

फिर तो काफिले को वही पडाव डालने के निर्देश दे दिये और दो पुराने मित्रो के मिलन की खुशी सारे वातावरण मे फैल गई। भोजन आदि से निवृत्त होकर दोनो मित्र जमकर वैठ गये यह जानने के लिये कि इतने अर्से मे किस पर क्या वीती है ?

धनसुख ने ही पहले वात शुरू की—

"श्रीकान्त, नीति की वात पर जव तुम मुझे छोडकर चले गये तव मुझे सद्‌वुद्धि आ जानी चाहिये थी किन्तु मै तो धन के लालच मे था अत जव धीरे-धीरे सभी चोर सरदारो से झगडे होने लगे तो मेरा व्यापार ही चौपट हो गया क्योकि तव मैं डर के मारे उन क्षेत्रो मे नही जा सकता था। इस तरह अनीति ने मुझे कही का नही रखा। आज भी यह नया मार्ग है जिस पर मैं अपना काफिला ले जा रहा हूँ। यहा अकस्मात् तुमसे भेंट होगी, ऐसी मैंने कल्पना तक नही की थी।"

"सयोग-दुर्योग इसी तरह आते है भाई साहव"—श्रीकान्त ने पीडा भरा उत्तर दिया जिसे सुनकर धनसुख हिल उठा, उसने पूछा—"भाई श्रीकान्त, तुम्हारी ऐसी दशा कैसे हो गई है ? क्या व्यापार मे भयंकर घाटा हुआ अथवा किसी वडी आपत्ति के चक्कर मे आ गये हो ?"

"हाँ भाई साहव, कुछ ऐसा ही गुजर गया है, जिसके कारण मुझे जगल-जगल और ग्राम-नगरो मे भटकना पड रहा है—इतना कहकर श्रीकान्त कुछ क्षण रुका,

यह सोचते हुए कि दूसरों के सामने अपनी जांघ उघाडना अच्छा नहीं कहलाता और बात को बदलकर कहने लगा—"मनुष्य का भाग्य बडा विचित्र है, उसके जीवन मे कब क्या घटित हो जाता है, कई बार उसका तनिक भी पूर्वानुमान नहीं लगता।"

"तुम ठीक कहते हो श्रीकान्त, मेरे खुद के जीवन मे ऐसी-ऐसी घटनाएँ घटी हैं जिनकी मैं कल्पना तक नही कर सकता था। कोई बात नहीं, कोई ऐसी दुर्घटना तुम्हारे जीवन मे घटी है जिसे तुम मुझे नही बतलाना चाहते किन्तु एक मित्र के नाते मेरा आग्रह है कि तुम अभी तो मेरे साथ हो जाओ, तन-मन से जरा स्वस्थ हो लो, फिर जब जी चाहे अपने गन्तव्य की ओर चले जाना।" धनसुख ने उचित नहीं समझा कि जिद करके श्रीकान्त से ऐसी दु ख भरी दुर्घटना के बारे मे पूछे जिसे वह किसी भी कारण से उस पर प्रकट करने मे सकोच कर रहा है।

श्रीकान्त का दिल भर आया, उसने धनसुख के प्रस्ताव का बहुत प्रेम से उत्तर दिया—

"भाई साहब, मैं आपके प्रेम भरे आग्रह को टालने की मनोदशा मे नही हूँ और आपके काफिले के साथ चलने से मेरी यात्रा भी ठीक रहेगी अत. मैं आपकी सेवा मे अवश्य चलूंगा।"

"श्रीकान्त, मुझे बहुत खुशी हुई है कि तुम्हारे जैसे नीतिवान एव पुरुषार्थी पुरुष का सम्पर्क मुझे फिर से मिलेगा—शायद है मुझे अपने पुराने लोभ का प्रायश्चित करने का कोई अवसर मिल जाय।"

श्रीकान्त ने विचार किया कि धनसुख कितना बदल गया है? लोभ के वशीभूत होकर वह क्रूर हो गया था किन्तु अब उसकी स्नेहभरी सहानुभूति कितनी सुखद लग रही है? उसने यह भी विचार किया कि काफिले के साथ रहते हुए किसी सुज्ञ पुरुष से मजुला का सुराग भी मिल सकता है। वैसे भी उसे खोज तो करनी ही है फिर उसे काफिले के साथ रहकर सुरक्षित रूप से ही क्यो न की जाय? उसने धनसुख के दोनो हाथ अपने हाथ मे लेकर आदरपूर्वक कहा—"भाई साहब, ऐसी क्या बात करते हैं? मैं तो आपका बहुत आभारी हूँ। जितने समय तक भी मैं आपका स्नेह पा सकूंगा, मैं प्रसन्न ही रहूँगा।

तब श्रीकान्त धनसुख के काफिले के साथ हो गया।

१३

आपत्ति अकेली नहीं आती

भयकर अटवी मे एक चोर पल्ली। चोर पल्ली का सरदार अपनी गढी में बैठा हुआ था। चारों ओर खास-खास चोर उसकी सेवा मे बैठे थे। तब चोरो के सरदार ने बात शुरू की—"भाइयो, आजकल धधा बिल्कुल नही चल रहा है। या तो हमारा संगठन ठीक से काम नही करता अथवा इस मार्ग से काफिलो का आना-जाना नही हो रहा लगता है। इस तरह तो हमारा सबका जीना ही कठिन हो जायगा।" तब अपने खास साथी की तरफ मुँह करके उसने कहा—"तुमने अपने जासूसो को ठीक तरह से काम पर लगा रखा है या नही, जो काफिलो के आने-जाने की दूर से ही जानकारी ले लें और हमे सूचना करदें ताकि पूरे बल-प्रयोग के साथ उनको हम लूट सकें ?"

उस साथी ने अदब के साथ जवाब दिया—"सरदार साहब, हमारी व्यवस्था मे कोई कमी नही है और हम सब लोग भी पूरी तरह से सावधान रहते हैं लेकिन हकीकत यह है कि काफिलो का आना-जाना ही बहुत कम हो गया है। अभी कई दिनो से तो कोई काफिला आया-गया ही नही है।"

चोरो के सरदार के मुँह पर चिंता की रेखाएँ खिच आयी और वह उदास स्वर मे बोला—"इस तरह हम कितने दिन और निकाल पायेंगे ? हमारे पास न खेती है और न कोई दूसरा धधा, मात्र आने-जाने वाले काफिलो को हम लूटते हैं और इस लूट के माल से ही अपना गुजारा चलाते हैं। अगर आसपास के किसी भी काफिले का आना-जाना नही हो रहा है तो अपनी हद को आगे बढाओ और दूर-दूर तक काफिलो की टोह रखो। ध्यान रखो कि दो-चार दिन मे तो हमे कोई न कोई शिकार मिल ही जाना चाहिये नही तो हमे कुछ दूसरी योजनाएँ बनानी पड़ेंगी।"

"वे योजनाएँ क्या होगी, सरदार ?"

"हमे फिर दूर-दूर शहरी बस्तियो पर डाके डालने होंगे और वह बडा ही जोखिम भरा काम होगा ?

"नही सरदार, हमे ऐसा नही करना पडेगा। अब कोई न कोई शिकार हमे मिल जायगा।"

इतने मे एक चोर दौडता-दौडता पहुँचा और सरदार के सामने सिर झुकाकर बोलने लगा—"खुशी की खबर है सरदार, यहाँ से तीन-चार कोस की दूरी पर एक बडे सार्थवाह का काफिला इधर ही आगे बढता हुआ आ रहा है। उसमे माल के वाहन भी काफी सख्या मे हैं और रक्षक-अनुचर भी काफी हैं। मैं जल्दी भागकर इसलिये आया हूँ कि हम अच्छे शस्त्रो से लैस होकर ज्यादा से ज्यादा सख्या मे कुछ आगे पहुँच उस काफिले को इस चतुराई से घेरें कि वे हमारे घेरे मे बन्द होकर हमारा मुकाबला नही कर सके। चूँकि काफिले के पास रक्षक-अनुचर काफी हैं और हम चोरो की सख्या उतनी नही है इसलिए हमे हमला बहुत सूझबूझ और तरकीब के साथ करना पडेगा।"

सभी चोर और चोरो का सरदार खुशी से उछल पडे। उनकी किस्मत इतनी जल्दी जाग जायगी—यह उन्होने नही सोचा था, इसलिए खुशी भी उन्हे बहुत ज्यादा हुई। चोरो के सरदार ने सबको तुरत आदेश दिया—"तुम्हारे मे से कुछ लोग रास्ते के दोनो तरफ झाडियो मे छिप जाओ और ज्यो-ज्यो काफिला आगे बढता जाय पीछे से घेराबन्दी करते जाओ और आगे से मैं खुद नाकेबन्दी करूँगा। फिर मेरा इशारा मिलते ही चारो तरफ से सभी एक साथ काफिले पर टूट पडें और सबसे पहले लोगो को बन्दी बनाते जावें। सबसे बडी सावधानी इस बात की रखनी है कि हमला करने से पहले काफिले मे से किसी को कानोकान भनक तक न पडे। जितनी ज्यादा बेखबरी मे हमला होगा उतनी ही पक्की हमारी जीत होगी।"

आदेश होते ही सभी योजना के अनुसार सशस्त्र होकर अपने-अपने स्थानो की ओर चल दिये।

× × ×

धनसुख सार्थवाह का काफिला सतर्कता व निर्भयता के साथ आगे बढ रहा था। धनसुख का हृदय अधिक आनन्दित था कि उसके साथ उसका पुराना मित्र श्रीकात भी चल रहा था। दोनो के घोडे पास-पास चल रहे थे और दोनो अपने बीते अतीत की बातें कर रहे थे।

काफिले के लिए रास्ता नया था और वह अटवी भी बडे-बडे वृक्षो तथा झाड-झखाडो से भरी हुई थी। झाडियाँ इतनी घनी थी कि उसमे छिपा हुआ कोई जानवर या आदमी दिखाई ही नहीं पडता था। आगे-आगे चलने वाला घुडसवार दूर-दूर तक दृष्टि फैलाकर देखता जा रहा था किन्तु आस-पास की झाडियो पर उसका खास ध्यान नहीं था। चोरो ने जो घेराबन्दी की थी वह इस तरह की थी कि पास-पास की झाडियो मे उन्होने अपने आप को पूरी तरह छिपा लिया था और ज्योही घेरा कस जाय, वे हमला बोल देने के लिये तैयार थे।

अचानक काफिले के आगे-आगे चलने वाला घुडसवार रुक गया और खतरे का इशारा करते हुए उसने तेज आवाज मे पीछे सूचना दी—"सावधान हो जाओ रक्षको! सामने चोरो का एक दल आगे बढा आ रहा है उसे तुरत रोको।"

चोरो का सरदार अपने कुछ साथियो के साथ आगे से आ रहा था। वे लोग तेजी से तीर चलाते जा रहे थे। इसलिए काफिले के सभी रक्षक एक साथ आगे वढ आये और अपने शस्त्रो के साथ चोरो के वार झेलने लगे और उन पर वार करने लगे। वस यही मौका था—चोरो के सरदार ने इशारा किया और वाकी चोरो ने दोनो वाजुओ तथा पीछे से एक साथ हल्ला बोल दिया। रक्षक आगे थे और पीछे सभी लोग निहत्थे रह गये थे इस कारण चोरो ने धड़ाधड उनको वन्दी बना लिया और माल के वाहनो पर कब्जा कर लिया। फिर चोरो का पूरा दल एक साथ काफिले के रक्षको पर टूट पडा। रक्षक भी उनका सामना न कर सके और विवश होकर हार गये।

चोरो के सरदार की घेरावन्दी कामयाव रही। उन्हे इतना माल हाथ लगा था कि वे महीनो तक सवका गुजारा चला सकते थे। अपनी इस कामयावी के कारण वे लोग खुशी से पागल हुए जा रहे थे। सरदार ने एक तेज आवाज लगाकर सवको सावधान किया और हुक्म दिया—"तुम में से कुछ लोग सभी वन्दियो को वाँध लो और उन्हे एक साथ गढी के पिछले वाले कमरे मे ले जाओ जहाँ इन सवको वन्द रखा जायगा। वाकी सव लोग माल के वाहनो को साथ लेकर अपने गोदामो की तरफ चलो।"

सरदार की आज्ञानुसार माल के वाहन गोदामो की तरफ ले जाने लगे तो दूसरे चोरो ने सभी काफिले वालो को वन्दी वनाना शुरू कर दिया। वे चोर क्रूर और नृशस थे—काफिले के लोगो को वे वुरी तरह से पीटते जाते और रस्सियो से वाँधते जाते थे। वाँध लेने के वाद एक-एक चोर दस-दस आदमियो को खीचता और घसीटता जाता था। कष्टो से कराहते हुए काफिले के रक्षक और अनुचर चोरो को विवशता की नजरो से देख रहे थे कि वे पूरी तरह सतर्क न रहने के कारण ही अपने स्वामी के प्रति रक्षा का अपना कर्तव्य नही निभा पाये थे। इस कारण स्वामी और स्वामी का माल तो खतरे मे पडा ही किन्तु वे खुद भी खतरे मे पड गये थे। वे सोच नही पा रहे थे कि अव इन चोरो की कैद से कव और कैसे छुटकारा हो सकेगा ?

काफिले के साथ धनसुख भी वन्दी वनाया ही गया था किन्तु अभागा वना था श्रीकात जो अकारण ही इस विपदा मे फँस गया था और वह भी सवके साथ वन्दी वना लिया गया था।

× × ×

कहते हैं कि आपत्ति कभी अकेली नही आती और श्रीकात के साथ ऐसा ही कुछ घटित हो रहा था। कहाँ तो वह अपनी प्रिय पत्नी और लाडले लाल की खोज करने निकला था और कहाँ वह खुद ही इस मुसीवत मे फँस गया ? उस चोरपल्ली की कैद मे वैठा हुआ श्रीकात, विचारने लगा—"यह कैसे-कैसे कर्मों का उदय है कि ऐसी विचित्र दशा वन गई है ? मैंने अपने मित्र धनसुख का काफिले के साथ चलने का आग्रह इस कारण स्वीकार किया था कि मैं अधिक सुरक्षित होकर खोज कर सकूँगा किन्तु उसे मैं अपने भाग्य का ही दोष मानू कि उल्टे मैं अधिक असुरक्षा मे गिर गया हूँ। इन चोरो के मन

को कौन जानता है कि ये सबके साथ कैसा व्यवहार करेंगे ? वह इसी सोच मे डूबा हुआ था कि धनसुख ने उसके कान मे फुसफुसा कर कहा—"क्यो श्रीकात, अगर हम चोरो से यह प्रस्ताव करें कि वे हमारा सव माल ले ले और हमे छोड दें तो कैसा रहेगा ?"

श्रीकात ने घनसुख की वात का समर्थन किया और तभी उनकी चौकीदारी कर रहे एक चोर को श्रीकात ने पास बुलाकर कहा –"क्यो भाई, तुम हमारा एक काम करोगे ?"

उस चोर ने जैसे वह वात सुनी ही नही और वह अपनी जगह पर तन कर खडा ही रहा। श्रीकात ने सरलता से फिर कहा—"भाई जरा वात तो सुन लो।" तव चौकी-दार ने ऐंठकर पूछा—"कहो, क्या कहना चाहते हो ?" फिर श्रीकात ने उसे समझाया कि वह अपने सरदार से जाकर वात करे और उनके प्रस्ताव को वतावे कि हमारा सव माल सरदार रख ले लेकिन हम सवको छोड दे। सारी वात वताकर श्रीकात ने उससे एक और माँग की—"इसमे हम तुम्हारी भी मदद चाहते हैं कि तुम हमारा प्रस्ताव सरदार को वताकर हमारी ओर से यह सिफारिश भी करना कि कई वन्दी वहुत दुःखी हो रहे है, उनके परिवारो के दूसरे काम भी हैं इस कारण सवको जल्दी मुक्त कर दें।"

उस चौकीदार चोर ने इतना ही कहा—"खैर, तुम कह रहे हो तो मैं अपने सर-दार को जाकर तुम्हारी वात वता दूँगा, लेकिन मुझे उम्मीद नही है कि सरदार तुम्हे छोड दें। हमारी पल्ली का यह नियम है कि लूटे हुए काफिले वालो के साथ पूरी निर्दयता का वर्ताव किया जाय ताकि वे यहाँ से छूटकर किसी भी तरह की कार्यवाही करने से वाज आवें। अभी तो तुम लोगो को वन्दी वनाये हुए चद दिन ही तो हुए हैं।" और वह चौकीदार अपने सरदार से पूछने के लिये चला गया।

थोडी देर मे उसने लौटकर वताया कि उनका छुटकारा अभी जल्दी नही हो सकेगा—सरदार ने साफ-साफ मना कर दिया है।

श्रीकात शात चित्त से वैठ गया और ध्यानमग्न होकर सोचने लगा कि जो भवि-तव्य मे होगा सो होगा, उसे अपने मन मे किसी तरह की अशाति को स्थान नही देना चाहिये।

१४

पुरुषार्थी आत्मा का प्रभाव

"भाई, तुम आज उदास दिखाई दे रहे हो, क्या बात हो गई है ?" श्रीकान्त ने बडे प्रेम से उन पर चौकीदारी कर रहे उस चोर से पूछा, जो उससे परिचित हो गया था। श्रीकान्त ने सोचा कि अभी कुछ ही दिन पहले तो इस चोरपल्ली के चोरो ने उनके काफिले को लूट कर बहुत कीमती माल पाया है और इसी कारण उस दिन ये लोग भारी खुशी मे झूम रहे थे, फिर आज क्या कारण हो गया कि इन लोगो के मुह उतरे हुए हैं ?

समझें कि दो व्यक्ति साथ रह रहे हैं जिनमे एक व्यक्ति सद् प्रवृत्ति वाला है तो दूसरा दुष्ट प्रवृत्ति वाला। किन्तु दुष्ट प्रवृत्ति वाले व्यक्ति को भी दु खी देखकर सद् प्रवृत्ति वाले व्यक्ति का दिल पिघल जाता है और वह उसकी सहायता करने के लिये तैयार हो जाता है। वह यह नही सोचता कि इस व्यक्ति ने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया था या अभी तक कर रहा है। वह तो यही सोचता है कि उसका काम वह करे, मुझे मेरी प्रवृत्ति के अनुसार ही कार्य करना है, बल्कि वह अपनी सद् प्रवृत्ति के बल पर दुष्ट प्रवृत्ति वाले व्यक्ति के जीवन को भी बदल देने का प्रयास करता है। श्रीकान्त ऐसी ही सद्प्रवृत्ति वाला पुरुषार्थी युवक था अत वह उन चोरो की उदासी को भी कैसे सहन करता, जिन्होंने भले ही अकारण काफिले को लूटा था और उन निरपराधियो को वन्दी बना लिया था।

अपने ही वन्दी श्रीकान्त की सहानुभूति पूर्ण बात सुन कर वह चौकीदार चोर भी हिल उठा कि कितना सज्जन व्यक्ति है यह, जो अपने पर अत्याचार करने वाले का भी भला सोच रहा है। उसका मन तरल हो गया, भावनाओ मे एक ज्वार सा आया और उसका गला रु ध सा गया—वह कुछ बोल नही पाया।

"क्यो भाई, तुम कुछ बोल नही रहे हो ? क्या दु ख का कोई इतना बडा कारण है कि जो तुम्हारे मन को इस तरह मथ रहा है ? तुम्हारे दु ख से मेरा मन भी दु खी हो रहा है, इस कारण मैं चाहता हू कि तुम अपना दु:ख मुझे कहो ताकि यदि मैं उसे मिटाने के लिए कुछ कर सकूँ तो मैं सहर्ष करने को तैयार हू"—श्रीकान्त ने जैसे उसके मन की भीतरी परतो मे प्रवेश करते हुए अपने सदाशयी सहयोग का प्रस्ताव रखा।

जव आत्मीयता के भाव से कोई कुछ पूछता है और सौजन्यता का स्नेह भरा व्यवहार करता है तो सामने वाला कितना ही निर्दयी हो, नरम और सरल पड जाता है। वह चोर भी पिघल पडा—उसकी आखो से आसू वह चले। वह वडी ही नरमाई से वोला—

"भाई साहव, आप मनुष्य ही नही, देवता मालूम होते हैं। हमने आपको लूटा, पकडा और कल ही आपके अच्छे प्रस्ताव को भी ठुकरा दिया, फिर भी आप हम अन्यायियो के साथ इतनी सहानुभूति जतला रहे हैं ? मैं तो शर्म के मारे जमीन मे गडा जा रहा हू .. ।"

श्रीकान्त ने उसकी पीठ पर थपकी देते हुए कहा—"ऐसी कोई वात नही है भाई। एक को दूसरे के दु ख मे मदद करनी ही चाहिये। तुम मुझे अपने दु ख का कारण अवश्य वताओ, मैं मेरे योग्य मदद करने के लिये उत्सुक हो रहा हू।"

"जव आप इतनी आत्मीयता से पूछ रहे हैं तो मैं भी कहे विना नही रह सकता हू। आपने मेरे कडे दिल को भी मोम वना दिया है। भाई साहव, वात यह है कि हमारे सरदार के जवान लडके को एक पिशाच लग गया है जिसके कारण वह गम्भीर रूप से पीडित हो गया है। सरदार तो अव वृद्ध हो रहे हैं—वह लडका ही सारी पल्ली की आशा का दीपक है। वह हमारा भावी सरदार भी है। यही कारण है कि मैं अकेला ही नही, सारी पल्ली वाले उदास हो रहे हैं। उसकी दशा देखी नही जाती है—वह वार-वार वेहोश होता रहता है। ऐसा लगता है जैसे कि उसकी नाडियाँ टूट रही हो। कोई उपचार भी उसके लागू नही हो रहा है। अव आप कोई उपचार जानते हों तो मैं तुरन्त जाकर सरदार को सूचित करू ?"—यह कह कर वह चौकीदार एकटक श्रीकान्त की ओर आशा भरी नजरो से देखने लगा।

श्रीकान्त एक समदृष्टि एव पुरुषार्थी आत्मा थी। उसमें सव तरह का विज्ञान था। अन्त करण से एक आवाज उठी—इस अवसर का सदुपयोग किया जाना चाहिए, क्योंकि अगर एकनिष्ठ पुरुषार्थ के प्रभाव से सरदार का लडका स्वस्थ हो जाता है तो हो सकता है कि सारी पल्ली के लोगो के स्वभाव व धधे मे वदलाव लाया जा सके। और कुछ नही होगा तव भी लडके का मरण तो सुधारा ही जा सकेगा कि वह आर्त व रौद्र ध्यान मे ग्रस्त होकर न मरे। यह विचार कर श्रीकान्त ने सरदार के लडके की शान्ति हेतु प्रयास करने का निश्चय कर लिया और उस चौकीदार से कहा—"भाई, तुम अपने सरदार से पूछ कर आ जाओ। मैं उस लडके का उपचार करना चाहता हू और सयोग ठीक रहा तो वह स्वस्थ भी हो सकेगा।"

उस चौकीदार चोर के लिये उस समय उससे वडी सुखद वात क्या हो सकती थी, उसने हर्षित होकर पूछा—"क्या आप मन्त्रवादी हैं अथवा तन्त्रवादी ? आप उसका क्या उपचार करेंगे ?"

"मेरा विश्वास अपनी निज की आत्म-शक्ति मे है। मै उस पीडित लडके को शांति देने का प्रयास करूगा ताकि तुम्हारे सरदार तथा सारी पल्ली के लोगो को शान्ति मिले।"

"मैं सरदार के पास पूछने के लिए जा रहा हू किन्तु उपचार के लिए आवश्यक सामग्री—भैंसे, बकरे आदि की बलि देनी हो तो—मुझे बता दें ताकि मैं सामग्री तैयार रखने की भी सूचना करदूँ।"

"भाई, ये बलि और हिंसा की बातें गलत है। एक की हिंसा से दूसरे को आराम हो—ऐसा कभी नही होता। मैं तो अहिंसक तरीके का मत्र जानता हू और उसी से शान्ति मिल सकेगी।"

"मैं अभी ही दौडकर सरदार के पास जा रहा हू।" यह कह कर वह चला गया। थोडी ही देर मे वह वापिस लौटकर आया और श्रीकान्त को सम्मान सहित अपने साथ ले गया।

× × ×

गढी के भीतर का दृश्य बडा कारुणिक था। सरदार का इकलौता बेटा जोर से उछल कूद कर रहा था तो कभी दीवाल से अपना सिर फोडता था। लोग पकडना चाहते, मगर किसी की भी पकड मे वह नही आ रहा था। बेटे की ऐसी दुर्दशा देखकर सरदार और उसकी पत्नी ही नही, बल्कि पल्ली के सभी नर-नारी व बच्चे, जो वहाँ इकट्ठे थे, दु खी हो रहे थे। ओझा लोग मन्त्र बोल रहे थे और धूप दे रहे थे। दूसरे उपचार करने वाले भी अपने-अपने प्रयोग कर रहे थे लेकिन पिशाच से पीडित उस जवान लडके पर किसी का कोई असर दिखाई नही दे रहा था।

तभी चौकीदार के साथ श्रीकान्त ने वहाँ प्रवेश किया। सरदार उसकी अगवानी मे खडा था, लेकिन शर्म के मारे कुछ भी बोल नही सका कि जिस निरपराध को उसने बन्दी बना रखा था, वही बदला लेने की बजाय उसकी मदद करने के लिये आया है। श्रीकान्त ने वहाँ पहुच कर कहा—

"भाइयो! मैं इस पीडित जवान को शान्ति देने के लिये आया हू, इसके लिये मैं शान्त चित्त से महामन्त्र का जाप करूगा। आप जो भी इसके लिये प्रयोग कर रहे हैं, उन सबको एकदम बन्द करदें। आप सब लोग भी एकदम चुप हो जावें। ध्यान रखें कि मेरे जाप करने तक कोई चू भी न करे, वरना इस पीडित को शान्ति नही मिलेगी।"

तब सरदार बोला—"आपको जाप के लिये क्या-क्या सामग्री चाहिये—मैं तुरन्त मगवा लेता हू।"

"मुझे कोई सामग्री नही चाहिये, सिर्फ चारो ओर एकदम शान्ति चाहिये। यह

जब आत्मीयता के भाव से कोई कुछ पूछता है और सौजन्यता का स्नेह भरा व्यवहार करता है तो सामने वाला कितना ही निर्दयी हो, नरम और सरल पड जाता है। वह चोर भी पिघल पडा—उसकी आखो से आसू बह चले। वह बडी ही नरमाई से बोला—

"भाई साहब, आप मनुष्य ही नही, देवता मालूम होते हैं। हमने आपको लूटा, पकडा और कल ही आपके अच्छे प्रस्ताव को भी ठुकरा दिया, फिर भी आप हम अन्यायियो के साथ इतनी सहानुभूति जतला रहे हैं ? मैं तो शर्म के मारे जमीन मे गडा जा रहा हू. .. ।"

श्रीकान्त ने उसकी पीठ पर थपकी देते हुए कहा—"ऐसी कोई बात नही है भाई। एक को दूसरे के दु ख मे मदद करनी ही चाहिये। तुम मुझे अपने दु ख का कारण अवश्य बताओ, मैं मेरे योग्य मदद करने के लिये उत्सुक हो रहा हू।"

"जब आप इतनी आत्मीयता से पूछ रहे हैं तो मैं भी कहे बिना नही रह सकता हू। आपने मेरे कडे दिल को भी मोम बना दिया है। भाई साहब, बात यह है कि हमारे सरदार के जवान लडके को एक पिशाच लग गया है जिसके कारण वह गम्भीर रूप से पीडित हो गया है। सरदार तो अब वृद्ध हो रहे हैं—वह लडका ही सारी पल्ली की आशा का दीपक है। वह हमारा भावी सरदार भी है। यही कारण है कि मैं अकेला ही नही, सारी पल्ली वाले उदास हो रहे हैं। उसकी दशा देखी नही जाती है—वह बार-बार बेहोश होता रहता है। ऐसा लगता है जैसे कि उसकी नाडियाँ टूट रही हो। कोई उपचार भी उसके लागू नही हो रहा है। अब आप कोई उपचार जानते हो तो मैं तुरन्त जाकर सरदार को सूचित करू ?"—यह कह कर वह चौकीदार एकटक श्रीकान्त की ओर आशा भरी नजरो से देखने लगा।

श्रीकान्त एक समदृष्टि एव पुरुपार्थी आत्मा थी। उसमे सब तरह का विज्ञान था। अन्त करण से एक आवाज उठी—इस अवसर का सदुपयोग किया जाना चाहिए, क्योंकि अगर एकनिष्ठ पुरुपार्थ के प्रभाव से सरदार का लडका स्वस्थ हो जाता है तो हो सकता है कि सारी पल्ली के लोगो के स्वभाव व धधे मे बदलाव लाया जा सके। और कुछ नही होगा तब भी लडके का मरण तो सुधारा ही जा सकेगा कि वह आर्त व रौद्र ध्यान मे ग्रस्त होकर न मरे। यह विचार कर श्रीकान्त ने सरदार के लडके की शान्ति हेतु प्रयास करने का निश्चय कर लिया और उस चौकीदार से कहा—"भाई, तुम अपने सरदार से पूछ कर आ जाओ। मैं उस लडके का उपचार करना चाहता हू और सयोग ठीक रहा तो वह स्वस्थ भी हो सकेगा।"

उस चौकीदार चोर के लिये उस समय उससे बडी सुखद बात क्या हो सकती थी, उसने हर्पित होकर पूछा—"क्या आप मन्त्रवादी हैं अथवा तन्त्रवादी ? आप उसका क्या उपचार करेंगे ?"

"मेरा विश्वास अपनी निज की आत्म-शक्ति मे है। मैं उस पीडित लड़के को शांति देने का प्रयास करूगा ताकि तुम्हारे सरदार तथा सारी पल्ली के लोगो को शान्ति मिले।"

"मैं सरदार के पास पूछने के लिए जा रहा हू किन्तु उपचार के लिए आवश्यक सामग्री—भैंसे, वकरे आदि की वलि देनी हो तो—मुझे वता दे ताकि मैं सामग्री तैयार रखने की भी सूचना करदूँ।"

"भाई, ये वलि और हिंसा की वातें गलत हैं। एक की हिंसा से दूसरे को आराम हो—ऐसा कभी नही होता। मैं तो अहिंसक तरीके का मत्र जानता हू और उसी से शान्ति मिल सकेगी।"

"मैं अभी ही दौडकर सरदार के पास जा रहा हू।" यह कह कर वह चला गया। थोडी ही देर मे वह वापिस लौटकर आया और श्रीकान्त को सम्मान सहित अपने साथ ले गया।

× × ×

गढी के भीतर का दृश्य वडा कारुणिक था। सरदार का इकलौता वेटा जोर से उछल कूद कर रहा था तो कभी दीवाल से अपना सिर फोडता था। लोग पकडना चाहते, मगर किसी की भी पकड मे वह नही आ रहा था। वेटे की ऐसी दुर्दशा देखकर सरदार और उसकी पत्नी ही नही, वल्कि पल्ली के सभी नर-नारी व वच्चे, जो वहाँ इकट्ठे थे, दु खी हो रहे थे। ओझा लोग मन्त्र वोल रहे थे और धूप दे रहे थे। दूसरे उपचार करने वाले भी अपने-अपने प्रयोग कर रहे थे लेकिन पिशाच से पीडित उस जवान लडके पर किसी का कोई असर दिखाई नही दे रहा था।

तभी चौकीदार के साथ श्रीकान्त ने वहाँ प्रवेश किया। सरदार उसकी अगवानी मे खडा था, लेकिन शर्म के मारे कुछ भी वोल नही सका कि जिस निरपराध को उसने वन्दी वना रखा था, वही वदला लेने की वजाय उसकी मदद करने के लिये आया है। श्रीकान्त ने वहाँ पहुच कर कहा—

"भाइयो! मैं इस पीडित जवान को शान्ति देने के लिये आया हू, इसके लिये मैं शान्त चित्त से महामन्त्र का जाप करूगा। आप जो भी इसके लिये प्रयोग कर रहे हैं, उन सवको एकदम वन्द करदें। आप सव लोग भी एकदम चुप हो जावे। ध्यान रखें कि मेरे जाप करने तक कोई चू भी न करे, वरना इस पीडित को शान्ति नही मिलेगी।"

तव सरदार वोला—"आपको जाप के लिये क्या-क्या सामग्री चाहिये—मैं तुरन्त मगवा लेता हू।"

"मुझे कोई सामग्री नही चाहिये, सिर्फ चारो ओर एकदम शान्ति चाहिये। यह

लडका उछले-कूदे या चाहे जो करे, आप कोई कुछ न बोलें—न अपने स्थान से ही हटें।"

इतना कह कर श्रीकान्त उस पिशाच-पीडित लड़के के ठीक सामने आसन लगाकर वैठ गया और दत्तचित्त होकर महामन्त्र का जाप करने लगा। चारो ओर अपूर्व शान्ति छा गई। बीच-बीच मे उस लडके की यदा-कदा चीख निकलती थी तभी शान्ति भग होती थी किन्तु श्रीकान्त पूर्णतया ध्यानस्थ होकर मन्त्रपाठ कर रहा था। यह क्रम काफी देर तक चलता रहा और ज्यो-ज्यो समय वीतता जा रहा था, सरदार तथा पल्ली के लोगो की आशाएँ वढती जा रही थी।

तभी अचानक वह लडका जोर से कूदा और पैर पटक कर चीखा—"इस लडके ने मेरे साथ वडा अत्याचार किया। मैं एक राहगीर के रूप मे इस रास्ते से गुजर रहा था तव इसने मुझे लूटा ही नही, वल्कि मुझे वहुत पीटा और पीटते-पीटते मार डाला। मर कर मैं व्यन्तर जाति का देव वना हू और अभी इसके शरीर मे प्रविष्ट होकर अपने अत्याचार का वदला ले रहा हू कि मैं भी इसे तडपा-तडपा कर मारू।" फिर श्रीकान्त की ओर मुंह करके उसने कहा—"महाशयजी, आपके मन्त्र-पाठ से मुझे शान्ति का अनुभव हुआ है और मैं असमजस मे पड गया हू कि मैं वदला लू या इस लडके को छोड दू ?"

उपयुक्त अवसर जानकर श्रीकान्त ने उस पिशाच को लक्ष्य करके कहा—"देखो, वैर का वदला वैर से लोगे तो वैर का क्रम कभी टूटेगा ही नही। आज तुम इसे तग कर रहे हो, कल इसकी आत्मा तुमसे वदला लेगी और बदले की हिंसा-प्रतिहिंसा मे दोनो जलते रहोगे। इससे दोनो का भला इसमे है कि तुम अपना वैर छोड दो और यह वैर की साकल टूट जायगी।"

थोडी देर तक सन्नाटा छाया रहा और देखते-देखते वह लडका श्रीकान्त के पैरो मे झुक आया और धीरे-धीरे कहने लगा या यो कहिये कि उसके भीतर घुसा हुआ पिशाच वोला—

"आप परम दयालु दिखाई देते हैं। आपके मन्त्र पाठ और व्यक्तित्व का मेरे मन पर वहुत अच्छा असर पडा है। मैं ही आपकी आज्ञा से अपना वैर छोड देता हूँ और इसके पिंड को भी छोड कर चला जाता हूँ। आपने मुझे जो अमूल्य शान्ति दी है, मैं आपका ऋणी रहूँगा। कभी भी आप मेरा ध्यान करेंगे तो मैं आपकी सेवा मे हाजिर हो जाऊँगा। महाशयजी, मैं अव न तो भविष्य मे इसको सताऊँगा और न किसी और को ही। आपकी जय हो ....।"

सभी लोगो ने चकाचौंध नजरो से देखा कि एक धुए जैसी आकृति सरदार के लडके के शरीर से निकल कर ऊपर अन्तर्ध्यान हो गई। श्रीकान्त की पुरुषार्थी आत्मा के प्रभाव के रूप मे इस विचित्र दृश्य को देख कर सभी स्तम्भित थे। तव भी वह लडका

श्रीकान्त के पैरो मे झुका हुआ था और पूरी तरह स्वस्थ लग रहा था। उसने श्रीकान्त के पैरो की धूल अपने माथे पर लगा कर श्रद्धा से ऊपर देखा। श्रीकान्त ने वडे ही प्रेम से पूछा—"कहो भाई, अब तुम्हारी तवियत कैसी है ?"

"आपकी कृपा से मैं तो जैसे नई ही दुनिया मे नया जन्म लेकर आया हूँ। मुझे अब किसी तरह की पीडा महसूस नही हो रही है, वल्कि आपके सान्निध्य से मन मे शान्ति समा गई है और खुशी भर गई है। पिशाच का मामला मुझे अच्छी तरह समझ मे आ गया है और मैंने मन ही मन निश्चय कर लिया है कि अब मैं भविष्य मे न तो चौर कर्म करूगा और न ही कभी भी हिंसा मे लिप्त होऊँगा। यह आपके महामन्त्र का चमत्कार है।"—कहते-कहते वह सरदार का इकलौता वेटा रोने लगा और श्रीकान्त से वार-वार अपनी पल्ली वालो द्वारा किये गये कुकृत्य के लिए माफी मागने लगा।

तभी स्वय सरदार उठ खडा हुआ और श्रीकान्त के सामने हाथ जोडकर वोला—"आप एक महान् पुरुप हैं। कहाँ तो हमने आपके साथ भारी अत्याचार किये और कहाँ आपने दिल खोल कर मेरे ऊपर उपकार किया ? आपने मेरे लडके और पिशाच को ही नहीं, मुझे और सारी पल्ली वालो को जगा दिया है। मैं इसी समय आप समेत सारे काफिले वालो को माल सहित मुक्त कर रहा हूँ और आपके सामने प्रतिज्ञा कर रहा हूँ कि अब से मैं व पल्ली वाले भी चौर कर्म छोड कर दूसरे सही धन्धो से अपना जीवन निर्वाह करेंगे। एक आपसे मेरी निजी प्रार्थना है कि काफिले वालो के जाने के वाद भी कुछ दिन आप हमारे मेहमान वन कर रहे और हमारे जीवन परिवर्तन मे हम को रास्ता वतावें।"

यह तो जैसे क्रान्ति हो गई थी। एक पुरुषार्थी आत्मा ने कितनी ही पतित आत्माओ को पतन की गहरी नीद से जगा दिया था। उसका प्रभाव उत्थान का प्रकाश वन कर सारी पल्ली पर छा गया था। श्रीकान्त ने उत्तर दिया—

"भाइयो ! आप सव के मन मे एक नई जागृति आई—इसकी मुझे वहुत-वहुत खुशी है। आपने अन्याय का अच्छा प्रायश्चित कर लिया है। आपके अनुरोध पर कुछ दिन आपके साथ रहने को मैं तैयार हूँ।"

तव पल्ली वाले और काफिले वाले आपस मे प्रेमपूर्वक गले मिले तथा पल्ली वालो के साथ श्रीकान्त ने भी धनसुख को और उसके काफिले को स्नेहपूर्वक विदाई दी।

× × ×

कुछ दिन श्रीकान्त उस चोर पल्ली मे रुका और उसने उन्हे खेती वगैरा के नये धधे भी सिखाये तो धर्म साधना का मार्ग भी सुझाया। उसके कहने से उस पल्ली का नाम वदल कर प्रेम पल्ली कर दिया गया।

श्रीकान्त को विदाई देते हुए सरदार का दिल भर आया और भेंट स्वरूप एक चूर्ण की पोटली देकर उसने कहा—"आपका अहसान हमेशा हमारे दिल-दिमाग पर छाया हुआ

रहेगा, जो सूर्य की किरण की तरह सही रास्ता दिखाता रहेगा । मैं आपको यह छोटी-सी भेंट दे रहा हूँ । इस पोटली मे जो चूर्ण है उसकी विशेषता यह है कि इसको पानी या किसी पेय पदार्थ मे घोल कर किसी को पिला दिया जाय तो वह दो चार घटे तक मीठी नीद सोया हुआ रहेगा । इसको थोडा सा किसी के चेहरे पर छिडक भी दें तो वह यकायक वेहोश हो जायगा । यह चीज आपके कही काम आयगी । हमारे तो अब काम की है नही ।"

"मैं तो अपने आत्मवल पर भरोसा करता हूँ, फिर भी आपका मन रखने के लिये इस भेंट को ले लेता हूँ । आप अब अपने नये जीवन को ज्यादा से ज्यादा उन्नत बनाते रहे—यही मेरी शुभकामना है"—श्रीकान्त ने अपना अन्तिम सदेश सुनाया और सबसे विदा लेकर अपनी खोज के मार्ग पर चल पडा ।

१५

प्रायश्चित, वैराग्य और दीक्षा

श्रीकान्त जव मजुला और अपने पुत्र को खोजने के लिये निकल पडा तव पश्चात्ताप मे डूवी श्रीकान्त की मा और वहन कुछ वोल तो नही सकी किन्तु उनके मन का सताप और अनुताप सीमा से परे पहुँच गया था। मा के लिये यह वहुत वडा आघात था कि उसने जिन हाथो से मजुला के कुमकुम के पगलिये अपने घर आगन मे अकित करवा कर नये सुखद परिवार की नीव रखी थी, वही नीव उसके ही हाथो उखाड कर फेंक दी गयी। वहू और पोते से तो उसने हाथ धोया ही किन्तु उसका परम लाडला इकलौता वेटा भी घर छोडकर चला गया था और आशा की हल्की रेखा भी दिखाई नही दे रही थी कि उसका वेटा अपने परिवार के साथ अथवा अकेला कभी लौटकर भी आयेगा। सोचते-सोचते श्रीकात की मा की आँखो से झरझर आँसू झरने लगे, मुँह से झाग जैसे निकले और वह मूर्छित होकर नीचे गिर पडी।

पद्मा के भीतर का ताप भी कम नही था। असल मे तो इस सारी विनाशलीला के लिए वह स्वय को ही दोषी मान रही थी। यदि व्यर्थ की ईर्ष्या से वह अपने हृदय को नही जलाती और उसके स्थान पर वह अपनी सद्‌गुणी भाभी के लिये सम्मान और स्नेह की ज्योति जगाती तो इस परिवार के सुखमय जीवन का दूसरा ही दृश्य उपस्थित होता। पद्मा युवावस्था की ओर वढ ही रही थी जवकि उसे सुख का सुनहला प्रकाश मिलना चाहिये था, अपनी ही करणी से उसने वहाँ घना अधकार फैला दिया था। मा की मूर्च्छा को देखते ही उसके दिल की धडकन वहुत तेज हो गयी और वह जोर-जोर से विलाप करने लगी। उसका रोना इतना तेज था जैसे कि कान फाड रहा हो और सुनने वालो का दिल चीर रहा हो।

ऐसा करुण विलाप सुनकर पड़ोसी लोग दौडे हुए आये और हवेली मे इकट्ठे हो गये। लोगो ने तत्काल पद्मा की मा के मुँह पर ठडे पानी के छींटे दिये और दूसरा उपचार भी किया जिससे उसकी मूर्च्छा दूर हो गयी। जव मा और वेटी स्वस्थ सी हुई तो एक वुजुर्ग पडौसी ने ढाढस वंधाते हुए कहा—

"देखो, जो कुछ होना था सो हो गया। यह तो जिसका जिस तरह का कर्मवन्ध होता है और वे कर्म जव उदय मे आते हैं तव उनका भुगतान लेना पड़ता है। श्रीकात

और मजुला के पहले के किन्ही कर्मों का उदय हुआ और यह सारा बनाव बना जिसमे आप दोनो को भी निमित्त बनना पडा। इसलिए अब दोनो मा-बेटी इसको शात भाव से सहन करो और प्रायश्चित द्वारा अपने मन को स्वच्छ बनाओ। इस तरह हाय विलाप करके अपने जीवन को और काला मत करो।"

यह सुनकर श्रीकात की माँ तो बुरी तरह से फूट पडी—"अपने इस दुर्भाग्य पर मैं शात कैसे रहूँ ? मेरा मन एक पल के लिये भी चैन नही पा रहा है और मुझे अपना यह जीवन व्यर्थ लग रहा है।" पद्मा के हृदय की टीस तो चुपचाप आँसुओ मे ही बह रही थी।

उन्ही बुजुर्ग पडौसी ने सरलता और प्रेम से समझाया—"अब पछताने और दुःख करने से कुछ होने वाला तो है नही, फिर अपनी आत्मा को कलुषमय बनाने से क्या लाभ ? अभी अपने नगर मे बडी गुणवान साध्वियाँ आयी हुई हैं, उनके पास आपको ले जावें—वे अपनी अमृत वाणी से दोनो के दिलो को अवश्य ही शान्ति पहुँचा सकेंगी।" फिर उन्ही सज्जन ने वहाँ इकट्ठी हुई महिलाओ से कहा—"आप लोग थोडी देर इनके पास बैठो, पूछताछ करो और इनके मन को स्वस्थ बनाओ। तब इनको महासतियाँ के यहाँ ले जाना और इन्हे धर्म श्रवण कराना। ध्यान रखना कि पडौसी भाई से भी बढकर होता है और उसे पडौसी के सुख-दु ख मे हमेशा सम्मिलित रहना चाहिये।"

सब पडौस की महिलाएँ वही रुक गई और पुरुष अपने-अपने घरो को चले गये।

× × ×

"हमारे हाथो बहुत बडा अन्याय हो गया है, गुरानी जी महाराज और उसका हम आपके चरणो मे प्रायश्चित करना चाहती है। मैंने ही अधिक आग्रह करके अपने इकलौते बेटे श्रीकांत का विवाह रचाया था और मेरी परख भी खरी थी कि मुझे अतीव गुणशाली बहू मिली। मेरा बेटा परदेश चला गया और झूठे भ्रम मे मैने उसी बहू को अपने घर से निकाल दिया। बहू ने हमारे भ्रम का सही-सही स्पष्टीकरण किया था किन्तु मैं अपने रोष पर काबू नही कर पायी। मेरा बेटा जब परदेश से लौटकर आया तब सारा सत्य खुल गया कि मेरी जल्दबाजी से सोने समान गृहस्थी उजड गयी है। अब बेटा तो बहू की खोज करने के लिये चला गया है लेकिन हमारे पश्चात्ताप की सीमा नही है। रात-दिन यह घटना हमारे मन को कचोटती रहती है और हमको यह सूझ नही पा रहा है कि हम हमारी भूल का प्रायश्चित क्या करे और कैसे बिगडी हुई बात को बनावें ? हम आपसे वह मार्ग खोजना चाहती हैं कि जिस पर चलकर शान्ति मिले।" श्रीकात की मा ने महासतियांजी के समक्ष यह निवेदन करते हुए अपनी और अपनी बेटी पद्मा की आत्मा के कल्याण हेतु निर्देश मागे। मा और बेटी सविधि वन्दना करके महासतियांजी के सामने विनयावनत खडी रही।

महासतियांजी परम प्रतापी धर्मोपदेशिकाएँ थी। उन्होने संसार की गतिविधियाँ भी देखी थी और धर्म साधना का गहरा अनुभव भी लिया था। वे भव्य प्राणियो के मन मे

चलने वाली विचारो की उथल-पुथल को भी समझती थी । तब बडी साध्वीजी ने श्रीकात की मा और वहिन के चेहरो पर आते-जाते हुए भावो का वारीकी से निरीक्षण किया और उनके हृदयो से उमडने वाले गहरे प्रायश्चित को समझा । तब वे उन दोनो को आश्वस्त करती हुई सी उपदेश के रूप मे कहने लगी—

"भद्राओ ! ससार मे मोह की स्थिति रहती है और मोह से राग तथा द्वेष की उत्पत्ति होती है । इसी राग तथा द्वेष के चक्कर मे भटकी हुई आत्माएँ आर्त व रौद्र ध्यानो को ध्याती हुई अपने स्वरूप को विकृत वनाती रहती हैं । परन्तु जो आत्माएँ शुक्ल एव धर्म ध्यानो की शुभता मे रमण करती है वे अपने स्वरूप पर लगी हुई कालिमा को धो डालती हैं । तव उनके भावो मे द्वेष भी नही रहता और राग भी नही रहता । उन्हे हम वीतराग देव कहते हैं । ऐसे वीतराग देव जो उपदेश फरमाते हैं उन पर आचरण करने से अन्य ससारी आत्माएँ भी अपने स्वरूप को उज्ज्वल वना सकती हैं । हमने उसी वाणी का अध्ययन किया है, अपने जीवन मे उस पर आचरण करने का प्रयत्न कर रही हैं एव उस वीतराग वाणी का जो हमे उत्थानकारी स्वरूप समझ मे आता है उसका उपदेश भी करती है...... .... 'ससार मे रहते हुए जैसी घटना आपके साथ घटित हुई है, वैसी अनेकानेक घटनाएँ रात-दिन गुजरती रहती हैं । आपकी अपनी घटना से आपके मन मे जिस प्रायश्चित का उदय हुआ है उसकी सफलता इसमे है कि आप मोह-वन्ध करने वाले सासारिक वातावरण से अपने को दूर कर लें तभी आपका ध्यान वीतराग वाणी मे लग सकेगा । इस दुनिया मे जिसको जितने समय तक जिनके साथ रहना होता है उतने समय तक ही वह साथ रह पाता है । इस दुनिया को आप एक बडी धर्मशाला मान लें । धर्मशाला मे कुछ दिन ठहर कर जव कोई उसे छोडता है तो क्या वह किसी के लिये रोता है ? जैसे उस अवस्था मे मोह क्षीण रूप मे रहता है उसी प्रकार इस ससार मे भी माता-पिता, भाई-वहन, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री आदि परिवारजन के प्रति मोह को घटाते रहने से ही निजात्मा का कल्याण किया जा सकता है... .... आप भी ससार के मोह को छोडकर ससार से वैराग्य लो, वीतराग वाणी मे अपने मन को रमाओ एव अपनी आत्मा के स्वरूप को उज्ज्वल वनाओ ।"

महासतियाँजी ने अपने इस उपदेश रूप कथन को पूरा करके जव मा-वेटी की ओर देखा तो देखा कि उन दोनो के नेत्रो से अविरल अश्रु धारा वह रही है । उन्हे अनुभूति हुई कि दोनो के चित्त प्रायश्चित की अग्नि मे तप कर निखर उठे हैं । उन्होने उन दोनो की आँखो मे झाक कर इस तरह देखा कि वे अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करें ।

श्रीकात की मा ने हाथ जोडकर निवेदन किया—"धन्य हो आपका साधु जीवन, आपने अपनी अमृत वाणी से हमारी आत्माओ को जगा दिया है । हमें अपने आत्म-कल्याण का मार्ग सूझ गया है । हम भी वीतराग देव के धर्म पथ पर चलने के लिये तैयार हो गयी हैं । आप हमे अपने श्रीचरणो मे स्थान देने की कृपा करेंगी ?"

तभी पद्मा ने भी अतीव विनम्र वाणी से निवेदन किया—"गुरुनीजी महाराज, मेरी मा तो वहुत सरल आत्मा है । मैं ही दुर्गुणी आत्मा हूँ जिसने यह सारा दुःख भरा

वनाव वनाया । मुझे उसका अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ है लेकिन मैं अव तक पापकारी घ्यान मे पडी हुई थी । अव आपका यह उपदेश सुनकर मेरे मन मे अपने आत्मस्वरूप को उज्ज्वल वनाने की ललक लग गयी है इसलिए मुझ पापिनी को भी अपने श्रीचरणो मे स्थान देकर पतितपावन वनावें ।"

महासतियाँजी ने फिर उन दोनो को साधु धर्म का विस्तार से स्वरूप समझाया और यह चेतावनी दी कि यह धर्म तलवार की धार पर चलने जैसा कठिन है अत दीक्षा ग्रहण करने के पहले गम्भीरतापूर्वक विचार कर लेना चाहिये । उन्होंने यह भी वताया कि अभी वे कुछ दिनो तक नगर मे ठहरने की विचारणा मे हैं अत यदि वे विचारपूर्वक दीक्षा लेने का निश्चय करेंगी तो उनकी साधना मे उनका योग भी प्राप्त हो जायेगा ।

शोकमग्न होकर जो मा-वेटी महासतियाँजी के समक्ष उपस्थित हुई थी, वे अव प्रसन्नमुख हो गयी थी । उनकी मुखाकृतियाँ एक नये ओज से जगमगा उठी थी । वे एक शुभ निश्चय के साथ उस समय अपने घर को लौट गयी ।

× × ×

श्रीपुर नगर का वह वडा ही खुशी का दिन था । सारे नगर मे हलचल मची हुई थी । वाल, युवा, वृद्ध नर-नारी धर्म स्थानक की तरफ उमडे हुए चले जा रहे थे । कारण, दो भव्य आत्माएँ सासारिक मोह को त्याग कर एव वैराग्य भावो मे ओत-प्रोत होकर नगर मे विराजित महासतियाँजी के पास दीक्षित होने जा रही थी । ये दोनो भव्य आत्माएँ और कोई नही वल्कि श्रीकात की मा और वहिन ही थी । महासतियाँजी के उपदेश का उनके मन पर गहरा असर पडा था और उसके अनुसार वीतराग वाणी का आश्रय लेकर अपने जीवन को समग्र रूप से वदल डालने का उन्होंने दृढ निश्चय कर लिया था । नगर के जो लोग उन दोनो की अव तक यत्किंचित् आलोचना करते रहे थे, वे भी आज उनके त्याग की भूरि-भूरि सराहना कर रहे थे ।

श्रीकात की मा और वहिन को परम आदरपूर्वक नगर जन धर्म स्थानक पर ले गये और महासतियाँजी को उनकी तीव्र भावना के अनुसार उनको दीक्षित करने का अनुरोध किया । सवकी आज्ञा लेकर महासतियाँजी ने उन दोनो को दीक्षा देकर उन्हे अपनी शिष्याएँ वना ली । तव कुछ दिन वहाँ रुक कर सारा सतीमण्डल वहाँ से विहार करके ग्रामनुग्राम विचरण करने लगा ।

१६

युद्ध के मोर्चे पर

मजुला के लिए यह अचिन्त्य था कि उसको सात दिन वाद ही युद्ध के मोर्चे पर खडी हो जाना पड़ेगा। जब महाराजा जयशेखर ने मजुला को अपना अनुष्ठान समाप्त कर सात दिन वाद ही उसकी पटरानी वन जाने की चेतावनी दे दी तो उसे अपने उस वैचारिक युद्ध की तैयारी के लिए यही सात दिन की अवधि रह गयी थी।

जयशेखर भी मानवतन के अन्दर रहने वाला चेतना का एक स्वरूप था किन्तु काम मोह से ग्रसित वन कर उसने अपनी चेतना को ज्ञान शून्य बना ली थी। दूसरी ओर मजुला भी अपने नारी तन को सुशोभित करने वाली एक महिला थी लेकिन अन्तर यही था कि उसने अपने गुणशील धर्म से अपने आत्मस्वरूप को उज्ज्वल वनाया था और उसको उज्ज्वलतर वनाने हेतु प्रयत्नरत थी। इन दोनो के वीच मे आन्तरिक वृत्तियो का मानो एक युद्ध चल रहा था। जयशेखर चाह रहा था कि मजुला उसकी मानसिक वृत्तियो के अनुरूप कार्य करे जवकि मजुला अपनी शीलरक्षा पर डटी हुई थी।

मजुला लम्बे अनुष्ठान के वहाने यह सोच रही थी कि जयशेखर से छुटकारा पाने का कोई न कोई रास्ता निकल आयेगा। किन्तु सात ही दिन की अवधि की चेतावनी से वह अधिक सजग हो गई थी। ज्योंही जयशेखर चेतावनी देकर मजुला के कक्ष से वाहर चला गया, मजुला ने अपनी सकल्प शक्ति सुदृढ वनायी और महामत्र का जाप करते हुए ध्यानस्थ हो गयी। वह ध्यान मे इतनी तन्मय हो गयी और अपने आत्मस्वरूप से इतनी जुड गयी कि वाहर के वातावरण को वह जैसे भूल ही गयी। उसने उसके वाद न अन्न लिया और न जल ही पिया। अडोल योगिनी की तरह वह अपनी ध्यान मुद्रा मे निश्चल वैठी रही।

उसकी सेवा मे नियुक्त की गई दासियाँ हतप्रभ थी कि इस तेजस्वी महिला ने आसन्न सकट के सामने क्या भीषण निर्णय लिया है। इतने दिनो से वे मजुला के क्रिया-कलाप देख रही थी और जयशेखर की कामवासना का कुटिल दृश्य भी। इस कारण उनके मन के भीतर भी मजुला के लिये श्रद्धा और सहानुभूति पैदा हो गयी थी। मजुला के उस ध्यानमग्न एव तेजोमय स्वरूप को देखकर न तो उनका मन अपने राजा को कुछ भी सूचना देने को हो रहा था और न ही वे मजुला को कुछ भी निवेदन करने का साहस

जुटा पा रही थी। और इस तरह पाच दिन निकल गये। मजुला अपने ध्यान से हिली-डुली भी नही और दासियाँ उस मूर्ति को एकटक निहारती ही रही।

× × ×

छठे दिन का सूर्य उग चुका था और राजा जयशेखर नित्यकर्म से निवृत्त होकर अपने कक्ष मे अकेला बैठा कल्पना के ताने वाने बुन रहा था। अब तो केवल दो ही दिन वाकी रह गये हैं जिसके वाद मेरा मनोरथ पूरा हो जायगा। मैं ही अब तक मजुला का मन जीतने के लिये उसके साथ रियायत वरतता रहा हूँ, वरना एक छोकरी की क्या मजाल जो मेरे कहे को एक पल के लिये भी टाल सके। अब दो दिन तो मजुला के हैं, फिर आयेगा मेरा दिन, फिर उसकी कुछ नही चलेगी और सिर्फ मेरी मनमानी चलेगी। मैंने उसके लिए अब तक वहुत प्रतीक्षा कर ली है अब मैं उसकी सुन्दरता का रसपान किये विना रह नही सकू गा।

और राजा जयशेखर मन की सुनहली तरगो मे वह चला कि मजुला कितनी सुन्दर है, कितनी सुकोमल है और कितनी सुखदायिनी होगी वह मेरे लिए ?

तभी उसका दिवास्वप्न टूटा। एक अनुचर ने अन्दर आकर हाथ जोडे और थरथर कापता हुआ राजा के सामने खड़ा रहा। राजा को उस समय उसका आना वडा वुरा लगा। उसने उसकी मानसिक तरगो मे एक ऐसा झटका लगाया कि वह सहम कर रह गया। कडक कर उसने पूछा—"क्यो आये हो तुम इस समय ? क्या जरूरी काम आ गया है ?"

"महाराज, क्षमा करें। मुझे सेनापति जी ने भेजा है कि मैं तुरन्त आपसे सम्पर्क करू ताकि सेनापतिजी आपकी आज्ञा से यहाँ आकर आपसे सारी वात कह सके और आपके निर्देश प्राप्त करके तत्काल उचित कार्यवाही कर सकें"—उस अनुचर ने डरते-डरते भी सारी वात कह डाली।

राजा की त्यौरियाँ चढ गईं कि उसने खास वात तो वतायी ही नही। क्रुद्ध स्वर में उन्होंने फिर पूछा—"सेनापतिजी मुझसे इसी समय किस कारण से मिलना चाहते है, आखिर वात क्या हो गयी ? कहाँ है सेनापति इस समय, उन्हें तुरन्त मेरे पास भेजो।"

"राजन, वे वाहर ही आपके निर्देश की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं उन्हे अभी ही भीतर भेज देता हूँ।"

ज्यो ही अनुचर वाहर गया कि थोडी देर वाद ही सेनापति भीतर आ गया।

"महाराज की जय हो। राज्य पर भीषण सकट आ गया है। अभी-अभी गुप्तचरो ने सूचना दी है कि भीलपति राजा ने अपनी सीमाओ पर हमला कर दिया है और यदि तुरन्त ही हमने सामना नही किया तो उसकी सेनाएँ तेजी से वढती हुई राजधानी तक पहुच जायेगी। इसलिए आपके निर्देश की आवश्यकता है।" सेनापति ने इतना कहने के

साथ ही हमले का पूरा विवरण सुना दिया तथा अपनी सेनाओ की तैयारी का भी उल्लेख कर दिया ।

अब जयशेखर अपनी कल्पना भी भूल गया और अपना क्रोध भी । उसके चेहरे पर चिन्ता भी दिखायी दी तो रोष भी उभर कर आ गया । उसे याद आया कि पिछली बार भी जब भीलपति ने उसके राज्य पर आक्रमण किया था तो वह बहुत ही भयानक सिद्ध हुआ था । उसकी भील सेना इतनी बहादुर साबित हुई थी कि जिसने उसकी सेना के हौसले ही तोड दिये थे । तब अचानक उसके एक मित्र राज्य की सेना का सहयोग मिल गया था जिसके कारण भील सेना को राजधानी के भीतर घुसने नही दी और उसे वापिस खदेड दी । शायद उसी का बदला लेने को अब भीलपति ने वापिस हमला किया है और अब इसका सामना करना बडा ही कठिन दिखाई देता है । राजा ज्यो-ज्यो सोचता रहा, उसकी चिन्ता भी गहरी होती गई । तब उसने गम्भीरतापूर्वक सेनापति के साथ विचार-विमर्श करना शुरू किया—"सेनापतिजी, यह तो बडी ही जटिल समस्या खडी हो गई है । हमे अब भीलपति का सामना करने मे लोहे के चने चबाने पडेंगे । क्या गुप्तचरो ने भील-पति की सैन्य शक्ति के बारे मे भी कोई सूचना दी है ?"

"हाँ महाराज, इस समय भीलपति के सशस्त्र सिपाहियो की सख्या अपनी कुल सख्या से कुछ ही कम है । पहले के अनुभवो को देखते हुए हम उनको हरा सकें—यह बडा मुश्किल दीखता है । किन्तु अगर हम शुरू-शुरू मे ही दब जाय तो उसका परिणाम राज्य के विनाश के रूप मे भी भयकर हो सकता है । इसलिए उचित यही लगता है कि हम पूरी ताकत और पूरे वेग से भीलपति के हमले को रोकने के लिये तुरन्त यहाँ से चल दें ।"

"आपका सोचना ठीक है किन्तु इस बार केवल लडने से ही काम नही चलेगा । इस बार कुछ कूटनीति से भी काम निकालना होगा । अगर हम भीलपति की बढती हुई सेनाओ को रोक पाने मे असमर्थ रहे तो हमे तत्काल उसके साथ समझौते के प्रयत्न करने होंगे । आप तुरन्त राज्य परिषद् की बैठक बुलाइये ताकि सारी समस्या पर पूरी तरह विचार करके सेनाओ को यथायोग्य आदेश दें ।"

तत्काल राज्य परिषद् की बैठक मे विचार-विमर्श करके रणनीति तैयार की गई और जयशेखर स्वय ने सेना की कमान सम्भाली ।

मजुला अपने एक तरह के युद्ध के मोर्चे पर तैयार खडी थी तो बेचारे जयशेखर को दूसरे ही युद्ध के मोर्चे पर प्रस्थान कर देना पडा ।

युद्ध भी दो तरह के होते है—नैतिक और अनैतिक । यदि कोई राजा आक्रान्ता को हटाने के लिये नैतिकता के साथ चाहता है कि मैं स्वय किसी पर आक्रमण नही करूंगा किन्तु आक्रान्ता को हटाने मे भी पीछे नही रहूँगा तो वैसा राजा अवश्य ही जीत हासिल कर सकता है । कारण, वह युद्ध-नीति मे भी नैतिकता के साथ चलता है । किन्तु जिस प्रकार जयशेखर अपनी कामवासना की पूर्ति मे नैतिकता के प्रति सावधान नहीं था उसी प्रकार युद्ध संचालन मे भी उसे नैतिकता का भान नहीं रहा । वह तो सोच रहा था कि

नैतिकता हो या अनैतिकता, एक चाल हो या दूसरी चाल किसी भी तरह से युद्ध मे जीत हासिल कर लेनी चाहिये।

जब जयशेखर ने युद्ध मे नैतिकता का विचार छोडा तो भीलपति ने भी लोहे से काटने की नीति अपना ली। भीलपति की सेनाओ ने अपनी बहादुरी से जयशेखर की सेनाओ के छक्के छुडाने शुरू कर दिये। जयशेखर को जब महसूस होने लगा कि अब उसको हार का मुँह देखना पड सकता है तो वह पूरी तरह से अनैतिक बन गया। उसने सिपाहियो को आज्ञा दी कि भीलपति की सेनाओ को आगे से गोला बना कर चारो ओर घेर लो और सीमावर्ती जगलो मे आग लगा दो। यह जयशेखर की क्रूरता का कदम था किन्तु प्रकृति भी अनैतिकता को पहले नष्ट करती है। इधर जगलो मे आग भडकने लगी तो उधर से मूसलाधार बरसात शुरू हो गयी। जब जयशेखर की यह चाल भी बेकार हो गई तब उसके मन मे घबराहट फैली कि अब इस विषय स्थिति से कैसे निपटा जाय?

कहाँ तो जयशेखर अपनी चेतावनी के सात दिन समाप्त होते ही मजुला के साथ अपने मनोरथो को पूरे करना चाहता था और कहाँ भीलपति के साथ युद्ध करते-करते कई सात दिन निकल गये। किसी भी तरह जब भीलपति की सेनाओ को आगे बढने से रोकना कठिन हो गया तो जयशेखर ने सेनापति से विचार-विमर्श करके कूटनीति पर चलने का निर्णय लिया। उसने सोचा कि इस समय खुली पराजय स्वीकार करने की अपेक्षा आगे बढकर भीलपति के सामने सन्धि का प्रस्ताव रखना उपयुक्त रहेगा ताकि भविष्य मे कभी भी सधि तोडकर भीलपति के साथ इस युद्ध का बदला लिया जा सके।

यह मजुला की धर्म साधना का भी सुफल समझा जा सकता है कि अपनी शक्ति के मद मे अन्धे बने हुए राजा को प्रकृति ने भीलपति के हाथो गर्व भग करने का अवसर दिया हो। जयशेखर के लिए आत्मसमर्पण करके सधि का प्रस्ताव पेश करना अवश्य ही अपमान भरा था किन्तु उस समय अपने हाथ से राज्य के निकल जाने को बचाने का कोई दूसरा उपाय भी नही था। अन्त मे अपना दूत भेज कर जयशेखर ने भीलपति से मुलाकात की और सधि का प्रस्ताव रखा। भीलपति एक ही शर्त पर सधि करने को तैयार हुआ कि अब तक युद्ध मे उसकी सेनाओ ने जयशेखर के राज्य की जितनी भूमि जीत कर अपने कब्जे मे कर ली है उसे वह वापिस नही लौटायेगा। अपनी घोर विवशता मे जयशेखर को अपमान का यह अत्यन्त कडवा घूट भी पीना पडा। फिर सधि सम्पन्न करके जयशेखर अपनी सेनाओ के साथ अपनी राजधानी चन्द्रनगर को लौटा तो भीलपति भी अपनी जीती हुई भूमि पर अपना शासन प्रबन्ध-कायम करके अपनी राजधानी की ओर प्रस्थान कर गया।

× × ×

अपमान और तिरस्कार की ऐसी तीखी मार झेलकर भी जयशेखर के मन मे नैतिकता का अनुभव नही जागा। यह हृदय की वृत्तियो पर निर्भर करता है कि कोई अपने किसी अनुभव से कितनी सीख ले सकता है। यद्यपि राजा के मन मे ग्लानि और घृणा के भाव फैल रहे थे और मन ही मन वह भीषण लज्जा का भी अनुभव कर रहा था किन्तु

राजधानी पहुचते ही उसे मजुला का ध्यान आये वगैर नही रहा । यह सही था कि वह अपने तन और मन से थका हुआ था फिर भी सवसे पहले मजुला के पास ही जाने का विचार किया ।

जव एक प्रकार से पराजय का काला टीका लगा कर जयशेखर अपनी सेनाओ के साथ राजधानी पहुचा तो वहाँ जनता के मन मे राजा के प्रति अवज्ञा एव अवहेलना का विचार पैदा हो गया । एक तो मजुला की चर्चा घर-घर मे पहले ही फैल रही थी और एक सद्‌गुणी नारी के साथ राजा के दुर्व्यवहार से लोगो के मन मे विक्षोभ था जिसने इस हार के वाद मुखर रूप ले लिया । शहर मे जगह-जगह राजा के विरुद्ध चर्चाएँ होने लगी ।

उधर सात रोज की कडी ध्यानमय तपस्या के बाद भी मजुला अपनी साधना मे जुटी रही थी । इस समय मे उसकी काया अत्यन्त कृश हो गयी थी किन्तु उसके मुखमण्डल पर जो आभा प्रकट हुई थी उससे कोई भी तत्क्षण प्रभावित हो जाता था । इस अरसे मे उसकी सेवा मे रहने वाली दासियाँ भी भक्ति भाव से उसकी शिष्याओ जैसी वन गई थी ।

जव जयशेखर ने मजुला के कक्ष मे प्रवेश किया तो उस योगिनी की मूर्ति को देखकर वह चौंक सा गया । ग्लानि और घृणा से भरे उसके मन मे भय का भयावना भाव पैदा हुआ । भीतर ही भीतर वह काँप उठा और उसके पाव वही चिपक गये जैसे कि सती के अमित तेज से उसका रोम-रोम सज्ञा शून्य हो गया हो । उस समय तो उसके अन्त करण से भी जैसे आवाज उठी—ऐ जयशेखर, तू इस पापकर्म से पीछे हट जा । मजुला को माँ मानकर इसकी पूजा कर । किन्तु लम्वे समय से पाले पोपे गये विकारो ने जयशेखर के मन पर फिर से अपना कब्जा कर लिया । वह वही से मजुला को सम्वोधित करते हुए वोला, किन्तु उसकी आवाज धीमी और ढीली थी—

"ओ सुन्दरी, मेरी दी हुई अवधि तो कभी की पूरी हो चुकी और तुम्हारा अनुष्ठान भी पूरा हो चुका होगा । अव तो मुझे तुम और प्रतीक्षा नही करवाओगी न ?"

"राजन्, आपने इतना धैर्य रखा है तो अपने ऊपर कुछ नियन्त्रण और रखिये । यह विकार जो आपके भीतर से उठ रहा है आपके दु ख का कारण वना हुआ है । यही वजह है कि आप अशान्त हो रहे हैं । पहले अपने चित्त को शात वना लीजिये—मैं कही वाहर जाने की स्थिति मे तो हूँ नही ।"

जयशेखर को जैसे जोश सा आया और वह अपने कदम आगे वढाने की चेप्टा करने लगा कि वह अपनी मनमानी करके ही रुकेगा । तभी मजुला ने हाथ सामने करके तेजोमय स्वर मे कहा –"ठहरो" और जयशेखर के कदम आगे नही वढ सके । तव मजुला ने ललकार कर कहना शुरू किया—"राजन्, आप पुरुप हो या पशु ? पशु भी ऐसा व्यवहार नही करता जैसा व्यवहार करने पर आप उतारू हो गये । आपको सोचना चाहिये और अपनी गरिमा के अनुसार चलना चाहिये ।"

मजुला की आवाज मे साधना की शक्ति थी, आत्मा का वल था और शील रक्षा का तेज था । उस आवाज को सुनकर राजा का मन वैठ गया । यह डर भी जाग गया कि कही सती का तेज उसे भस्म न कर दे, और वह उल्टे पैरो लौट गया । ☐

सरोवर पर नहाती हुई एक सुन्दर महिला को सूँड मे पकड कर सरोवर मे फेंक चुका था। उस महिला की सुन्दरता पर रीझ कर महाराज हाथी को तो भूल गये, मगर खुद के मन को ही पागल हाथी वना बैठे और उस मूर्छित महिला को उठवा कर राजभवन मे ले आये, तब से उसे अपनी वासनापूर्ति के लिये मजबूर कर रहे हैं।"

"यह तो वहुत बुरी वात है भाई। अगर राजा ही दुष्चरित्र बनने लगेगा तो प्रजा का क्या हाल होगा ?"

"पर वह महिला पतिव्रता सती है। जो उसका वश नही चला तो मर जायगी मगर इस दुष्ट राजा के हाथ कभी नही लगेगी। वह तो वैसे भी तपस्या करके शरीर को काटा वना चुकी है, मगर एक दासी कह रही थी कि अभी ही उसके तेज का राजा को कड़ा झटका लगा है और उस कारण ही वह बुरी तरह से अशान्त हो रहा है।"

"ऐसे दुष्ट राजा की नजर कैद से उस महिला का छुटकारा होना भी वडा कठिन दिखाई देता है।"

"ऐसा मत कहो, जिनका आत्म-वल मजवूत हो जाता है, उनके सामने समय आने पर दुष्ट से दुष्ट राजा या उसकी वली सेना का भी कोई असर नही पडता है।"

उसने धीरे से पूछा—"क्या तुमने उस सती के कभी दर्शन किये हैं ?"

"हाँ हाँ, कई बार। यह सामने जो गोखडा दिखाई देता है, कई वार वह इसी से उद्यान की तरफ सूनी आँखो से न जाने क्या देखती रहती है या कि किसी की प्रतीक्षा करती रहती है।"

"तव तो मुझे भी उस पवित्र आत्मा के दर्शन करादो ताकि मेरा जन्म सफल हो जाय।"

"अरे अभी लो। थोडी देर मे सती इसी सामने वाले गोखडे मे दिखाई दे सकती है। जरा उधर दृष्टि डालते रहना। तुम्हारा भाग्य होगा तो अवश्य दर्शन हो जायेंगे।"

अब तो उस माली की दृष्टि की वात तो छोडिये लेकिन वृक्ष के नीचे बैठे हुए श्रीकान्त की दृष्टि उस गोखडे पर एकटक जम गई। उसकी उत्कठा कठ तक पहुँच गई कि अव उसका भाग्य क्या दृश्य दिखाता है ?

× × × ×

सकट का एक मोर्चा टल जाने के वाद भी मजुला की आशका कुछ अधिक वढ गई थी कि उसके द्वारा उस दिन तिरस्कृत होने के वाद राजा न जाने आगे क्या करने की सोच रहा हो ? वह किस समय आकर क्या करने को उतारु हो जाय—उसका अनुमान लगाना कठिन था, क्योकि जिस का मन वश मे न हो, उसे कर्त्तव्याकर्त्तव्य का भान ही कहाँ रहता है ?

वैठे-वैठे उसे यह भी विचार आया कि उसके पारिवारिक जीवन का क्या हाल हो रहा है ? कहाँ उसके पतिदेव होंगे, वे क्या सोच रहे होंगे और उसके लिए क्या कर रहे

होंगे ? श्रीपुर पहुँच कर जब सारी बात उनके सामने आई होगी तो फिर क्या वे वहाँ रुके थोड़े ही होंगे ? उसे अवश्य ही वे जगह-जगह खोज रहे होंगे—क्या ऐसा सयोग नही मिल सकता कि वे इधर ही आ जावें और दोनो का सुखद मिलन हो जाय। फिर तो उसके छुटकारे का भी वे कोई कारगर उपाय कर सकेंगे।

और उसका नवजात शिशु—क्या हुआ होगा उसका ? उस घने वन मे क्या वह रक्षित रह सका होगा ? लेकिन ऐसा सौभाग्यशाली बालक, निश्चित रूप से आयुष्यवान् भी होगा, पर कहाँ वह पल रहा होगा और कैसे रह रहा होगा ?

तरह-तरह के विचार उसके हृदय मे उठ रहे थे—उसकी सासूजी और ननद और उसके पति यदि उसे घर से खोजने निकल गये होगे तो अकेले क्या करते होगे ? किसी का कोई समाचार नही। सारा परिवार जैसे टुकडे-टुकडे अलग-थलग हो गया था। सभी जैसे क्षण भर के लिये मिले और ऐसे विलग हुए कि मिलने का कोई अता-पता ही नही है।

शकाओ-आशकाओ से मजुला का मन घिरा हुआ था फिर भी हृदय के तले से जैसे एक अज्ञात खुशी महसूस हो रही हो—ऐसा उसे लगा, लेकिन यह समझना कठिन था कि वह खुशी किस बात की हो सकती है ? विचारो की ऐसी उधेडबुन मे वह हमेशा की तरह अपने कक्ष से बाहर निकली और कुछ खुलेपन मे हल्की हो जाने की इच्छा से गोखडे मे आकर खडी हो गई। उसकी दृष्टि उद्यान की तरफ न होकर ऊपर खुले आसमान की तरफ थी, बल्कि सच पूछें तो वह किसी भी तरफ नही थी—अपने ही भीतर मे डूबी हुई और बाहर अनन्त मे खोई हुई थी। अत. नीचे से देखने वाला यह अनुमान नही लगा सकता था कि वह किस ओर किसको देख रही है ?

नीचे उद्यान मे दो जोडी आँखें गोखडे मे इस आशा से बार-बार देखती जा रही थी कि सती के दर्शन हो जाय, किन्तु ऊपर की आंखो से भी अधिक व्यथित नीचे से गोखडे को एकटक निहार रही दो दूसरी आँखें एकदम उस ओर केन्द्रित हो गईं।

"बन्धु, देखो सती पधार गई हैं, जी भर कर दर्शन करलो।"

"अवश्य-अवश्य, ऐसा पुण्यलाभ शुभ भाग्योदय से ही होता है"—और दोनो मालियो ने वही से हाथ जोड कर सिर झुका लिया, बिना यह देखे कि सती का ध्यान उनकी तरफ गया है या नही।

परन्तु श्रीकान्त अपलक देखता रहा—क्या यह 'सती' मजुला ही है ? उसका मजुला से विवाह हुए लम्बा अर्सा बीत गया था, किन्तु उसके साथ उसका घनिष्ठ परिचय आखिर कितना था ? उस रात की मजुला और अभी देख रही मजुला मे भी कितना अन्तर आ गया था ? वह अपनी गहरी नजर से देखता रहा—आँखो को जैसे अद्भुत आनन्द मिल रहा था तो दिल मे खुशी की लहर उठ रही थी। उसके मस्तिष्क ने कम भी कहा हो लेकिन उसके मन ने जैसे उसे साफ-साफ कहा कि यह मजुला ही है।

और अचानक मजुला की दृष्टि भी वृक्ष से उतर कर श्रीकान्त के मुख पर गिरी तो श्रीकान्त ने भी अनुभव किया कि उसकी अपेक्षा मजुला ने उसे जल्दी पहिचान लिया है।

कुछ पल तो वह सुध-बुध सी खो बैठी । क्या उसका सौभाग्य इस तरह जाग गया है कि उसने ध्यानपूर्वक पतिदेव का स्मरण किया और पतिदेव के साक्षात् दर्शन हो गये । उसके नेत्रो से टप्टप् आँसू झरने लगे ।

कब के बिछुडे और अतुल व्यथा का भार ढो रहे पति-पत्नी का दृष्टि-मिलन हो गया था ।

× × × ×

दृष्टि मिली तो प्राण सजग हुए और शक्तिशाली की कैद से छूटने की आशा का दीप जल उठा । मजुला ने श्रीकान्त को कुछ ठहरने का सकेत दिया और भीतर की तरफ भागती सी गई ।

समस्या थी कि आतुर पति के पास अपनी व्यथा का सन्देश कैसे पहुँचाऊँ ? और कोई साधन तत्काल उसे दीखा नही और वह इस रहस्य को किसी को भी प्रकट करने की इच्छुक नही थी । उसने एक सफेद वस्त्र निकाला और उसे अपने सामने फैला दिया । सुई चुभोकर एक पात्र मे अपना कुछ खून इकट्ठा किया और उसमे अपने तीखे से नख को डूबो डूबो कर उस वस्त्र पर लिखने लगी अपने मन का निचुड़ा हुआ सार सक्षेप । उस सन्देश मे वह कुछ ही शब्दो मे भूत, वर्तमान तथा भविष्य के तीनो काल का समावेश कर लेना चाहती थी । उसने आकस्मिक हर्ष और पीडा से थर-थर कापते हुए हाथो से लिखा—

"दासी का प्रणाम । कथा लम्बी चौडी है, मिलने पर निवेदन करूँगी । अभी तो राजा की कैद से मुझे छुडाना है । वडी कठिन समस्या है, लेकिन आप पधार गये हैं तो सब कुछ सम्भव हो जायगा । आप पूरी सावधानी से उपाय सोचें और मुझे निर्देशित करें । मुझे आपके दर्शनो से अपार हर्ष हो रहा है । आपकी—मजुला"

जल्दी-जल्दी उसने वह वस्त्र समेटा और उसके साथ एक छोटा सा ककर बाधा ताकि वस्त्र को यथास्थान फेंका जा सके । वह फिर से गोखडे में चली आई । उसकी अश्रुधारा तब भी बराबर वह रही थी ।

चारो ओर उसने ध्यान से निगाह घुमाई कि कही कोई देख न रहा हो और साव-धानी से वस्त्र को श्रीकान्त की तरफ फेंक दिया—श्रीकान्त के मुख मडल को परम भक्ति और प्रेम से निहारते हुए । उसके सजल नेत्र जैसे श्रीकान्त के उत्सुक नेत्रो मे प्रविष्ठ होकर एकरूप हो गये थे ।

श्रीकान्त ने तुरन्त उस वस्त्र को याने कि अपनी हृदयेश्वरी के खून से लिखे सन्देश को उठा लिया और एक ही सास मे पूरा पढ लिया । मजुला की वर्तमान स्थिति का विस्तार से ज्ञान उसे वार्तालापो से हो ही चुका था, अत उसने सकेत ही सकेत मे मजुला को समझा दिया कि अब वह निश्चित हो जाय और सावधान रहे—शीघ्र ही वह उसकी मुक्ति का सफल उपाय कर लेगा ।

• • •

१८

चन्द्रनगर में 'योगीराज' पधारे

जिन दिनो महाराजा जयशेखर की पराजय एव चारित्रिक पतन की चर्चाएँ चन्द्रनगर की जनता मे चल रही थी, उन्ही दिनो जनता को एक शुभ समाचार भी मिला कि नगर के बाहर एक उद्यान मे बहुत ही पहुचे हुए योगीराज पधारे हैं। लोगो ने सुना कि उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व सामने आने वाले को सहज ही मे अभिभूत कर लेता है। उनकी साधना भी इतनी ऊँची श्रेणी की है कि उसमे उनको कई प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त है। वे अपने आत्मबल मे किसी के भी मन मे रही हुई इच्छा को ताड लेते है और उसके किसी भी प्रकार के मनोरथ को पूर्ण कर देने की क्षमता रखते है।

योगीराज की इन चर्चाओ से पुरानी चर्चाएँ दब सी गई और सारे नगर का ध्यान योगीराज की तरफ मुडने लगा। लोगो ने यह भी सोचा कि यदि योगीराज के पुण्य प्रताप से राजा जयशेखर को सद्बुद्धि आ जाय और वह पतिव्रता सती को मुक्त कर दें तो राज्य का सौभाग्य भी फिर से जाग उठे। भविष्य मे हो सकता है कि फिर कभी इस राज्य को पराजय का मुँह भी नही देखना पडे। इस दृष्टि से समग्र जनता ने योगीराज के आगमन से राहत की साम ली। तब प्रतिदिन का यह कार्यक्रम हो गया कि झुण्ड के झुण्ड नर-नारी बडे सवेरे से योगीराज के दर्शनो के लिए जाते रहते।

लोगो को योगीराज के दर्शन-मात्र कर लेने से ही सतोष रखना पडता था, क्योंकि योगीराज निरन्तर अपनी योग साधना मे तल्लीन रहते थे। लोगो को यह भी पता नही चलता था कि योगीराज कब उठते बैठते और खाते सोते हैं अथवा अन्य क्रियाओ मे निवृत्त होते हैं। वे यही समझने लगे कि योगीराज बराबर ध्यानस्थ रह कर किसी और ऊँची साधना मे जुटे हुए है और इस समझ से उनके प्रति लोगो की श्रद्धा अपार रूप मे बढ गई।

योगीराज की इस प्रकार की प्रशसा जब राजा जयशेखर के कानो तक पहुची तो उसने भी अपने विकारी मन मे सोचा कि ऐसे महान् योगीराज उसके मनोरथ को भी पूरा कर सकते हैं। वह अनुभव कर रहा था कि मजुला के बढते हुए आन्तरिक तेज के सामने उसका ठहर पाना कठिन हो गया है, इस कारण किसी अन्य प्रभाव की सहायता से ही उसके मन को अपनी ओर मोडा जा सकता है। उनका भाग्य काम कर जाय तो योगीराज

के प्रभाव से उसका मामला बैठ सकता है। योगीराज बहुत पहुचे हुए हैं तो वे कई तरह के तन्त्र मन्त्र भी जानते होगे और उनके प्रयोग से वे मजुला के दृष्टिकोण को बदल सकते हैं।

जिसकी जिस तरह की भावना होती है उसी रूप मे वह सामने वाले को देखता है। एक ठाकुरजी के मन्दिर मे सज्जनो और भक्तो के अलावा अगर दुर्जन चोर डाकू आदि भी पहुचते हैं तो वे ठाकुरजी से अपने मन की बात ही पूरी करने की कामना करते है। वे यह नही सोचते कि ठाकुरजी से अपने पतित जीवन को पावन बनाने की कामना करें। इसी प्रकार योगीराज के दर्शन करने की इच्छा करने के साथ राजा जयशेखर ने भी यह कामना नही की कि वह योगीराज के सान्निध्य मे जाकर जीवन के अपने विकारो को नष्ट करने और उसे सुकृत्य मे लगाने की चेष्टा करे।

जयशेखर ने निश्चय किया कि वह योगीराज के समीप जाकर उन्हें अपने मन की बात कहेगा तथा आग्रह करेगा कि वे उसे पूरी कराने मे पूरी सहायता करें। किन्तु वह लोगो के उनके पास रहते अपनी वैसी मनोकामना को प्रकट नही कर सकता था। इसलिए उसने अपने जासूसो को बुलाया और निर्देश दिया कि वे जाँच करके योगीराज के अपने स्थान पर एकाकी होने की सूचना तुरन्त उसे पहुचावें।

× × ×

"योगीराज, मैं इस चन्द्रनगर का राजा आपको प्रणाम करता हूँ........" योगीराज तो अपनी योग-साधना मे ही तल्लीन रहे जबकि राजा को उनकी प्रतीक्षा मे खडे रहना पडा। वास्तव मे जब आप मन की किसी कामना के वश मे हो और उसकी पूर्ति की किसी से याचना करना चाहें तो उस समय मे न भक्ति होती है और न साहसिकता। उस वक्त तो 'गर्ज विचारी बावली' ही सिर पर चढी रहती है।

उस समय उद्यान के उस भाग मे योगीराज एवम् जयशेखर के अलावा अन्य कोई नही था। राजा अपने अनुचरो को बहुत दूर ही छोड आया था और उन्हें यह भी आज्ञा दे आया था कि वे किसी एक को भी उधर न आने दें। योगीराज ध्यान मुद्रा मे बैठे हुए थे और राजा सामने हाथ बाधे खडा था।

इस तरह काफी समय बीत गया किन्तु राजा की हिम्मत योगीराज को पुकार लगाने की नहीं हुई। वह डर रहा था कि यदि किसी भी कारण से योगीराज कुपित हो गये तो उसका सोचा सोचाया हुआ काम मिट्टी हो जायगा। तभी योगीराज ने धीरे-धीरे अपने नेत्र उघाडे और रूखे स्वर मे पूछा—

"तुम कौन हो और यहाँ क्या कर रहे हो? क्या हमारी साधना भग करना चाहते हो?"

राजा थरथर कांपने लगा और अनुनय के स्वर मे बोला—"क्षमा करें योगीराज, मैं तो आपके दर्शन के लिए उपस्थित हुआ हूँ। मैं इस नगर का राजा जयशेखर हूँ। आपकी सेवा भक्ति करके आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। मुझे आज्ञा दीजिये, भगवन्?"

"अच्छा, आप यहाँ के राजा हैं। हम यहाँ उद्यान मे वहुत प्रसन्न हैं। हमे किसी वस्तु की जरूरत नही है।"

"मैंने सुना है योगीराज कि आपकी योग साधना वहुत ही ऊँची श्रेणी की है और आपकी कृपा हो जाय तो कोई भी मनोरथ सिद्ध हो सकता है।"

"क्यों तुम भी कोई मनोरथ लेकर आये हो मेरे पास ?"

"हाँ प्रभु, मेरा आपसे एक निवेदन है।"

"कहने की जरूरत नही है हम जानते हैं। तुम किसी को अपने वश मे करके 'अपनी' वनाना चाहते हो ?"

"सत्य है भगवन्, सत्य है। आप तो परम ज्ञानी हैं, परम सिद्ध हैं। मेरा मनोरथ अवश्य पूरा कर दीजिये योगीराज !" राजा हर्षातिरेक से गद्गद् हो रहा था।

"जाओ हमने कह दिया, तुम्हारा मनोरथ पूरा हो जायगा लेकिन उसके लिए एक काम करना होगा।"

"वताइये योगीराज, मैं तैयार हूँ।"

"सुनो तो, जिसे आप अपनी वनाना चाहते हो उसे मेरे पास लेकर आओ। उसके दिल और दिमाग को आपकी तरफ मोडने के लिए मुझे कुछ तान्त्रिक प्रयोग करने पड़ेंगे। पुरुष नही समझ सकता कि नारी के दिल मे कितनी तरह के कैसे-कैसे तूफान उठा करते हैं। उन तूफानो को थामना और उसके दिल मे नये प्रेम का झरना वहाना आसान काम नही है। तन्त्र के प्रयोग से ही इस काम मे सफलता मिल सकेगी।"

जयशेखर ने वहुत ही नर्म पड कर निवेदन किया—"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है लेकिन मेरा एक निवेदन भी आपको मानना होगा।"

"वह क्या ?"

"योगीराज, मैं जिसको चाहता हूँ उस सुन्दरी को यहाँ लाना उचित नही रहेगा और यहाँ तो हर वक्त लोगवाग आपके दर्शनो के लिए आते रहते हैं इसलिए आप अपना तन्त्र प्रयोग राजभवन मे पधार कर ही करें—यह मेरी प्रार्थना है।"

"योगी लोग राजभवन मे जाना पसन्द नही करते। उनके लिए राजा और प्रजा सव वरावर होते है, तुम्हे अपना काम करवाना है तो उसे लेकर यही आ जाओ।"

"ऐसा नही योगीराज, मुझ पर यह कृपा भी अवश्य कीजिये कि आप वही पधारें, एकान्त मे तन्त्र प्रयोग करें और मेरे सौभाग्य को सवारने का अनुग्रह करें।"

"राजा, हम इस वारे मे अभी कुछ नही कह सकते। हमारा ध्यान करने का समय हो गया है, अव आप जा सकते हैं। अव कल इसके लिए इसी वक्त मिलें।" इतना कह कर योगीराज पुन ध्यानमग्न हो गये और जयशेखर को विवश होकर राजभवन लौट जाना पड़ा।

× × ×

राजभवन पहुच कर जयशेखर चिन्ता मे डूब गया कि इन योगीराज से अपनी बात मनवाना बहुत मुश्किल लगता है। योगी हकीकत मे बहुत पहुचे हुए ही मालूम होते हैं, इसी कारण वे राजा तक की परवाह नही कर रहे हैं। परन्तु मुझे तो किसी भी तरह झुक-झुकाकर भी अपना काम बनाना है। किसी भी तरह योगीराज को राजभवन मे ही लाना होगा क्योकि मेरे कहने से मजुला किसी भी दशा मे योगीराज के पास उद्यान मे चलने को तैयार नही होगी और मजुला से कोई भी काम बलात् करा पाना सम्भव नही दीखता है। उसे रात भर नीद नही आयी और वह इसी समस्या को उधेडता-बुनता रहा कि वह योगीराज को ही राजभवन मे आने के लिए राजी करे।

दूसरे दिन समय होते ही राजा उद्यान की ओर चल पडा। उसे यह देखकर प्रसन्नता हुई और आशा बधी कि तब योगीराज ध्यानस्थ नही थे एवम् खुले नेत्रो से अकेले ही बैठे हुए थे मानो उसी के आने की प्रतीक्षा कर रहे हो।

राजा उन्हे प्रणाम करके हाथ जोडकर सामने खडा रहा।

"हमने आपकी प्रार्थना पर विचार किया है और हमने आपके सम्मान की नजर से राजभवन मे चल कर ही तन्त्र प्रयोग करने को उचित समझा है। इस वास्ते हम चलने को तैयार हैं।"

राजा तो खुशी के मारे जैसे एकदम उछल पडा। उसे इतना ही अनुमान नही था कि योगीराज उसे यो तैयार मिलेंगे। तब उसे पक्का विश्वास हो गया कि उनके हाथो उसका मनोरथ अवश्यमेव पूरा हो जायगा।

राजा ने तब अपने अनुचरो को बुलाया और पूरे राजकीय सम्मान के साथ वह योगीराज को राजभवन की ओर ले चला।

१६
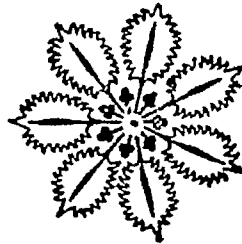
योगीराज ने मनोरथ पूर्ति का बीड़ा उठाया

राजा जयशेखर के साथ जब योगीराज का पदार्पण राजभवन मे हुआ तो वहाँ सब ओर हलचल सी मच गई। रनिवास मे आतंक जैसा वातावरण छा गया तो दासियाँ एक दूसरी के कानो मे फुसफुसाकर अजीब-अजीब बातें करने लगी। मुख्य कक्ष मे योगीराज को बिठाकर उनका सम्मान किया गया। फिर राजा और योगीराज अकेले मे बैठकर मंत्रणा करने लगे।

मंजुला को भी योगीराज के समाचार मिले तो वह चौंकी कि राजा अब उस पर मंत्र या तंत्र बल का प्रयोग करवाना चाहता है। इस आशंका मे उसे भय की अनुभूति हुई, फिर भी उसे एक प्रकार की निश्चिन्तता का भी अनुभव हो रहा था कि अब जो कुछ भी होगा, उस पर उसका श्रीकान्त अवश्य ही अपनी नजर रख रहा होगा। श्रीकान्त के सम्बल से उसके मन मे विशेष बल जो पैदा हो गया था।

"क्या यही वह सुन्दरी है, राजा जिसे आप अपने वश मे करना चाहते हैं?" राजा द्वारा दूर से मंजुला की ओर संकेत करने पर योगीराज ने पूछा। राजा योगीराज को मंजुला के कक्ष की ओर ही ले जा रहा था।

घनी सफेदझक दाढी मूंछो से ढके चेहरे वाले सफेद वस्त्र ही पहने योगीराज को भी जब मंजुला ने दूर से देखा तो वह सहम उठी कि उसे पूरी सतर्कता से व्यवहार करना होगा, कारण कौन जाने राजा के सिखाये-सिखाये यह सन्यासी उसके साथ कैसा सलूक करे?

जयशेखर और योगीराज दोनों साथ-साथ चलते हुए मंजुला के कक्ष मे प्रविष्ठ हुए तो सभी दासियाँ राजा के संकेत पर वहाँ से उठकर बाहर चली गई। तब योगीराज ने राजा की तरफ मुडकर कहा—

"यह स्थान ठीक है राजा, मैं मंत्र-जाप यही शुरू करूंगा, किन्तु मन्त्र-जाप के समय यहाँ इस सुन्दरी के अलावा और कोई भी नही रह सकेगा, आप भी नहीं। बस मैं और यह सुन्दरी ही आमने-सामने रहेंगे और मुझे अपनी तांत्रिक क्रियाएँ पूरी करनी पडेंगी।"

यह सुनकर राजा भी चौंका किन्तु अधिक चौंकी मंजुला। उसने तेजी के साथ कहा—"महात्माजी, आपको जो भी प्रयोग करना हो, सबके सामने ही कीजिये, एकान्त में करने की कोई आवश्यकता नही है। आपका एक स्त्री के साथ एकाकी रहना क्या उचित है?"

ऐ मूर्ख स्त्री! तू हमे पहिचानती नही, हम योगीराज हैं। हमने वासना को जीत ली है। हमारे लिये तुम्हारी सुन्दरता का कोई मतलब नही है। हमे तो इस राजा पर तरस आ गया और उसकी मदद करने के लिये ही हम यहाँ आये हैं। तुम हम से निर्भय रहो। लेकिन मन्त्र पाठ तो विधिपूर्वक ही करना होगा और उसमे किसी तीसरे की उपस्थिति सह्य नही होती है।"—कहते हुए तरकीब से योगीराज ने भरपूर नजर से मजुला की आँखो मे गहराई से झाककर देखा और उसे इशारे से ही इशारे मे सारा रहस्य समझा दिया।

× × ×

तब योगीराज और मजुला ने ऐसी चतुराई से नाटक खेलना शुरू किया कि अपने को बुद्धि-शक्ति से बली समझने वाला जयशेखर भी पूरी तरह से बुद्धू बन गया।

"मैं क्षमा चाहती हूँ योगीराज कि मैंने आप जैसे पहुचे हुए महात्मा पर शका करने की धृष्टता की। एक साधारण स्त्री को आपकी महान् योग साधना का भला क्या ज्ञान हो सकता है? मेरे ध्यान मे तो रावण की बात आ गई थी, जिसने धोखा देने के लिये साधु का वेश धारण करके सीताजी का अपहरण कर लिया था"—बहुत ही सहमते हुए मजुला ने उत्तर दिया।

योगीराजने भी अपना ठप्पा लगाया—"कोई बात नही देवि, हम तुम्हारी सतर्कता से प्रसन्न हुए हैं। तुम बुद्धिशालिनी हो—इसमे कोई सन्देह नही है। मेरे प्रति तुम कोई अन्यथा चिन्तन मत करना। मैं जो कुछ प्रयोग करू गा, वह सब तुम्हारी भलाई के लिए ही करू गा।" फिर उन्होने राजा की तरफ देखकर कुछ सकेत किया कि राजा भीतर ही भीतर आशा से भर उठा। ऐसी कठोर स्त्री यदि इस तरह नरम हो गई है तो यह स्पष्ट रूप से योगीराज का ही प्रभाव है और अब इन्ही योगीराज के प्रभाव से ही उसका काम बन सकेगा ऐसा मजुला के स्वभाव मे तत्क्षण आये परिवर्तन को देखकर राजा को विश्वास होने लगा।

राजा को यह भी विश्वास होने लगा कि इन योगीराज की वाणी का ही जब यह प्रभाव सामने आया है तो इनके मन्त्र जाप और तन्त्र प्रयोग का तो निश्चित रूप से परिणाम उसके अनुकूल निकलने ही वाला है।

"अब मैं दो घडी तल्लीनता से मन्त्र जाप शुरू करना चाहता हूँ इसलिये महाराज आप भी बाहर जाइये। कठोर आज्ञा देदें कि कोई भी इधर आने की और जाप मे किसी तरह का विघ्न डालने की हिम्मत न करे।। जाप जितना निर्विघ्न होगा, परिणाम उतना

ही सुखद निकलेगा।" जब योगीराज ने गम्भीरतापूर्वक कहा तो राजा को वहाँ से हटना ही पडा। फिर भी राजा के मन मे कुछ शका उठी अत वह ऐसे स्थान से छिप कर देखने लगा जहाँ से वह उन दोनो को देख सकता था किन्तु वे उसे नही देख सकते थे।

राजा देख रहा था कि योगीराज ने बिना एक भी बार मजुला की ओर देखे वहाँ अपना आसन बिछाया, आवश्यक सामग्री यथाविधि जमाई तथा आखें बन्द करके मन्त्र जाप आरम्भ कर दिया। उनके ठीक सामने मजुला बैठी हुई थी किन्तु उसकी आँखें भी नीचे जमीन की तरफ झुकी हुई थी। योगीराज बन्द नेत्रो से मन्त्र पाठ करते जा रहे थे और कभी कु कुम तो कभी पुष्प मजुला की तरफ फैंकते जा रहे थे। राजा को अपनी शका निर्मू ल लगी–इसलिये वह वहाँ से उठकर चला गया। किसी तरह के विघ्न से प्रयोग असफल न हो जाय इस दृष्टि से जाते-जाते राजा ने मजुला के कक्ष की तरफ से सभी रास्ते—यहाँ तक कि देखे जा सकने वाले बारे तक बन्द करा दिये और किसी को भी उधर न जाने और न देखने तक की सख्त हिदायत कर दी।

काफी देर बाद आसपास की हलचल के आधार पर जब योगीराज को समझ मे आगया कि अब किसी ओर से कोई व्यवधान नही है तो उन्होने हँस कर मजुला से पूछा—"प्रिये, तुम्हारी ऐसी दशा कैसे बन गई ?"

"नाथ, यह सब कहने-सुनने मे तो दो घडी का समय अभी बीत जायगा क्योंकि दो बिछुडे हुए प्रेमियो की व्यथा-कथा कई घण्टो तक भी पूरी नही हो सकेगी। फिर दो घडी के बीतने के पहले बीच मे कभी राजा वापिस भी आ सकता है अत अभी तो आपने यहाँ से मेरी मुक्ति का जो भी उपाय सोचा हो, उसके सम्बन्ध मे अभी आवश्यक निर्देश मुझे दे दीजिये।"

"घबराओ मत मजुले, मैं पूरी तरह से सावधान हूँ। मैंने तुम्हारी मुक्ति का उपाय भी निश्चित कर लिया है। अब तुम्हें बहुत ही कुशलता से जयशेखर के साथ नाटक खेलना है। तुम यह जताओगी कि मेरे जाने के बाद मेरे प्रयोग से तुम राजा की ओर पूरी तरह से आकर्षित होगई हो और कल पीछे वाले उद्यान मे टहलते-टहलते उसे पटरानी बनने का अपना निर्णय सुनाने को कहोगी। मैं तुम्हे चूर्ण की एक पुडिया दे रहा हूँ जिसे तुम वहाँ उद्यान के एकान्त मे किसी पेय पदार्थ मे घोलकर प्रेम के स्वाग के साथ राजा को पिला देना जिससे वह तुरन्त तीन चार घण्टे के लिए बेहोश हो जायगा। तब तुम उद्यान के दक्षिणी फाटक पर पहुच जाना—वहाँ मैं घोडा लिए तैयार मिलू गा।"

यह कहकर योगीराज उर्फ श्रीकान्त ने चूर्ण की पुडिया मजुला को दे दी जिसे उसने उसी समय अपनी साडी की किनारी पर बाध दी। श्रीकान्त ने मजुला को फिर सावधानी दी—'देखो, तुम्हारा सारा व्यवहार इतनी चतुराई से होना चाहिये कि राजा को या किसी दूसरे को भी तनिक आशका न हो कि आगे क्या होने वाला है ? तुम सफलतापूर्वक ज्योही दक्षिणी फाटक पर पहुँचोगी कि तुम राजा की कैद से मुक्त हो जाओगी। फिर हम दोनो घोडे पर सवार होकर हवा मे बातें करते हुए दूर चल पडेंगे।"

मजुला ने हामी भरी और दोनो अपनी-अपनी चतुराई से आश्वस्त होते हुए निश्चिन्त हो गये।

मन्त्र-जाप का दो घड़ी का समय बीतने को था अत: योगीराज और मजुला पूर्व स्थिति मे आ गये तथा मन्त्र जाप का क्रम पूर्ववत् चलने लगा।

तभी हर्ष से उल्लसित होता हुआ राजा जयशेखर वहाँ आ पहुँचा। वह तो उस मन्त्र जाप के प्रभाव को जानने के लिए बडा ही आतुर हो रहा था। उसने तो दो घडी का वक्त भी बडी आकुलता और व्याकुलता से व्यतीत किया था कि कब समय पूरा हो और कब वह अनुकूल बनी मजुला से भेंट करे? राजा ने जब देखा कि योगीराज और मजुला यथावत् ध्यान मुद्रा मे बैठे हुए हैं एव विधिपूर्वक मन्त्र जाप चल रहा है तो उससे उसे बहुत सन्तोष हुआ।

योगीराज ने जाप समाप्त करके आखें खोली तो देखा कि राजा खडा है। राजा ने झुककर प्रणाम किया और पूछा—

"योगीराज, मत्र जाप कैसा रहा? क्या मेरा मनोरथ पूर्ण हो जायगा? क्या इस सुन्दरी के हृदय मे मेरे लिये अनुकूलता का भाव जागा है? मुझे जल्दी बताइये, मैं जानने के लिए बहुत ही उत्सुक हो रहा हूँ।"

योगीराज ने मधुर-मधुर मुस्कान के साथ कहा—"राजा, कुछ तो धीरज रखो। अभी-अभी मन्त्र जाप सम्पन्न हुआ है और आप इस सुन्दरी की मुखाकृति को देखकर कुछ तो अनुमान लगा ही सकते हो।"

जयशेखर ने मजुला के मुख को ध्यानपूर्वक देखा तो उसे महसूस हुआ कि अब उस चेहरे पर रोष तनिक मात्रा मे भी मौजूद नही था जो उसे हमेशा दिखाई देता था, बल्कि प्रसन्नता की हल्की-हल्की लहरें तैर रही थी। राजा अभिभूत सा मजुला के मुख को देखता रहा।

वह ऐसा समय था जब वहाँ उपस्थित तीनो प्राणी—योगीराज, मंजुला और जयशेखर अपने-अपने ढग से सभी परम प्रसन्न थे। जयशेखर को पूरा विश्वास होगया था कि अब मजुला सदा सदा के लिए उसकी हो जायगी।

राजा ने अपना आभार प्रकट करने के लिये बहुविध भेंटें मगाई और योगीराज के चरणो मे रखी। फिर उसने निवेदन किया—"योगीराज, आपके मत्र जाप का परिणाम आशाजनक लग रहा है और इसके लिए मैं आपका सदा आभारी रहूँगा। ये कुछ भेंटें हैं जिन्हें स्वीकार करके मुझे अवश्य कृतार्थ करें।"

तब क्रोध दिखाते हुए योगीराज ने पूछा—"मैं इन बहुमूल्य भेंटो का क्या करूंगा, राजा? हम तो सन्यासी हैं, हमे क्या माया से कोई मोह है? हम तो लोभ छोड चुके हैं। जाओ, इन्हे किसी परोपकार मे लगा देना।"

जयशेखर योगीराज की निर्लोभ वृत्ति से श्रौर अधिक प्रभावित होगया श्रौर लज्जित भी हुश्रा कि उसने उन्हे भेटें देने की चेष्टा क्यो की ? भावावेश मे उसने योगीराज के चरण पकड लिए । पैरो को झटका देकर वे जाने लगे तो गिड़गिडाकर राजा ने कहा—"श्राप मुझे क्षमा कर दीजिये ।" योगीराज तो झल्ला उठे—"राजा श्रापका काम बन गया, श्रब और क्या चाहिये ?" कहते हुए श्रकेले ही राजभवन से बाहर निकल पड़े श्रौर तेजी से चलने लगे ।

राजा ने कहा—"योगीराज, श्राप गलत दिशा मे जा रहे हैं—श्राप वाला उद्यान तो दूसरी तरफ है ।" राजा को उनकी नाराजगी का दु.ख हो रहा था ।

"मुझे अब यहाँ पल भर भी नही ठहरना है । मैं दूर-बहुत दूर चला जा रहा हूँ ।" श्रौर योगीराज चलते ही चले गये ।

राजा भी श्रव्यक्त हर्ष के साथ राजभवन मे मजुला के कक्ष की श्रोर बढ चला ।

• • •

२०

वासना के अपने ही जाले में फंसी मकड़ी

ससार मे आत्माओ को बाधे रखने वाला मुख्य वन्धन मोह का होता है और मोह को पूरी तरह मेट देने का नाम ही मोक्ष है। मोह-वध मे भी मुख्य कारण काम को माना गया है। कामवासना की प्रवलता के आगे वडे-वडे ऋषि-मुनि भी पराजित होते वताये गये हैं। यही कारण है कि काम-जय को आत्म-जय का रूप दिया गया है। जो काम को जीत लेता है, वह सव कुछ जीत लेता है और आत्म विजेता वन जाता है।

परन्तु जो अपने मन को वश मे नही कर पाता और कामवासना के अधड मे अपने आप को अनियन्त्रित छोड देता है, वह ससार की नुकीली चट्टानो से टकरा-टकरा कर कितना आत्म-हत हो जाता है, उसका स्वय को भी भान नही रहता। काम-मोह से उत्पन्न राग और द्वेष के वहाव मे वह इस ससार सागर मे गोते खाता ही रहता है। सच पूछें तो काम-मोहित आत्मा की दशा उस मकडी की तरह हो जाती है जो खुद ही जाला वुनती है और खुद ही उसमे फस कर तडपती रहती है।

राजा जयशेखर की दशा भी जव वह योगीराज को छोडकर मंजुला के कक्ष की ओर आगे वढ रहा था तो वैसी ही हो रही थी जैसी कि अपने ही जाले मे फसी मकडी की होती है। जयशेखर का यह जाला अपनी ही अनियन्त्रित वासना का जाला था। वह मन ही मन खुश होता हुआ सोच रहा था कि योगीराज वास्तव मे वड़े चमत्कारिक थे और उनकी तन्त्र साधना का मजुला पर वडा ही अनुकूल असर हुआ होगा। एक प्रकार से उसे अपनी सफलता का पक्का अनुमान हो रहा था। उसके विचारो मे उस समय काम-मोह उसके सम्पूर्ण मन-मस्तिष्क पर घना होकर छाया हुआ था।

मजुला के कक्ष मे प्रवेश करते ही जव राजा ने मजुला के प्रसन्न-वदन को देखा तव तो उसके हर्ष का ठिकाना नही रहा। एक वार तो उसके मुख पर प्रसन्नता की आभा देखकर राजा को वडा आश्चर्य हुआ किन्तु उसने इसे योगीराज की सफलता के रूप मे ही स्वीकार की। तव भाव-विभोर होकर राजा ने मधुर मुस्कुराहट के साथ पूछा—

"सुन्दरी, आज तो तुम वहुत प्रसन्न हो न ?"

मजुला ने भी सुर मे सुर मिलाकर निर्दोष भाव दिखाते हुए उत्तर दिया—"हाँ राजन्, आज मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। आपकी कृपा से भला मेरी प्रसन्नता मे कोई कमी रह सकती है?"

"यदि तुम इसी तरह पहले ही प्रसन्न हो जाती देवी, तो आज तक कितना आनन्द वढा हुआ रहता? आज तक तो हम दोनो आनन्द सागर मे निमग्न हुए होते।"

"बीती वातो को छोडिये महाराजा और अव वर्तमान को सोचिये कि क्या करना है और क्या नही करना है। इतने समय तक मेरा मन भ्रान्ति के वशीभूत था और भय से भीत भी था अत मैं अपना कर्त्तव्य निर्धारित नही कर पाई तथा वैचारिक उलझनो मे उलझी हुई रही। भला हो इस महात्मा का, जिसने मेरे विचारो को सही मोड दे दिया और अव मेरे सामने किसी तरह की अनिश्चितता नही है"—मजुला ने जैसे खुलकर कहा।

"सच! क्या उन योगीराज की वदौलत ही तुम्हे सही रास्ता दिखाई दिया?"—राजा को अपने प्रयत्न पर सचमुच वडी खुशी हुई।

"हाँ राजन्, पहले मैं वरावर सोच रही थी किन्तु कौनसा रास्ता लेना चाहिये—यही तय नही कर पा रही थी। परन्तु जव महात्माजी ने मत्र-जाप किया तो मेरे मन के ऊपर जो भय का पर्दा फैला हुआ था वह हट गया और अव मैं आनन्द का अनुभव कर रही हूँ"—मजुला ने कहा तो राजा योगीराज के चमत्कार को फिर से वाह-वाह कर उठा।

मजुला कहती रही—"मैं इस ससार की विचित्र दशाओ मे उलझ गई थी और ससार का सुहानापन भूल गई लेकिन अव मैं ससार की इन परिस्थितियो मे सुहावना स्वप्न देखने लगी हूँ और चाहने लगी हूँ कि आनन्द का रसपान करूँ।"

आनन्द के रसपान की वात और वह भी मजुला के मुँह से सुनकर जयशेखर का दिल वडी तेजी से धडकने लगा। भावावेश मे वह कहने लगा—

"क्या सचमुच तुम सुहावना स्वप्न देखने लगी हो और आनन्द का रसपान करने के लिए उत्सुक हो रही हो? मैं तो निहाल हो जाऊँगा सुन्दरी!"

"मुझे इसका दुःख है राजन् कि पहले मैं वात-वात पर आपका तिरस्कार कर दिया करती थी और भला-वुरा सुना देती थी क्योकि उस समय मुझे यथार्थ स्थिति का बोध नही था किन्तु अव मुझे सही ज्ञान हो गया है कि मुझे किसी भी आत्मा को कष्ट नही पहुँचाना है, दुःख नहीं देना है।"

"काश, तुम मेरी इच्छा को पहले ही समझ लेती तो मुझे इतना कष्ट नही भोगना पडता।"

"आप सही कह रहे है किन्तु काम भी समय आने पर ही वनता है। दूसरे, पुरुष का एक वहुत वडा दुर्गुण भी होता है कि वह जल्दी-जल्दी धैर्य खो देता है। वह अपनी

इच्छापूर्ति तो चाहता है, लेकिन नारी की इच्छापूर्ति का कोई खयाल नहीं रखता। आपमे भी राजन्, यही वडा दुर्गुण था कि मेरा मन आपके विरुद्ध भडकता रहा। आपने मेरी इच्छाओ की ओर न तो ध्यान दिया और न उनका मान किया। इस कारण दोनो छोर मिल नही सके।"

यही स्पष्टीकरण सुनकर राजा विचार करने लगा और उसे समझ मे आने लगा कि मजुला सही कह रही है। वह तो अपनी ही स्वार्थपूर्ति मे अन्धा हो रहा था। फिर भी प्रकट रूप मे बोला—

"सुन्दरी, मैंने तुम्हारी कौनसी वात से इनकार किया था ? मैं तो तुम्हारी हर वात मानने को तैयार था। यह जरूर है कि अपनी जल्दवाजी मे मैं तुम्हारे मन को भली-भाति टटोल नही पाया और यह नही जान पाया कि हकीकत मे तुम क्या चाहती थी ?"

"यही वात तो मैं आपको समझाना चाहती हूँ महाराज कि आपने बिना सोचे समझे मेरी सारी साधना मे बहुत विघ्न डाले। मेरी साधना के उद्देश्य की तरफ ध्यान दिये विना ही सिर्फ अपनी इच्छापूर्ति पर ही आप अडे रहे।"

"हाँ, यह मैं मानता हूँ। मुझे तुम्हारी साधना की वातें अच्छी नही लगती थी और न मैं उसका उद्देश्य ही समझ पाया। मैंने तो यही समझा कि तुम उस बहाने मुझे टालती जा रही हो।"

"यही तो पुरुष जाति की खराबी है कि वह नारी से उसकी वात नही, अपने ही मतलव की वात सुनना चाहता है। क्या यह नारी जाति का अपमान नही है ? पुरुषो ने नारी को मात्र अपने मनोरजन की गुड़िया समझ रखा है। आप खुद अपनी पिछली हरकतो पर ध्यान दीजिये और सोचिये कि आपने खुश होकर कव मेरी कौनसी इच्छा समझी और उसे पूरी करने की कोशिश की ?"

मजुला की वातो ने राजा के मन को झकझोर कर हिला दिया। उसने भीतर ही भीतर सोचा तो उसे महसूस हुआ कि दोष उसका ही रहा है। अपने पिछले कुकृत्यो पर लज्जित से होते हुए उसने कहा—

"सुन्दरी, मैं अपने पिछले दोप पर लज्जित हूँ। अव जो भी कहो, मैं तुम्हारी प्रत्येक इच्छा को पूरी करने के लिए तैयार हूँ।"

"तो क्या आप इतना भी नही समझते कि मेरी क्या इच्छा हो सकती है ?"

"मैं समझा नही, देखें ?"

"क्या किसी को अपनी कैद मे वन्द करके उसके दिल को अपनी तरफ मोड सकते हैं ? आपने कभी सोचा कि मुझे वन्दी वनाकर रखने से क्या मैं आपकी तरफ आकर्षित हो सकती थी ? परतन्त्रता मे अविश्वास की भावना होती है और विश्वास के विना कभी प्रेम का जन्म नहीं होता।"

"तुमने मेरी आँखें खोल दी है देवी, सचमुच वन्दीजन तो विद्रोही हो जाते हैं और जब मैं तुम्हें वर्षों से कैद मे डाले हुए हूँ तो भला तुम अपने को समर्पित कर देने को तैयार ही कैसे होती ? अब मैं तुम्हारी इच्छा को भली प्रकार समझ गया हूँ। तुम अब तो वन्दीपने की वात अपने दिल से निकाल फेंको। मैं तुम्हें प्रकृति की गोद मे ले जाकर तुम्हारे मन को आश्वस्त कर देना चाहता हूँ कि तुम अब पूरी तरह से स्वतन्त्र हो। बोलो, ठीक है न ?" राजा ने स्वीकृति चाही।

मजुला ने जयशेखर की अनुभूति को पुष्ट करते हुए कहा—"राजन्, पशु-पक्षी तक भी प्रकृति की गोद मे जव मोद मनाते हैं तो अपने को कितना आनन्दित और स्वतत्र महसूस करते हैं, फिर मैं तो नारी हूँ। नारी के मन को मनाने के लिये ही कितना प्रयास अपेक्षित होता है तो उसके आनन्द और उसकी स्वतन्त्रता के लिये तो काफी गहराई से सोचना चाहिये।"

"वस सुन्दरी, अब कुछ न कहो। मैं सव समझ गया हूँ। तुमने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से मेरी विवेक-विकलता जान ली है। किन्तु यह तो वताओ कि यह तीक्ष्ण बुद्धि तुम्हे योगीराज के मत्र-जाप से मिली अथवा अन्य किसी स्रोत से मिली है ?"

"महात्मा का ससर्ग तो दो घडी का ही अच्छा होता है महाराज। यह तीक्ष्ण बुद्धि मुझे अपने माता-पिता से सस्कारो मे मिली है कि मैं कठिन से कठिन परिस्थिति मे भी धैर्य को सजोये रखू और धैर्य का फल हमेशा मीठा होता है राजन्, तभी तो अब वसन्त ऋतु की वयार वहने लगी है।"

राजा मजुला का सकेत समझ गया और तव मुदित होकर स्वय ही कहने लगा—

"आज तुम आराम करो और अपने तन-मन को स्वस्थ वनाओ सुन्दरी, कल हम दोनो अपने उद्यान की प्राकृतिक रमणीयता मे स्वतन्त्र विचरण करेंगे ताकि तुम्हारा मन स्वाभाविक हर्ष से भर उठे। वैसे मैं तुम्हे अपना उद्यान भी अच्छी तरह से दिखाऊँगा, जहाँ भाँति-भाँति के रगो व गधो के फूलो की शोभा, सुन्दर-सुन्दर पक्षियो का कलरव और झरनो मे वहता हुआ शीतल जल तुम्हारे तन-मन को वहुत ही शान्ति पहुँचायेगा।"

तव मजुला ने सोचा कि अव राजा को अधिक कुछ कहने की जरूरत नही है क्योंकि वैसे ही स्वाभाविक ढग से उसकी योजना पूर्ति हो रही है। उसका हृदय प्रसन्नता से नाच रहा था कि उस के इष्ट कार्य के पूर्ण होने की सम्भावना स्पष्ट हो गई है और मजुला की प्रसन्नता को निरख कर राजा को अपार प्रसन्नता हो रही थी कि उसके भी इष्ट कार्य के पूर्ण होने की सम्भावना स्पष्ट हो गई है।

उस दुतरफी प्रसन्नता के वातावरण मे और अधिक रग घोलते हुए मजुला ने हँसते हुए कहा—

"राजन्, आपको अव नारी के मन पर विजय प्राप्त करने की कला आ गई है।"

मजुला के मुँह से ये शब्द सुनते ही तो काम-मोह मे अधा बना राजा फूल कर कुप्पा हो गया कि मजुला के मन पर अब उसे सम्पूर्ण विजय प्राप्त हो गई है।

× × × ×

भाग्य की विडम्बना देखिये कि मजुला और जयशेखर दोनो के मन मयूर तब हर्षातिरेक से नाच रहे थे और दोनो को अपनी-अपनी विचारणा के अनुसार अपने हर्ष मे वास्तविकता की अनुभूति भी हो रही थी। अपनी-अपनी इच्छा की पूर्ति होने मे किसी के मन मे शका का कही कोई स्थान नही था।

वासना के अपने ही जाले मे जयशेखर बुरी तरह फस गया था। काम-मोह मे हिताहित का बोध रहता नही और गहरी चाल भी समझ मे आती नहीं—सिर्फ सतही स्थिति ही उसे दिखाई देती है तथा जयशेखर की सतही स्थिति परम आनन्दमय उसे स्पष्ट नजर आ रही थी। चहेती नारी अपने पूरे मन से समर्पित हो जाय—इससे बडी खुशी एक काम मोहित को और क्या हो सकती है? अब तो सिर्फ एक रात ही बीच मे है—उसके कामी मन ने सन्तोष लिया और कल से मजुला हर समय हमेशा के लिए उसकी अपनी बन जाने वाली है। मजुला उसके रनिवास की शोभा होगी और पटरानी के रूप मे उसके हृदय पर शासन करेगी। कितना सुखद अनुभव होगा वह? वर्षो से उसके दिल मे जो कामना पल रही थी—वह कल प्रस्फुटित होगी और दिन-दिन पल्लवित तथा पुष्पित बनती हुई उसके जीवन को सुख-सागर मे निमज्जित कर देगी। रात भर राजा रगीन कल्पनाओ के हिंडोले मे झूलता रहा।

और रात भर मजुला के मन का हिंडोला भी बराबर चलता रहा। आँखो मे नीद आई ही नही, आ रही थी पुरानी यादें और छा रही थी अपने पतिदेव से मिलने की खुशी। जयशेखर के पजे से छूटते ही श्रीकान्त जब उसे दूर-बहुत दूर ले चलेगा तो वे दोनो घटो अपनी आपबीती सुनेंगे-सुनायेंगे और भावी जीवन के सुख का मार्ग खोजेंगे तथा खोज निकालेंगे अपने लाल को—यह पहिचान कर कि उसके हँसते ही उसके मु ह से बेशकीमती लाल नीचे गिरेगी। तीनो फिर श्रीपुर जायेंगे और पूरा परिवार आनन्द की धारा मे बह चलेगा।

अपने-अपने खयालो मे डूबे मजुला और जयशेखर दोनो कल को आज मे बदल देने के लिये रात भर सघर्ष करते रहे कि कब सुबह की पहली किरण फूटे और उनकी खुशियो का दिन उगे?

• • •

२१

श्रीकान्त और मंजुला घोड़े की पीठ पर

"सुन्दरी, मैंने अपने राजभवन के पीछे वाले उद्यान मे सभी आवश्यक प्रवध करवा दिये है कि हम दो के अलावा वहाँ कोई नही रहेगा और दिन भर उस सुखद एव मनोहर वातावरण मे दोनो विचरण करते रहेगे तथा रगीन सपनो मे खोये-खोये से एक दूसरे को प्रेम के वधन मे वाधते रहेगे।"

राजा जयशेखर ने आकर मजुला को जल्दी तैयार हो जाने का अनुरोध किया। आज उसका मन बुरी तरह से अवश हो रहा था। उसे लग रहा था, जैसे आज ही उसका पहली वार विवाह हो रहा है।

"इतने वर्षों मे आज आप पहली वार मुझे कृतार्थ करेंगे, राजन्।" और मजुला हौले से राजा की ओर देखकर मुस्करा दी।

"अब मुझे और शर्मिन्दा न करो देवी! मुझे अपनी ही भूल पर वडा पश्चात्ताप हो रहा है और इसका मैं उचित प्रायश्चित भी करूगा। मेरे प्रायश्चित से तुम्हें अवश्य सन्तोष हो जाएगा। वस, आज तो खुले दिल से मुझे माफ कर दो और मुझे आनन्द-रस का पान करा दो।"

मजुला कुछ वोली नही। अपने मुह पर हँसी विखेर कर तैयार होती रही।

× × × ×

प्रात कालीन सूर्य की सुखदायी किरणें उस रमणीय उद्यान के लहराते फूलों पर, थिरकते-वहते जल पर और हरियाली मे पटे मैदानो पर चमचमाती हुई नाच रही थी। जब मजुला को साथ लेकर जयशेखर उस उद्यान मे गया तब उनकी छवि निराली ही लग रही थी और जयशेखर तो जैसे उस वातावरण मे खो सा गया।

जयशेखर मजुला को उद्यान का प्रत्येक हिस्सा दिखाता रहा और घटो इधर-उधर उमगते खयालो से घूमता रहा। जब वह थक कर चूर हो गया तो वोला—

"मैं तुम्हारे रूप सौन्दर्य की किससे तुलना करू ? मेरे लिये तुम अद्वितीय हो—अतुलनीय हो, सुन्दरि ! मन चाहता है कि अब मैं तुम से एक पल के लिये भी दूर न रहू ।"—अपनी काम वासना के दल-दल मे राजा आकठ डूवता जा रहा था।

"राजन्, आप हकीकत मे वहुत थक गये हैं। आइये, इस समीप के लता कुंज मे विश्राम करें।" मजुला ने सुझाया।

"मैं भी विश्राम की ही सोच रहा था ताकि अपने मन की वात तुम्हें सुनाऊँ और तुम्हारे मन की वात मैं सुनू—आखिर आज इन दोनो मनो को मिलकर एक जो हो जाना है।" और राजा तथा मजुला लताकुज मे लगे आसनो पर जा वैठे।

"आप वहुत थके हुए हैं, कुछ पेय ले लीजिये। मैं खुद जाकर ले आती हूँ और अपने ही हाथो आपको पिलाती हूँ।"—मजुला ने मनुहार के साथ कहा।

"अभी वस शीतल जल ही पीऊगा और अवश्य तुम्हारे हाथो से ही पीऊगा किन्तु पहले तुम्हारी सुख देने वाली वातचीत से अपने तन-मन की तपन तो मिटालू।" यह कहकर राजा ने मजुला की मुस्कराती हुई मुखाकृति को जी भर कर देखा और धीरे-धीरे फिर कहना शुरू किया—"सच मानो देवी, मैं आज अपना नया जन्म लूँगा—मेरे सुखो का नया अध्याय शुरू होगा। तुम मेरी पटरानी बनोगी और सारे राज्य पर ही नहीं, मेरे हृदय पर भी तुम ही राज करोगी, मेरी हृदयेश्वरी ! मैंने निर्णय लिया है कि आज से सातवे रोज तुम्हे पटरानी पद पर आरूढ कराने का मैं एक महोत्सव आयोजित कर रहा हूँ, जो अभूतपूर्व होगा। उस दिन राजमुकुट धारण करके हम दोनो राजसिंहासन पर वैठकर राज्य परिषद् का समारोह करेंगे और सारा जन समुदाय हमारा हृदय से अभिनन्दन करेगा। मैं उसे अपने जीवन का एक स्वर्णिम दिवस मानूगा। क्यो ठीक रहेगा न, सुन्दरी ?"

"आपकी कृपा से ही मेरा जीवन मुक्त हो रहा है तो सभी तरह के सुखों से वह अभिसिक्त भी होगा, राजन् ! आपकी कृपा के मैं सदा ही गुण गाती रहूँगी।"

"नही देवी, तुम नही, मैं ही तुम्हारे प्रति सदा आभारी रहूगा।" राजा ने उसके गुण गाने की वात को टालने के लिये कहा।

"मैं शीतल जल ले आऊ महाराज और अपने हाथो से आपके तन-मन को शीतल वना दू ? जाऊं न ?" मजुला ने पास के झरने से जल की छोटी सी झारी भरी और चुपके से अपनी साड़ी के पल्लू पर वधी चूर्ण की पुडिया उसमे मिला दी। फिर सावधानी से झारी लेकर राजा के समीप चली आई और उसे जल पिलाने लगी।

चोरो के सरदार द्वारा श्रीकान्त को दिया हुआ वह चूर्ण वडा असरकारी था। ज्यो-ज्यो जल की घूटें राजा के गले से नीचे उतरती गईं, वह मीठी नीद के झोंको मे डूवता गया। उस झारी का जल पी लेने के वाद तो वह पूरी तरह से अपनी सारी सुध-वुध खो वैठा। मजुला ने उसे वहाँ एक पत्थर की पीठिका पर लिटा कर वस्त्र ओढा

दिया। तब वह दूर राजभवन के भीतरी प्रवेश पर इन्तजार करती दासियो के पास दौडी गई और उन्हे निर्देश दिया—"देखो, थक कर महाराज अभी-अभी सोये हैं। उनकी निद्रा मे किसी तरह का विघ्न न हो इस कारण किसी को तीन-चार घटे तक उद्यान मे प्रविष्ट न होने दिया जाय। पूरी तरह सावधानी रखें।"

दासियाँ अपनी 'सती' को अचभे की निगाहो से देख रही थी कि उनके देखते-देखते यह कैसा बदलाव आ गया है ? जो इतने वर्षों तक अपने शील धर्म की रक्षा पर मजबूती से डटी रही, वही इस तरह इस दुष्ट राजा के पजो की पकड मे कैसे आ रही है ? वे यह हकीकत अपनी आंखो के सामने देख रही थी, फिर भी न जाने क्यो उन्हे यह महसूस हो रहा था कि यह हकीकत नही है।

फिर भी अपनी होने वाली स्वामिनी मानकर ही पट्ट दासी ने कहा—"आपकी आज्ञा का कठोरता से पालन किया जाएगा, महादेवी ! आप निश्चित रहे।"

तब मंजुला तेज कदमो से उद्यान मे दक्षिणी द्वार की ओर बढ चली।

× × × ×

श्रीकान्त द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर जाकर जब मजुला खडी हो गई और वहाँ उसे श्रीकान्त नही दिखाई दिया तो वह भय के मारे सिहर उठी। उसने बनाई गई योजना के अपने हिस्से को पूरी चतुराई से पूरा कर लिया था और अब यदि श्रीकान्त ही यहाँ नही पहुँचा तो सारा किया कराया तो चौपट होगा ही, लेकिन जयशेखर के हाथो उसके लिये भीषण दु.ख, अपमान और यत्रणा का सिलसिला शुरू हो जायगा जिसका अब वह शारीरिक रूप से कितना सफल प्रतिरोध कर पायेगी ? यह तो दिल दहला देने वाला सकट सामने आ गया लगता है।

फिर उसके मन मे दूसरी आशका जागी। कही उसके पतिदेव किसी अनसोचे सकट से तो नही घिर गये हैं ? यह परदेश है और कोई भी आपत्ति खडी हो सकती है। क्या उनके मिलन के बीच फिर कोई व्यवधान आने वाला है ?

मजुला भयभीत नेत्रो से इधर-उधर देखने लगी कि कही किसी ओर से आता हुआ श्रीकान्त उसे दिखाई दे जाय।

"मजुले, घबराओ नही, मैं यहाँ वृक्ष की शाखा के ऊपर हूँ ताकि कही कोई बाधा हो तो ताड सकू।"

श्रीकान्त की आवाज सुनकर पल भर मे वह स्वस्थ हो गई और उसने इशारे से घोडे के लिये पूछा। श्रीकान्त तुरन्त नीचे कूदा और पास ही मे सुरक्षित स्थान पर छिपाये हुए घोडे को दक्षिणी द्वार के बाहर ले आया। मजुला को शीघ्र ऊपर बिठाकर वह घोडे पर कूद कर बैठ गया और उसने तेज ठोकर से एड लगा दी। घोडा हवा से बातें करने लगा।

× × × ×

नीति के मानदड सामाजिक धारणाओ के धरातल पर तैयार होते हैं । इन्ही मानदडो के आधार पर यह निर्णय लिया जाता है कि किसी व्यक्ति का कौनसा कार्य नैतिक है और कौनसा कार्य अनैतिक ? मूल रूप से नैतिकता और अनैतिकता की मीमासा जन्म लेती है अन्त:करण के गर्भ गृह मे और अन्तर्चेतना ही उसकी कसौटी होती है। यही धार्मिकता या आध्यात्मिकता कहलाती है।

समाज हित के सदर्भ मे व्यक्ति की निजात्मा की कसौटी पर कसा जाकर जो सस्कार, विचार या कार्य बाहर प्रकट होता है, उसे मोटे तौर पर धर्म कह सकते हैं—नैतिक कह सकते हैं या कि सदाशयी कह सकते हैं । इसके विपरीत जहाँ न समाजहित का ध्यान होता है और न ही निज अनुभूति का भान—वैसे व्यक्ति का सस्कार, विचार या कार्य विकारमुक्त होने के कारण पाप रूप कहा जाता है ।

मजुला को केन्द्रित कर श्रीकान्त एव जयशेखर की स्थिति पर विचार करें तो धर्म एव पाप के दोनो रूप स्पष्ट हो जाते हैं । श्रीकान्त का सामाजिक मान्यता के अनुसार मजुला के साथ विवाह होने से उस पर उसका नैतिक अधिकार था तो जयशेखर का कार्य इसलिये पापपूर्ण था कि उसने मजुला का अपहरण करके अपने मन को अनधिकारी की अवस्था मे विकारयुक्त बनाया । इस कारण श्रीकान्त के हाथो जयशेखर की कैद से मजुला की मुक्ति एक सराहनीय कर्त्तव्य कहा जाएगा ।

श्रीकान्त और मजुला एक घोडे की पीठ पर साथ-साथ बैठे उडे जा रहे थे और कर्त्तव्य पूर्ति का सुख लिये जा रहे थे ।

श्रीकान्त से एक छोटी-सी भूल हुई थी कि वह हसवाहन से जब एक रात के लिये उडकर श्रीपुर पहुँचा था तो लौटते समय मा से मिल नही पाया । बस वही भूल समझ या नासमझ से इतनी बडी बन गई कि उसने एक गभीर दुर्घटना का रूप ले लिया – एक ऐसी दुर्घटना जिसकी चपेट मे आकर परिवार का एक-एक सदस्य बिखर गया और बिछुड गया । श्रीकान्त ने उस बिखराव की एक कडी आज हस्तगत कर ली थी और उस रूप मे उसे अपने कर्त्तव्य के एक अश के पूरे होने का इस समय सन्तोष था । कहाँ-कहाँ की ठोकरें खाकर कम से कम वह मजुला को तो खोज लाया ? उसके सौभाग्य का *श्रीगणेश* हो गया है तो उसके मन को विश्वास हुआ कि वह अपने लाल को भी खोज लेगा और अपनी माँ तथा बहिन से मिलकर परिवार के अखडित स्वरूप का पुनर्निर्माण भी कर लेगा ।

लाछना, प्रताडना और यन्त्रणा के कष्टो को भुगतने तथा लम्बे समय से बिछोह का दु ख सहने के बाद अपने पतिदेव का सुखद मिलन मजुला के लिये भी कम रोमाचकारी नही था । जहाँ धर्म, विवेक और धैर्य जीवन का मार्ग दिखाते हैं, वहाँ पति-पत्नी भी धर्म और नीति के ही रूप होते हैं । श्रीकान्त और मजुला इस दृष्टि से एक ही घोडे की पीठ पर बैठकर उडे क्या जा रहे थे कि जैसे धर्म और नीति आपस मे जुडकर किसी कल्याण-अभियान पर चल पडे हो ।

एक प्रहर तक लगातार चलते रहकर जव वे दोनो चन्द्रनगर से काफी दूर निकल गये तो उनकी जयशेखर के सैनिको द्वारा पीछा करने की चिन्ता कुछ कम हुई । चिन्ता कम हुई तो थकान महसूस होने लगी । दोनो को भूख-प्यास भी सताने लगी ।

"अव तो हम खतरे से वाहर निकल गये हैं प्रियतम ?" मजुला ने ही घोडे की तेज चाल के वेग मे वात शुरू की ।

"हाँ मजु, हम काफी दूर निकल आये हैं, फिर कुछ और आगे वढ जाय तो अधिक सुरक्षित हो जायेगें ।" श्रीकान्त ने आश्वस्त किया ।

"आप तो वहुत थक गये होंगे । मैं भी इतनी थक गई हूँ कि गिरी जा रही हूँ ।"

"न तो अव मैं थकता हूँ मजुले और न अव तुम थकने लायक हो । कितनी विपदाओ को हम दोनो ने झेला है—अव थकान कहाँ रह गई है हमारे भीतर ?"—श्रीकान्त ने मजुला की पीठ पर हल्की सी थपकी लगाते हुए कहा ।

मजुला का मुह आरक्त हो उठा—लजाते हुए वह वोली—"इतने लम्वे अन्तराल के वाद आज आपका आश्रय जो पा गई हूँ—तभी तो मेरी थकान भी उभर आई है ।"

"मजु, मैं तो यो ही विनोद कर रहा था । देखो सामने ही पर्वत की तलहटी मे फलों के वृक्ष भी दिखाई दे रहे हैं तो नदी भी वह रही है । वहाँ चलकर भूख प्यास भी मिटायेंगे तो भरपूर विश्राम भी करेंगे । और ये काम तो गौण हैं—मुख्य है कि आप वीती सुनेंगे—सुनायेगें और आगे का कर्त्तव्य निश्चित करेंगे ।"

२२
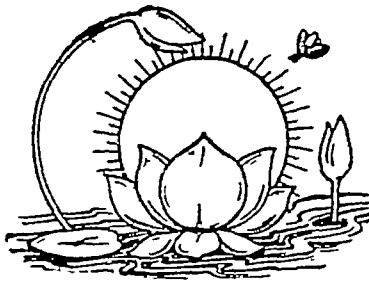
अपनी-अपनी कहानी : दोनों की जुबानी

श्रीकान्त और मजुला दोनो जब घोडे की पीठ पर से नीचे उतर कर नदी किनारे वृक्षो के झुरमुट मे विश्राम करने बैठे तो वे क्षण उन्हे इतने अमोल लगे कि वैसा अनुभव उन्हें पहले कभी नही मिला था। प्रकृति की विशाल गोद मे दोनो निश्चिन्त होकर बैठे थे और एक दूसरे की आप-बीती कहानी सुनने-सुनाने को उत्सुक हो रहे थे।

किन्तु पहले श्रीकान्त उठा और पलाश के कुछ पत्ते तोड लाया जिनसे मजुला ने पत्तल और दोने बनाये। श्रीकान्त पके-पके कुछ फल तोड लाया तो मजुला स्वच्छ जल के दोने भर लाई। दोनो ने सन्तोष और तृप्ति से पहली बार साथ-साथ फलाहार और जलपान किया। फिर कुछ तरोताजा होकर दोनो आमने-सामने बैठे तो बोले बिना न रह सके।

मजुला ने ही बात शुरू की—"स्वामी, जिस रात आप हस वाहन से उडकर पधारे थे, उस वक्त माताजी से मिलने का मेरा आग्रह मान जाते तो शायद यह सारी परिस्थिति पैदा नही होती। उसके कारण मेरे साथ जो बीता और बीतता गया, उसकी कहानी लम्बी भी है तो दर्दनाक भी....।"

"मजु, जिस-जिस आत्मा के जिस-जिस प्रकार के कर्मों का बध होता है, उनके उदय मे आने पर उनका अच्छा या बुरा जो-जो फल होता है, वह उस-उस आत्मा को भोगना ही पडता है। हम दोनो के कुछ ऐसे ही निकाचित कर्मों का बध रहा होगा कि घटना चक्र ने इस तरह मोड लिया। उस समय मुझे मेरी जिम्मेदारी समय पर पूरी करने की चिन्ता थी इसलिये माँ से बिना मिले ही चला गया। लेकिन मैं उसके बाद श्रीपुर जा आया हूँ और घर से तुम्हारे निष्कासन की सारी वार्ता जान चुका हूँ। वास्तव मे बडा ही अन्याय हुआ तुम्हारे साथ! लेकिन मेरी उत्सुकता एक दूसरी बात जानने की बडी तीव्र हो रही है सो तुम बताओ कि हमारे सौभाग्यशाली पुत्र रत्न का जन्म कहाँ और कैसे हुआ और कैसे वह तुमसे बिछुड गया?"—यह पूछते समय श्रीकान्त बहुत ही भावुक होगया तथा उसकी आँखो से अपने अनदेखे लाडले की याद मे टप-टप आँसू झरने लगे।

मजुला ने अपने दिल को कडा करके सक्षेप मे बताया—"नाथ, घर से निकल कर मैं काटो—पत्थरो से पैदल जूझती हुई वियावान जगल मे पहुँच गई जहाँ एक नर राक्षस से मेरा सामना हुआ किन्तु धर्म का प्रसाद मानिये कि मेरे उद्‌वोधन से उसने अपना हिंसक जीवन वदल लिया तो मुझे भी वहिन बनाकर आश्रय दिया...... और वही मैंने आपके उत्तराधिकारी को जन्म दिया ... " कहते-कहते वह अपने उमडते हुए आसुओ को रोक नहीं पाई।

"फिर यह राजा जयशेखर का सकट कहाँ से पैदा होगया ?"—श्रीकान्त हठात् पूछ वैठा।

मजुला ने नवजात को पेड की डाली से झोली मे वांधकर लटकाने से लेकर पागल हाथी द्वारा सरोवर मे फैंक देने तथा वहाँ जयशेखर द्वारा अपने राज भवन मे पहुँचा देने की सारी कहानी श्रीकान्त को सुना दी।

"तो इसका यह मतलब हुआ कि उस नवजात का क्या हुआ होगा—इसका कोई सूत्र तुम्हारे पास नही है। किन्तु मेरा मन कहता है कि वह अवश्य जीवित है और हमे अवश्य मिलेगा।" श्रीकान्त ने जोर देकर कहा।

"मेरा भी आत्मविश्वास यही कहता है पतिदेव! जब वह भाग्य का धनी है तो दीर्घ आयु का भी धनी होगा ही। और जब अपन दोनों का मिलन होगया है तो देर अवेर हमारा लाल भी हमे अवश्य मिलेगा।" मजुला का मन भीतर ही भीतर आशान्वित हो उठा।

"अव हमारा मुख्य काम है अपने लाल को खोज निकालना। तुमने उस वियावान जगल का जो विवरण दिया है, उसके हिसाव से उस मार्ग से किन नगरो के काफिले किस तरफ जाते हैं इसका मैंने अनुमान लगा लिया है और इस अनुमान के आधार पर ही अव हम अपने खोज कार्य का निर्धारण करेंगे।"

"अव आप साथ हैं तो यह खोज कार्य कई गुने वेग से कर सकेंगे। किन्तु आपने यह नहीं वताया स्वामी कि आपने मुझे चन्द्रनगर मे कैसे खोज लिया और वैसा असरकारी चूर्ण आप कहाँ से प्राप्त कर लाये ?"—मजुला उन तथ्यो को जान लेने के लिये उतावली हो उठी।

श्रीकान्त ने चोरपल्ली की सारी कहानी कह सुनाई और यह भी वता दिया कि धर्म के प्रभाव से कैसे वह चोरपल्ली को प्रेमपल्ली मे वदल सका। प्रेमपल्ली से विदा लेकर वह अनायास ही चन्द्रनगर के वाहर पनघट पर पहुचा था कि पहले दो पनिहारिनो के और वाद मे उद्यान मे दो मालियो के वार्तालाप से उसके जयशेखर की कैद मे वन्दी होने का पक्का पता चल गया। फिर उसने मजुला की आखो की गहराई मे अपनी स्नेहिल दृष्टि फैलाते हुए अनुरागपूर्वक कहा—

"उसके वाद ही तो हमारा दृष्टि मिलन हुआ था, मजुले! तुम गवाक्ष मे खडी थी और मैं वृक्ष के नीचे। फिर मिला था तुम्हारा खून से लिखा सन्देश ... '

"अब तो मानना चाहिये स्वामी कि कठिनाइयो का दौर समाप्त होने को है और अपने लाडले को खोज लेने के बाद अपना पूरा परिवार पुन सुख के सूत्र मे बध जायगा।" मजुला ने जब भविष्य की अपनी यह कामना प्रकट की तो श्रीकान्त केवल हल्के से मुस्करा दिया, बोला कुछ नही—यह सोचकर कि पूर्व सचित कर्मों का कितना खेल हो चुका है और कितना खेल बाकी है, कौन जानता है ?

फिर श्रीकान्त ने मजुला को सावधान करते हुए कहा—"प्रिये, कुछ देर विश्राम करके अब हमे यहाँ से चल देना चाहिए। कारण, जयशेखर के सैनिक हमारा पीछा करते हुए यहाँ तक पहुच सकते हैं। मैंने देखा था कि तुम्हारे प्रति उसका आकर्षण बहुत जटिल था अत अपनी मूर्च्छा हटते ही वह तुम्हे न पाकर चुप नही बैठा होगा।"

यह सुनकर मजुला हकीकत मे काप उठी कि जरा सी असावधानी कही उसे और उसके पतिदेव को फिर से कष्टो की भट्टी मे न झोक दे। आश्वस्त करते हुए श्रीकान्त फिर बोला—

"ऐसी बात नही है कि उन्हे हमारा पता लग ही जाय। फिर भी हमे असावधानी और देरी से दूर रहकर अपने लाल को खोज निकालने के लिए अब पूरी तत्परता से ही भागना-दौडना चाहिए। इसलिए थोडी सी देर सुस्ताकर अपन चल ही पड़ते हैं।"

और दोनो अपने तन-बदन को हल्का करने के लिए आँखें बन्द करके नदी की ठडी बालू रेत पर लेट गये।

× × ×

दिन ढलने लगा था और सूर्य की ढीली पीली पडी किरणे नदी के जल पर प्रतिबिम्बित होकर जीवन की क्षणभगुरता का परिचय दे रही थी। सूर्य भी तो मानव जीवन की तरह बाल, युवा और वृद्ध की तीनो सीढियाँ प्रतिदिन चढ़ता उतरता है। सुबह की लाल किरणें दोपहर मे तपते हुए शोलो की तरह तेजस्वी बन जाती हैं, किन्तु वे ही किरणें शाम ढलते-ढलते अपना तेज खोती पीली होती चली जाती हैं। किस प्रकार की किरणो का कब कैसा उपयोग किया जाना चाहिये—यही आत्म चिन्तन का विषय होता है।

लेटे-लेटे श्रीकान्त यही सोच रहा था कि आज का उसका वह तेजस्वी यौवन व्यर्थ नही चला जाना चाहिये। परिवार को पुन एकरूपता मे ढाल कर उसे आत्म कल्याण एव लोकोपकार का मार्ग पकड लेना है। मजुला को जैसे जयशेखर की कैद से मुक्ति दिलाई है, उसी प्रकार कर्मो मे बधी हुई अपनी इस आत्मा को भी मुक्ति दिलानी है। मानव-जीवन का यह प्रयास ही सर्वोपरि है।

सोचते-सोचते सूर्य का अन्तिम भाग भी अस्ताचल मे ढक गया तो फुर्ती से श्रीकान्त उठा, मजुला को उठाया और घोडे पर सवार होकर दोनो वहाँ से चल पडे।

□ ○ □

२३

कठिनाइयों का अन्त कहाँ ?

अब श्रीकान्त और मजुला अपने घोडे पर बैठे तेजी से नही भाग रहे थे, वल्कि सामान्य चाल से सावधानीपूर्वक आगे बढ़ते जा रहे थे। श्रीकान्त यह ध्यान रख रहा था कि कही आसपास निरापद स्थान दिखाई दे, तो वही रात व्यतीत की जाय। मन मे उतना भय भी नही था तथा मौसम भी वहुत सुहावना था सो दोनो भूतकाल की यादें उभारते-उभारते और भविष्य की योजनाएँ गढते-गढते धीमे-धीमे चले जा रहे थे।

तभी आगे वैठी मजुला को पीछे वहुत दूर घोडो की टापो की हल्की-हल्की आवाज सुनाई दी। लगा कि कई घोडे दौडते हुए उनकी तरफ ही तेजी से आरहे हैं। विना श्रीकान्त को वताए वैसे ही उसने पीछे की ओर देखा तो श्रीकान्त चौंकते हुए वोल पडा—"क्या वात है ?"

मजुला ने तव तक पीछे देखकर यह देख लिया था कि उडती हुई धूल का गुवार उनके काफी नजदीक आता जा रहा है तथा घोडो की टापो की आवाज भी पहले से ज्यादा तेज होती जा रही हैं, यद्यपि धूल उडने के कारण घोडे दिखाई नही दे रहे थे। वह वोली—

"स्वामी, कोई न कोई सकट हमारे पीछे नजदीक तक पहुँच रहा है और ज्यादा सभावना यही लगती हैं कि राजा जयशेखर के सैनिक ही हमारा पीछा कर रहे हो तथा शायद राजा भी साथ मे हो, इसलिये तुरन्त वचाव का उपाय कीजिये।"

तव तो श्रीकान्त एकदम चौका। जिस सकट की तव तक वहुत हल्की सी आशका रह गई थी, वही सकट भयानक रूप लेकर उसके मस्तिष्क पर छा गया। किन्तु श्रीकान्त का विवेक और साहस भी सदा सजग रहता था, चौंक कर वह तुरन्त स्थिर हो गया। एक भरपूर नजर से उसने पीछे के दृश्य को देखा और सारी स्थिति का तुरन्त अनुमान लगा लिया। उसे महसूस होगया कि पीछा करने वाले ज्यादा दूर नही हैं किन्तु अभी धूल उडने के कारण न वे उसे देख पाये होगे और न ही उसे वे दिखाई दे रहे हैं अत दृश्य साफ हो उसके पहले-पहले अपने को वचाने का रास्ता खोज लेना चाहिये।

हल्का-हल्का अन्धेरा घिरने लगा था और वह जगल भी गहरा ही था। नजदीक-नजदीक पेड़ो के घने झुरमुट और झाडियो के झुड फैले हुए थे। उस वातावरण को

अनुकूल मानकर श्रीकान्त ने धीरे से घोडे को मुख्य मार्ग से नीचे उतार लिया और कुछ ही दूरी तक वन प्रदेश के भीतर जाकर दोनो नीचे उतर गये। घोडे को एक घने वृक्ष के पीछे छिपा कर बाँध दिया और दोनो वृक्ष की ऊपर की शाखा पर छिप कर बैठ गये।

× × ×

कामवासना का जिसके मन पर आक्रमण होता है, वह वासना पूर्ति जब तक नहीं होती है, उसके लिये पागल बन जाता है, फिर किस्मत से अगर उसकी वासनापूर्ति हो जाती है तो वह मदान्ध हो जाता है। किन्तु यदि उसकी वासनापूर्ति नही हो पाती है और उसमें वह छला जाता है तब तो उसकी हिंसा उभर आती है तथा वह अतीव क्रूर बन जाता है। ज्यो ही राजा जयशेखर की मूर्छा हटी और उसने सूनी-सूनी आँखो से देखा कि वहाँ कहीं भी मजुला नही दिखाई दे रही है तो वह सकते मे आगया। यह क्या ? जो चीज सोलहो आने उसकी मुट्ठी मे आ चुकी थी, क्या वही उसकी हाथो से गधे के सीग की तरह अलोप होगई ? यह कैसे होगया ? वह जानने के लिये उतावला हो उठा। उसका शरीर अशक्ति के दौर मे था इस कारण वह पत्थर की पीठिका पर से तुरन्त उठ कर खडा नही हो सका तो जोर-जोर से एक-एक दासी का नाम पुकार-पुकार कर चिल्लाने लगा।

घबराई-डरती इन्तजार करती हुई सारी दासियाँ उद्यान मे दौडी आईं और राजा के मुँह को टुकुर-टुकुर देखने लगी।

"मुझे क्या देख रही हो ? मजुला कहाँ है ?"

किसी की हिम्मत नहीं हुई कि राजा के उस क्रोध के सामने कुछ बोल सके। राजा फिर गरजा—

"तुम कहाँ जाकर सोगई थी ? बोलती क्यो नही कि मजुला कहाँ चली गई है ?"

किसी तरह पट्ट दासी ने हिम्मत की और बोली—

"महाराज, उन्होंने ही हमे आज्ञा दी थी कि चूकि आपको नीद आगई है इसलिये किसी को भी इधर नही आने दिया जाय। इस निगहदारी के लिये हम तो उधर ही खडी रही थी। हमे आज्ञा देकर वे आपकी ओर ही आई थी।"

राजा कुछ नही बोला। उसे यह भी समझ मे नही आया कि वर्षों से उसकी कैद मे पडी हुई मजुला क्या भाग निकलने का उतना साहसपूर्ण कार्य कर सकती है ? और अकेली भी भागने की वह क्या हिम्मत कर सकी होगी ? तो फिर क्या हुआ है ? उसने तुरन्त कुछ सैनिको को भेजने की आज्ञा दी। तत्काल सैनिक उपस्थित हुए तो राजा ने उन्हें आदेश दिया कि वे सारे उद्यान मे घूमकर पैरो के निशानो से या दूसरी तरह से बारीक खोज करके मजुला का तुरन्त पता लगावें और उसे वही आकर सूचना दें। सैनिक जल्दी-जल्दी सारे उद्यान मे फैल कर खोज करने लगे।

राजा हतप्रभ सा वहीं उस कठोर पत्थर पर बैठा रहा और अपने भाग्य को ठोकता

रहा। उसे कितनी इन्तजार करनी पडी, कितनी उसने कोशिशें की और ऐसी सुन्दरी कोमलांगी मुश्किल से मिली भी तो यो हाथ से जाती रही।

तभी एक सैनिक दौडता-दौडता हुआ आया और बोला—"महाराज, आपकी इस पत्थर की पीठिका से किसी महिला के पैरो के निशान शुरू होकर उद्यान के दक्षिणी द्वार तक लगातार पहुँच रहे हैं और वहाँ उनके साथ किसी पुरुष के पैरो के निशान तथा घोडे के खुर एक साथ मिल रहे हैं।"

पागल की तरह राजा जयशेखर मन ही मन यह सुनकर जोरो से चीख पडा—"इसका मतलव यह हुआ कि मजुला किसी के साथ भाग गई है और वह पुरुष योगीराज ही हो सकता है। वाकी तो किसी के साथ मैंने उसका सम्पर्क ही नही होने दिया था। वहुत वडा धोखा होगया है मेरे साथ। मैं खुद ताज्जुब मे था कि मेरे साथ घोर नफरत करने वाली मजुला योगीराज के मत्र जाप के वाद मे ही एक दम मेरे प्रति इतनी नरम कैसे होगई ? मुझसे प्रेम जताने का उसने मेरे साथ तव नाटक ही किया–मुझे मुर्ख वना दिया। वदहवास की तरह राजा वही खडा होकर गरजा –"कम से कम सौ सैनिक मेरे साथ चलें। मेरा अश्व तुरन्त दक्षिणी द्वार पर लेकर आओ। मजुला का पीछा करना होगा"—कहते कहते राजा दक्षिणी द्वार की ओर उसी हालत मे दौड पडा।

भयकर क्रोध की ज्वाला से जयशेखर काला पड रहा था और सोच रहा था कि वह मजुला को पकडते ही उसके साथ निर्दयतापूर्ण दुर्व्यवहार करेगा और उसे भगाकर ले जाने वाले का सिर धड से उडा देगा।

× × ×

श्रीकान्त और मजुला ने हल्के हल्के अन्धेरे मे देखा कि करीव सौ घोडे तेजी से दौडते हुए मुख्य मार्ग पर वढे जा रहे हैं। उन पर शस्त्र लिये सैनिक वैठे हुए हैं। जिनके मुह धूल से सने हुए है। वीच मे खुद राजा जयशेखर पागल की तरह दिखाई दे रहा है—उसने न तो ठीक से कपडे पहने हुए हैं और न ठीक होश हवास है। सभी भागे जा रहे है।

श्रीकान्त ने मजुला का हाथ दवा कर धीमे से कहा "मजुले, अगर हमने थोडा सा भी विलम्व कर दिया होता तो न जाने क्या–क्या घटित हो जाता ? कुए से निकल कर वावडी, मे गिर जाते !"

मजुला तव तक कुछ नही वोली जव तक कि पूरा घोडो का दल उनकी आखो के आगे से दूर तक नही वढ गया। तव राहत की सांस लेकर वह वोली—"प्राणनाथ हम ! वाल वाल वचे हैं।"

"हाँ प्रिये, तुमने देखा नही, राजा जयशेखर का क्या हाल हो रहा था ? कदाचित् वह हमे पा जाता तो कितनी क्रूरता का वर्ताव करता—क्या तुम कल्पना कर सकती हो ?"

"ऐसी कल्पना मैं नही करूंगी श्रीकान्त—मैं तो वह दृश्य देखकर ही इतनी आतकित हो रही हूँ कि मेरा रोम–रोम सिहर उठा है।" श्रीकात ने ढाढस वधाया। वह

खुद सोच मे पड गया था कि अभी तो सैनिको का दल मुख्य मार्ग पर ही आगे बढ गया था किन्तु वह रात भर शान्त थोडे ही रहने वाला है। सब लोग जगल का चप्पा-चप्पा छानते रहेगे और उन्हे ढूढते रहेगे। इसलिये बहुत सोच समझ कर उसे आगे चलने का निश्चय करना चाहिये। उसने मजुला से सलाह लेते हुए पूछा—

"अब क्या करें, मजुले, यही ठहरे रहे या आगे बढें और आगे बढे तो किस तरफ ?

मजुला विवेकशील थी तो बुद्धिशाली भी। उसने गहराई से सोच कर अपनी राय बताई।

"कुछ समय तक हमे यही ठहर कर इन सैनिको के वापसी लौटने की प्रतीक्षा करनी चाहिये। यदि वे आसपास तलाश करके वापिस लौट आते हैं, तो हम मुख्य मार्ग से आगे बढ चलेंगे और सुरक्षित स्थान पर रात्रि व्यतीत कर लेंगे। किन्तु यदि तब तक सैनिक वापिस नही लोटते हैं तो हमे मानना होगा कि वे पूरे जगल मे बारीकी से खोज कर रहे होगे। वैसी दशा मे हमे मुख्य मार्ग छोड़ देना चाहिये और उल्टी दिशा मे बिना मार्ग उबड-खाबड निकल जाना चाहिये ताकि उन्हे किसी भी हालत मे हमारा सुराग नही मिले।"

यह राय सुनकर श्रीकान्त स्तम्भित रह गया कि मजुला इस मामले मे भी इतनी महत्त्वपूर्ण राय देने की योग्यता रखती है। उसे शत प्रतिशत वह राय पसन्द आगई। उस वक्त अपनी सुरक्षा करने हेतु उससे अधिक कारगर राय दूसरी हो ही नही सकती थी। उसने मजुला की पीठ ठोकी और कहा—

"मजु, अभी इस तुम्हारी राय से मुझे समझ मे आया है कि अगर तुम्हारे लिये किसी लडाई का मोर्चा जमाना हो तो वह काम भी तुम बडी कुशलता से कर सकती हो।"

"यह आपही की कृपा है नाथ, मुझे जो विवेक, धैर्य और साहस अपने पैतृक सस्कारो मे मिला था वही आपके विवेक, धैर्य और साहस का सम्बल पाकर कई गुना बढ गया है। हम दोनो मिल कर दो नही, एक और एक ग्यारह हो गये हैं।"

"तुम सच कह रही हो मजुले ! पति और पत्नी मिल कर जीवन के पथ पर एक दूसरे के सुदृढ सम्बल हो जाते हैं और मैं तो पत्नी का महत्त्व अधिक मानता हूँ। वही सच्ची धर्मपत्नी होती है जो अपने पति को धर्म के मार्ग पर आगे और आगे लिये ही चली जाती है। हम भी जल्दी ही अपने ये सासारिक कर्तव्य पूरे करके धर्म मार्ग पर साथ-साथ आगे बढ चलेंगे क्यो मजु, तुम ठेठ तक मेरा हाथ थामे रहोगी न ?"

मजुला ने जैसे धन्य होते हुए कहा—"मेरे श्रीकान्त, हम दोनो क्या अलग-अलग हैं ? हम तो एक हैं और एक बने रहकर ही जीवन को उन्नति के ऊँचे शिखर तक ले जायेंगे।"

तब दोनो उस शाखा पर बैठे बैठे ही धर्म भावनाओ मे निमग्न हो गये तथा महामत्र का जाप करने लगे। उन्होनें इस मनोरथ का चिन्तन किया कि कब वे इस ससार का त्याग करके मुनि धर्म ग्रहण करेंगे और अपने कर्मो को नष्ट करके मुक्ति की ओर अपने पगलिये आगे धरेंगे।

जब जयशेखर के सैनिक एक की बजाय दो घटे तक भी उधर से लौटकर नही आये तो श्रीकान्त और मजुला ने यही उचित समझा कि उन्हे अब उस दिशा मे आगे नही बढ कर उल्टी दिशा मे ऊबड-खाबड ही धीरे-धीरे आगे चलना चाहिये ।

कई बार देखा जाता है कि कठिनाइयो का दौर जो एक बार शुरू हो जाता है तो वह जैसे खत्म होना नही जानता । एक के बाद एक करके कठिनाइयाँ आती-जाती हैं और अनसोचे कष्ट बिखेर कर चली जाती हैं । बहुधा ऐसा भी होता है कि ये कठिनाइयाँ सज्जन और सच्चे व्यक्तियो को ही ज्यादा सताती हैं । किन्तु उस परिस्थिति का दूसरा पहलू भी सामने रखा जाना चाहिये कि कठिनाइयाँ ही व्यक्तियो को सुदृढ, सक्षम और सुयोग्य बनाती हैं । कायर व्यक्ति तो कठिनाई को सहेगा ही क्या ? आग मे इसी कारण कोई और धातु नही सोना ही डाला जाता है जो निखर कर कुन्दन बनता है । वैसे ही साहसी और विवेकी व्यक्तियो पर जितनी अधिक कठिनाइयाँ आती हैं, उतना ही उनका व्यक्तित्व निखर कर प्रभावशाली बनता जाता है । प्रकृति के आँकडे मे अभी तक श्रीकान्त और मंजुला की कठिनाइयो का हिसाब बाकी था । उन्हे और तपना था । अभी उनकी कठिनाइयों का अन्त कहाँ था ?

घोडे पर सवार श्रीकान्त और मजुला धीरे-धीरे चल रहे थे कि अचानक घोडा जोर से उछला । दोनो मजबूती से बैठे हुए थे लेकिन उन्हें यह समझ मे नही आया कि घोडा इस तरह उछला और भागा क्यो ? अन्धेरे मे उन्हें कुछ दिखाई नही दिया ।

घोडा न जाने किस कारण से एक बार जो भागना शुरू हुआ तो झाड झखाडो मे फसता अटकता भागता ही चला गया । काफी कोशिशो के बाद भी वह काबू मे नही आया लेकिन तभी एक आश्चर्यकारी घटना गुजर गई तथा मजुला इतनी स्तभित और अवश हो गई कि वह कुछ भी नही कर सकी ।

यकायक श्रीकान्त जोर से चीखा और धडधडा कर नीचे गिर पडा । घोडा तो और ज्यादा भडक गया और अकेली मजुला को ही अपनी पीठ पर लादे तेजी से भागता ही गया । न मजुला को मालूम हो सका कि श्रीकान्त क्यो चीखा और क्यो गिर पडा तथा न श्रीकान्त को जानने की शक्ति रही थी कि घोडा मजुला को लेकर कहाँ पहुँच गया होगा ?

असल मे हुआ यह था कि घोडे कि टाग से दब कर एक सर्प क्रोध से ऊपर उछला और उसने श्रीकान्त के पैर मे तेजी से काट खाया । उस पीडा से श्रीकान्त उछल कर गिरा तो सर्प से डर कर घोडा भी भागता ही गया तथा कई कोस भागते रह कर गिर पडा । मजुला तो श्रीकान्त की चीख सुनकर ही होश खो बैठी थी और जहाँ घोडा गिर गया वहाँ मजुला भी बीच जगल बेहोश पडी रह गई ।

———

२४

अरण्य से सार्थवाह भाई के घर

कर्मफल विपाक मे कभी-कभी इतनी विचित्रता दिखाई देती है जिसका पहले से अनुमान तक नही लगता और वाद मे उस फलाफल को देखकर दातो तले अगुली दवा देनी पड़ती है। और जव अशुभ कर्मों का उदय होता है और उनका अशुभ फल भोगते हुए किसी सच्चरित्र आत्मा को देखते हैं तो देखने वालो के दिल मे भी एक टीस सी पैदा होती है कि ऐसे सज्जनतापूर्ण जीवन पर ही वार-वार कष्टो का दौर क्यो आता है ? इस प्रकार के कष्टो को सहन करने का एक उजला विंदु भी है। यह तो ध्रुव सत्य है कि यदि किसी आत्मा ने पहले अशुभ कर्मों का वध किया है तो उसे उन कर्मो के उदय मे आने पर उनका अशुभ फल भोगना ही पडेगा। परन्तु यदि फल भोग के समय वह आत्मा स्वस्थ आचार–विचार वाली और विवेकशील होती तो वह उन कष्टो को शातिपूर्वक सहन करके तथा साथ मे धर्म और शुक्ल ध्यान मे रमण करते हुए उन कर्मों को क्षय कर देती हैं। इसके विपरीत यदि अशुभ फल भोग लेनी वाली आत्मा उन कष्टो को हाय विलाप के साथ भोगती है एवम् ,आर्त व रौद्र ध्यानो मे भटकती है तो पहले से भी अधिक अशुभ कर्मों का वन्ध कर लेती है। मजुला की आत्मा पहली श्रेणी की आत्मा थी जिसको पहले वन्धे हुए अशुभ कर्मों का फल भोगना पड रहा था किन्तु भोगते समय अतीव शाति और विवेक वनाए रखने के कारण वह अपने अशुभ कर्मों का क्षय कर रही थी।

उस अधेरी रात्रि मे वावले वने घोडे ने वेहोश मजुला को अपनी पीठ पर लादे-लादे उस सुनसान अरण्य मे कहाँ-कहाँ चक्कर लगाये कोई नही जानता। लेकिन जव घोडा थक कर चूर हो गया तो उस अरण्य मे एक मार्ग के पास गिर पडा और उसने वही दम तोड दिया। घोडे के साथ ही मजुला का वेहोश शरीर भी पास ही मे एक वालू के ढेर पर गिर पडा जिससे उसे कोई खास चोट नही लगी। ज्यो-ज्यो रात वीतती रही और प्रातकालीन शीतल वायुवेग चलने लगा तो धीरे-धीरे मजुला की सज्ञाहीनता भी टूटने लगी।

मजुला की आँखें जव धीरे-धीरे खुली तो वह अपने चारो ओर का दृश्य देखकर आश्चर्य चकित भी हुई तो चिन्तित भी वीती रात कि घटना मे उसे सिर्फ इतना ही याद था कि न जाने किस कारण से श्रीकान्त जोर से चीखा था और घोडे से नीचे गिर पडा था। परन्तु उसके साथ ही उसने जो होश खोया और अव जो होश आया है उसके वीच की उसे कोई याद नही थी। उसे यह भी मालूम नही था कि श्रीकान्त कहां गिरा था और उससे कितनी दूर वह यहां पडी हुई है ?

उसे यकायक विचार आया कि पूर्व सचित कर्म उसके जीवन के साथ कैसा-कैसा खेल कर चुके हैं। और अभी भी कैसा-कैसा खेल करते रहेगे ? पर मजुला तो सहनशील एवम् धीरज वाली महिला थी, धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझती थी अत उसने अपनी वर्तमान परिस्थितियो पर शाति के साथ गौर करना शुरू किया।

मजुला ने उठ कर चारो तरफ कुछ घूम कर आने की चेष्टा की लेकिन उसे कुछ अधिक अशक्ति महसूस हो रही थी इस कारण लेटे-लेटे ही वह चारो ओर अपनी दृष्टि घुमाने लगी। उसने देखा कि सूरज उग आया है और चारो और घने वृक्ष फैले हुए हैं। उन वृक्षो के बीच मे एक सकडा सा मार्ग चला जा रहा है जिससे उसे अनुमान लगा कि यदा-कदा इस मार्ग से व्यापारी सार्थवाहो के काफिले आते-जाते रहते होंगे। उसके मन में कल्पना जागी कि काश, अभी भी कोई काफिला निकले और वह उसे समुचित आश्रय दे तो वह श्रीकान्त की खोज कर सके।

कर्मफल विपाक मे यह आवश्यक नही है कि कर्मों का अशुभ फल ही लगातार चलता रहे। अशुभ फल के बीच मे भी कई बार शुभ फल चमक उठता है तो शुभ फल का आनन्द लेने के दरमियान भी अशुभ फल के धक्के लगते रहते हैं। तो इधर मजुला की कल्पना जागी और उधर हकीकत मे एक काफिले के आने की हल्की हल-चल उसे महसूस हुई। मार्ग की उस दिशा मे जब उसने अपनी नजर फैलायी तो उसने देखा कि बहुत दूर धूल का एक बादल सा उठा है और बैलगाडियो के चलने की आवाजें आ रही हैं। उसके मन मे हल्की सी यह आशका भी जागी कि कही वह राजा जयशेखर के सैनिको का ही दल न हो जो पिछली रात से उसकी तलाश मे निकला हुआ था। किन्तु उसे ध्यान आया कि उस दल मे तो सिर्फ घोडे ही थे और इस समय उसे बैलगाडियो के चलने की आवाज आ रही है। एक आशका हटी तो दूसरी आशका ने जन्म लिया कि यदि यह काफिला किन्ही लुटेरो या क्रूर लोगो का हुआ तो उसके सिर पर नये सकटो का पहाड गिर सकता है। अब जो भी हो उसने सोचा कि सब कुछ उसे धैर्य पूर्वक ही सहना है।

काफिला धीमी गति से बढता हुआ मजुला की तरफ ही चला आ रहा था और उसे देखते-देखते मजुला के मन मे तरह-तरह के विचार उठ रहे थे।

× × × ×

यह सुशील सार्थवाह का काफिला था जो परदेश से भाति-भाति की व्यापारिक वस्तुएँ सचित करके अपने नगर की ओर लौट रहा था। सुशील सेठ बहुत ही नीतिज्ञ और सच्चरित्र व्यक्ति था। उसके साथ कई गाडियो मे माल भरा था और उसके लिए कई रक्षक घुडसवार भी थे। आगे-आगे चलने वाले रक्षक घुडसवार ने जब दूर से बालू के ढेर पर किसी स्त्री को लेटे हुए देखा तो वह चकित रह गया कि इस सुनसान अरण्य मे यह सुन्दरता की अनोखी देवी अकेली कैसे लेटी हुई हैं ? उसने सकेत से सुशील सेठ को आगे बुलाया और सकेत से ही उसने उसे मजुला को दिखाया। सेठ भी उसे देखकर आश्चर्य मे डूबा कि वास्तव मे यह कोई मानवी है अथवा वनदेवी ? इतनी रूपवान और तेजस्वी आकृति तो

वनदेवी की ही हो सकती है। सेठ ने निश्चय किया कि जो भी हो उसे निकट जाकर अवश्य पता लगाना चाहिए कि वह कौन है ? हो सकता है कि वह कोई विपदा ग्रस्त नारी हो और उसे मानवता के नाते उसकी शुभ सहायता करने का सौभाग्य मिले।

सुशील सेठ बहुत धीमे कदमो से बालू के ढेर के पास पहुँचा और बहुत ही मीठी आवाज मे बोला

"बहिन, तुम कौन हो और कहा जा रही हो ? क्या मै तुम्हारी कोई सहायता कर सकता हूँ ?

अब तक मजुला की देह मे कुछ-कुछ शक्ति सचार होने लगा था अत. वह धीरे-धीरे बैठी और सम्बोधन करने वाले पुरुष की मुखाकृति को ध्यान पूर्वक देखने लगी। उसे लगा कि वह व्यक्ति न चोर या लुटेरा हो सकता है और न ही कोई क्रूर या दुर्जन। मनुष्य के मन का स्वरूप अधिकांशत उसकी आकृति पर झलक उठता है और फिर उस की भाषा भी उसके मन का पट खोल देती है। सुशील सेठ की आकृति और भाषा से मजुला आश्वस्त हो गयी कि यह व्यक्ति निश्चय ही सज्जन पुरुष है और उसके मुहँ से निकला बहिन का सम्बोधन उसके लिए आश्रय का भी विश्वास दिला रहा है। उसके मन मे इस कारण शाति पैदा हुई और उसने स्थिर भाव से उत्तर दिया—

"भाई साहब, मेरे लिए तो बस इतना ही समझ लीजिये कि मैं एक दुखियारी हूँ और किसी भी दुखियारी को कोई निरापद आश्रय स्थान मिल जाए यही उसकी चाह होती है। लेकिन क्या मैं पूछ सकती हूँ कि आप कौन हैं और मेरी किस प्रकार से सहायता करने के इच्छुक हैं ?

"कोई बात नही बहन तुम कोई भी हो किन्तु इस समय तुम बहुत दुर्बल दिखाई दे रही हो इसलिए पहले तुम कुछ स्वस्थ हो जाओ" यह कहकर सुशील सेठ ने अपने साथ चल रहे वैद्यराज को बुलाया और उसे तुरत लाभकारी औषधि देने का निर्देश दिया।

जब औषधि प्रयोग के बाद मजुला स्वस्थ सी हो गयी तब सुशील सेठ ने जानकारी पाने के लिहाज से पूछा—

"पहली बात तो यह है बहन कि तुम मुझे अपना भाई समझो और निशक हो जाओ। अब बताओ कि तुम इस सुनसान अरण्य मे कैसे पहुँची ? तुम अकेली थी या तुम्हारे पति भी साथ मे थे ? तुम कहा की निवासी हो और तुम्हारा पूरा परिवार कहा रहता हैं ?"

प्रश्नो की एक साथ इतनी झड़ी सुनकर मजुला कुछ सहम सी गई और सोचने लगी कि अपने कर्मो का रहस्य हरेक के सामने प्रकट करते रहने मे क्या शोभा है ? इसलिए उसने सक्षेप मे इतना ही उतर दिया—

"भाई साहब, मैं और मेरे पति चन्द्रनगर से चले थे किन्तु ऐसी दुर्घटना घटी कि पतिदेव घोडे से गिर गये और मैं घोडे पर ही बेहोश हो गयी। फिर घोडा रात भर न

जाने कहाँ-कहाँ कितना दौड़ता रहा और अभी-अभी जब मेरी चेतना लौटी तो मैंने आपके काफिले के आने की आहट पायी ।"

सुशील सेठ ने देखा कि थोडी सी दूरी पर ही घोडे का मृत शरीर भी पडा था। उसे विश्वास हो गया कि इस समय तो यह स्त्री अवश्य ही दुखियारी हो गयी है क्योकि चन्द्रनगर वहाँ से कई कोसो दूर था और फिर दुर्घटना मे उसके पति का जाने क्या हुआ होगा। अब तो यह निराश्रिता है और यदि वह मान जाय तो वह उसे बहन के रूप मे आश्रय देने को तैयार है। यह सोच कर अब उसने अधिक स्नेहमय मनुहार के साथ कहा—

"चन्द्रनगर बहुत दूर है और तुम्हारे कहे अनुसार तुम्हारे पतिदेव का पता लग पाना भी कठिन ही दीखता है। इसलिए अगर तुम्हें कोई आपत्ति न हो तो मेरे काफिले के साथ चलो। मैं घर ही जा रहा हूँ और तुम्हे अपने घर मे बहन के मान के साथ रखने को तैयार हूँ।"

मजुला की आँखों में यकायक चमक आ गई कि इस समय उसे कोई योग्य शरणदाता मिल जाय यही बहुत है। सार्थवाह के अनुसार वह अकेली पति की खोज करने मे समर्थ नही थी, इसलिए उसने कहा —

"भाई साहब, इस दुखियारी को आप जैसे दयावान भाई का आश्रय मिलजाय यह मैं अपना भाग्य मानू गी।"

मजुला की स्वीकृति मिल जाने पर सुशील सेठ ने प्रसन्नता जाहिर की।

काफिला भी रात भर से चल रहा था इसलिए सेठ ने विश्राम के लिए वही पडाव डालने का आदेश दिया। सभी लोग नित्य कर्म की निवृत्ति मे लग गये।

इस बीच मजुला एक निरभ्र स्थान पर आसन लगा कर समभाव मे बैठ गयी और महामत्र का जाप करने लगी। उस समय उसके मुख मण्डल पर शाति की जो आभा फूट रही थी उससे सभी लोग अत्यन्त प्रभावित हुए। जब मजुला ने नेत्र खोले तो सभी लोग वहाँ एकत्रित हो गये थे—

"आप इतनी संकटग्रस्त है फिर भी इतनी शाति धारण कर लेती हैं—यह आप कैसे करती हैं? हम लोग तो इतना धन कमाते है फिर भी हमको शान्ति नहीं है। आप तो बहुत बडी साधिका लगती हैं। हमको भी आपके ध्यान की कुछ धारा तो बताइये।"

"आप सब लोग गुणग्राही हैं, इसीलिए पूछ रहे हैं। जो आत्मा को समभाव का भोजन बराबर खिलाता रहता है उसके शरीर को भले ही भोजन न मिले, वह भूखा नही होता और जो आत्मगुणो से सदा तृप्त रहता है वह अपनी शान्ति को भी बराबर बनाए रखता है...... . ."

मजुला का उद्बोधन सुनकर सबने शाति लाभ किया तो सबका मन मजुला के प्रति गहरी श्रद्धा से भर उठा। जब सब भोजनादि की तैयारी के लिए चलने लगे तो मजुला ने कहा—

"मैं भी अब आपके इस परिवार की सदस्या हो गयी हूँ इसलिए मैं भी आपके साथ काम करूंगी और सबके साथ ही भोजन करूंगी।"

इस प्रकार मजुला ने अपनी शालीनता, सौजन्यता एवम् पवित्रता की छाप सभी पर डाल दी। सुशील सार्थवाह तो मन ही मन धन्य हो उठा कि उसके घर मे इस सती जैसा चितामणि रत्न प्रकाशित होता रहेगा।

× × × ×

"अरी भागवान, जरा देखो तो सही इस बार मैं तुम्हारे लिए धर्म-बहन लेकर आया हूँ। हरबार जब भी काफिला लेकर आता हूँ तब धन और विविध प्रकार के पदार्थ तो लाता ही हूँ। वे तो इस बार भी लाया हूँ किन्तु यह सती रूपी चितामणि रत्न ऊपर से है। यह गुणवती और धर्मपरायणा दुखित अवस्था मे अरण्य मे मिली है जिसको मैंने धर्म बहन बना कर इस घर मे आश्रय देने का वचन दिया है। इसकी आत्म शाति से काफिले के सारे लोग इससे श्रद्धा करने लगे है और तुम भी जब इसके साथ रहोगी तो अवश्य ही आत्मा की शाति व आत्मा का आनन्द प्राप्त कर सकोगी।"

सुशील सेठ ने अपनी धर्म बहन बनायी मजुला का अपनी धर्मपत्नी मे परिचय कराया।

यह मनोविज्ञान सही लगता है कि कोई भी सामान्य स्त्री दूसरी अपरिचित स्त्री के प्रति निशक भाव नही रखती है। सुशील सेठ की पत्नी ने मजुला को एडी से लगाकर चोटी तक देखा और मन ही मन शका उठायी कि पति देव इतनी सुन्दर स्त्री को धर्म बहन बना कर लाये हैं और घर मे साथ-साथ रखना चाहते हैं इसमे जरूर दाल मे काला मालूम होता है। यह स्त्री दुबले शरीर और बिना शृंगार के भी इतनी सुन्दर दीखती है कि मैं तो इसके अगूठे के नाखून के बराबर भी नही। इस कारण पतिदेव का मन कभी भी डगमगा सकता है और मेरे लिए इसी घर मे दुख का पहाड टूट सकता है।

पत्नी ने तत्काल कोई उत्तर नही दिया तो सुशील सेठ उसके मन के भाव पढता रहा फिर उन्हे समझ कर वह पुन. बोला—

"प्रिये, यदि तुम अन्यथा विचार कर रही हो तो मैं स्पष्ट कर दू कि मैं इसके रूपलावण्य पर मुग्ध नही हूँ। मुझे तो इसकी आत्म-शक्ति पर श्रद्धा हुई है और चूकि यह निराश्रिता थी अत धर्म बहन बना कर ही घर मे आश्रय देने का निश्चय किया है।"

इतना कहने के बाद पत्नी ने कुछ भी विपरीत कहना उचित नही समझा और यही कहा—

"आपने यदि इसे अपनी धर्म बहन बनाया है तो मेरी भी ननद होकर बहन ही हो गयी है और मैं इसे इसी मान से घर मे रखूगी।"

कहने को तो सुशील सेठ की पत्नी ने यह बात कह दी और पति के सामने मजुला की पीठ थपथपा कर आशीर्वाद भी दे दिया, लेकिन उसके मन मे सशय का जो काटा गडा था वह गडा ही रहा। ☐

२५

सेठानी ने पूरा षड़यंत्र रचा

मंजुला तो सरल वृत्ति एव सादी प्रवृत्ति वाली महिला थी। उसने अपने आप को उपकृत माना कि सुशील सेठ ने उसको अपने घर मे आश्रय दिया तथा सेठानी ने भी उसे बहन के समान मान कर अपना आशीर्वाद दिया। इस दृष्टि से मजुला ने उस घर को अपना दूसरा पितृगृह मान लिया।

मजुला ने देखा कि घर मे नौकर चाकर बिना सही समझ बूझ के काम करते है और उसकी वजह से घर मे चारो तरफ अस्त-व्यस्तता सी फैली हुई है। घर के विभिन्न कार्यों के सचालन मे भी उसे सुव्यवस्था का अभाव दिखाई दिया। यह देखकर उसने सारी व्यवस्था का सूत्र स्वय सभाल लेने का मन ही मन निश्चय कर लिया—यह सोच कर कि वह अपने आश्रयदाता की स्वय कुछ सेवा कर सके और दूसरे, यदि वह अपने शरीर श्रम के कार्यों मे भी लगी रहेगी और साथ-साथ मे आध्यात्मिक साधना भी करती रहेगी तो उसका समय शान्तिपूर्वक गुजरता रहेगा।

जब मजुला ने नौकरो-चाकरो के हाथों से काम खुद लेना शुरू किया तो पहले-पहले सेठानी ने उसे दिखावे के रूप मे ऐसा करने से रोका किन्तु मजुला के समझाने पर वह जल्दी ही मान गई। उसने सन्तोष की सास ली कि नौकरो-चाकरो का खर्चा कम होगा, उसे भी पूरा आराम मिलेगा तथा घर की खटखट मे रात-दिन लगी रहने के कारण इसका मन भी उलझा हुआ रहेगा और सेठजी की तरफ आकर्षण-विकर्षण का प्रयास नही चलेगा।

ज्यो-ज्यो मजुला के साथ रहते हुए सेठानी के दिन व्यतीत होने लगे उसे समझ मे आने लगा कि यह वास्तव मे गुणशीला एवम् उज्ज्वल चरित्र सम्पन्ना महिला है। मजुला ने अपना सुचारु दैनिक कार्यक्रम बना लिया था जिसमे वह घर के प्रत्येक कार्य की सुव्यवस्था भी करती तो अपनी धार्मिक साधना मे भी पूरा समय बिताती। यही नही, उसने पास पडौस से मिलने आने वाली स्त्रियो के साथ मे भी धर्म चर्चा आरम्भ की और उन्हें प्रतिदिन धर्माचरण के क्षेत्र में आगे बढाने लगी। धीरे-धीरे मजुला के आदर्श व्यक्तित्व की तरफ पास पडौस के लोग भी श्रद्धापूर्वक प्रभावित हो गये।

यद्यपि मजुला के आचार-विचार मे सेठानी को कही भी कोई दोष नही दिखाई देता था फिर भी मन ही मन वह जलती रहती थी कि यह महिला उसके पति को तो वश

मे किये हुए है ही लेकिन पास पडौस के सभी लोगो को भी अपने वश मे किये जा रही है। यह आज नही तो कल उसके लिए खतरे की बात हो सकती है। सच बात तो यह थी कि सेठानी मजुला के प्रति अपने दिल मे गडे हुए काटे को निकाल नही पायी थी और उसकी पीडा से हर वक्त छटपटाती रहती थी बल्कि वह अवसर ढूढती रहती थी कि मौका आने पर वह इस काटे को निकाल फेंके। वह अपने मन मे आशका को बराबर पाले हुए चल रही थी।

सुज्ञानी व्यक्ति अपनी किसी भी भूल को सहज भाव से स्वीकार कर लेते हैं और कभी किसी को अपने साथ विवाद करने का अवसर नही देते हैं। इस कारण उनका स्वय का ... भी मिलता है किन्तु हृदय स्वच्छ रहता है तो सामने वाले को प्रहार करने का मौका नही ... तनिक भी बाहर कुज्ञानी व्यक्ति अपनी दुष्टता को भी मन ही मन पालते रहते हैं; उसे ... ति सबो के साथ प्रकट नही होने देते और जब समय आता है तो अपना बदला क्रूरतम भा... तो भी कुज्ञानी लेते हैं। उस घर मे मजुला सुज्ञानी की तरह बरताव कर रही थी तो सेठान... तरह चल रही थी।

इस बीच सुशील सेठ पुन: काफिला लेकर परदेश गया और वहाँ से ... मे परि... काफी सम्पदा लेकर वापिस लौटा। जिस समय वह अपने घर पर पहुँचा सेठानी कह... स्त्री के मिलने-जुलने गयी हुई थी तथा घर मे मजुला अकेली ही थी। सुशील सेठ ने आवा... लगाकर लगायी तो निश्छल भाव से मजुला बाहर निकल आयी। आखिर जब वे भाई-बहन... धर्म थे तो सकोच की कौन-सी बात थी ?

सुशील सेठ ने स्नेहपूर्वक कुशलक्षेम पूछा और पूछा कि उसकी भाभी कहाँ है ... ने बताया कि वह कही मिलने-जुलने गई है तो सुशील सेठ ने मजुला को ... पदार्थों को भीतर व्यवस्थित रखने मे उसका हाथ बटाने को कहा। इस तरह सुशील सेठ और मजुला दोनो सामान बाहर से भीतर रखने लगे।

तभी सेठानी अपने घर लौट आयी। द्वार पर दृष्टि पडते ही वह चौंक कर जल भुन गई। उसने देखा कि उसके पति और मजुला घर के भीतर से बाहर चले आ रहे हैं और दोनो के चेहरो पर खुशी तैर रही है। उसके मन मे कलुष तो पहले से ही फैला हुआ था और अब यह दृश्य देखकर साप ही लौट गया। वह अपने पति के रुख को जान चुकी थी इसलिए उसने उस समय किसी भी प्रकार से विरोध करना उचित नही समझा। बस मन ही मन उसने पक्की गाठ बाध ली की अब चाहे जैसे हो, इस कटक से अपने घर को मुक्त करा ही लेना चाहिये।

सुशील सेठ ने सेठानी को देखते ही प्रेम पूर्वक कहा—"भद्रे ! तुम इस समय कहाँ चली गई थी ? कुछ बहुमूल्य सामान था सो तुम्हारे यहाँ न होने के कारण मजुला से मैं रखवा रहा था। सध्या का समय हो गया है इसलिए इस सामान को बाहर पडा रखना ठीक नही था।"

"हाँ-हाँ, क्यो नही ? बहन से मदद लेने मे हर्ज ही क्या है ?"—सेठानी ने ऐसी मासूमियत से कहा कि मजुला तो कुछ गलत समझी नही किन्तु सुशील सेठ अवश्य ही उसके कहने के ढग मे छिपे हुए व्यग्य के पुट को समझ गया ।

सुशील सेठ हमेशा की तरह कुछ दिन घर पर ठहरा और अपने व्यापार कार्यों मे लगा रहा । फिर समय आने पर वह अपना काफिला लेकर परदेश को चल दिया ।

× × × ×

सुशील सेठ के परदेश चले जाने के बाद घर का वातावरण यथावत् ही चलने लगा । मजुला के मन मे किसी प्रकार की कोई दुविधा या आशका थी नही और सेठानी अपने मन मे जो दुविधा पाल रही थी । उसे वह किसी भी रूप मे बाहर प्रकट नही होने देती थी । वह मजुला के साथ पहले जैसे स्नेह भाव से ही रह रही थी । लेकिन इस बार सेठानी ने पक्का निश्चय कर लिया था कि सेठ अपना काफिला लेकर लौटें उससे पहले-पहले वह मजुला को ठिकाने लगा देगी । उसके मन मे प्रतिशोध की चिनगारी धीरे-धीरे जलती हुई ज्वाला बनती जा रही थी । वह इस खयाल मे थी कि कोई ऐसा षडयत्र रचा जाय जिससे मजुला को एहसास तक न हो कि उसके साथ क्या घटित हो गया है ?

कुटिल व्यक्ति हमेशा बडा चौकन्ना रहता है कि वह अपने बुरे इरादे को पूरा करने के किसी मौके को चूक न जाय । सेठानी भी पूरी तरह से सावधान थी । तभी उसे जानकारी मिली कि पास के शहर की एक वैश्या उसके गाव आयी हुई है और गाव के बाहर ठहरी हुई है । उसके मन मे तत्काल कल्पना जागी कि क्यो न वह उस वैश्या से मिलकर मजुला को उसके चगुल में फसा दे ? मजुला जैसी सुन्दर स्त्री को पाकर वैश्या का धधा चमक उठेगा और इस कारण वह वैश्या से मजुला को देने के बदले मे अच्छी धनराशि भी प्राप्त कर सकती है ।

किसी और काम का बहाना करके सेठानी उस वैश्या के पास पहुची । वैश्या घबरा कर असमजस मे घिर गई कि एक सभ्रात महिला उसके पास किस कारण से आयी है, क्योकि उसने कभी किसी सभ्रात महिला से भेंट नही की थी । उसने सेठानी को आदरपूर्वक बिठाया और पूछा—

"आपका इस नगण्य महिला के यहाँ कैसे पधारना हुआ है ?"

"वैसे ही आ गई थी । मैंने सोचा कि आप इतनी सुन्दर और इतनी चतुर हैं तो क्या आपने ऐसी ही अपनी उत्तराधिकारणी भी खोज ली है ?"

"मैं आपके कहने का मतलब समझी नही ।"

'मेरे कहने का मतलब यह है कि यदि आपकी ऐसी कोई उत्तराधिकारिणी नही हो तो मेरे ध्यान मे एक ऐसी ही स्त्री है जो आपके धधे को चमका सकती है ।"

यह सुनकर वैश्या को बडा ताज्जुब हुआ कि सामने बैठी हुई स्त्री सेठानी है या दलालन ? जरूर इसके कहने मे कोई रहस्य भरी बात है फिर भी उसके लिए अगर लाभकारी बात है तो वह बात क्यो न करे ? उसने सेठानी से कहा—

"अगर आपके ध्यान मे ऐसी कोई स्त्री हो तो मुझे जरूर दिखाइये और अगर वह मुझे पसद आ गयी तो मैं उसे खरीद लूगी ।"

उस समय सेठानी की नज़र खिडकी से बाहर गई तो उसने देखा कि कुछ दूरी मजुला जा रही थी—शायद निवृत्ति हेतु आई होगी । ठीक मौका देखकर उसने इशा वैश्या को मजुला की तरफ देखने को कहा और बताया—"यही वह स्त्री है जिसके मैं बात कर रही हूँ ।"

मजुला यह समझकर कि भाभी की मौसी आई है खातिरदारी के काम मे उत्साह-पूर्वक जुट गयी। मौसीजी को खिला-पिला कर सेठानी ने मजुला को भी अपने पास विठा ली और मौसीजी को उसका परिचय कराने लगी—

"मौसाजी, इसे मेरे पतिदेव धर्म वहन वना कर लाये हैं तव से यह हमारे साथ ही रह रही है। यह ऐसी धर्मपरायणा है कि सारे पास पडौसी इससे वहुत प्रभावित हैं। गुणवती भी ऐसी है जैसी सामान्यतया मिलना मुश्किल है। इसकी मैं जितनी प्रशसा करू उतनी थोडी है। इसके आने से मेरा घर मे मन लगने लगा है वरना पतिदेव जव परदेश चले जाते थे तव विल्कुल सुहाता ही नही था। आप भी वहुत वर्षों वाद आयी हैं, इसका क्या कारण है ?"

"वेटी, क्या करती ? मेरा भी वाहर निकलना वहुत कठिन हो गया है क्योंकि घर मे मैं अकेली रह गयी हूँ और ढलती उम्र मे घर का सारा काम मुझे खुद ही करना पडता है। तुम भाग्यशालिनी हो जो तुम्हें ऐसी सुशील स्त्री मिली है।"

"हाँ मौसीजी आप ठीक कहती हैं। यह वास्तव मे इतनी सुशील है कि मुझे किसी काम को हाथ लगाने ही नही देती। आने के वाद से घर की सारी व्यवस्था भी यही सम्भाल रही है। यह भोली भी इतनी है कि सवको खाना खिलाने के वाद ही स्वय खाती है। सच पूछें तो इसकी सेवा से मुझे वहुत ही सुख मिल रहा है। शायद अपनी पैदा की हुई सतान से भी इतना सुख न मिले।"

सेठानी के मुंह से यह सव सुनते-सुनते मौसीजी अपना माथा ठोकने लगी और गमगीन वनकर आँसू गिराने लगी। चौंकने का नाटक करती हुई सेठानी पूछ वैठी—

"यह क्या मौसीजी, आप इतनी दु खी कैसे हो रही हैं और इस तरह आँसू क्यो वहा रही हैं ? आपके पास धन सम्पत्ति की कोई कमी नही है, फिर आपका मन पीडा से इतना क्यो भर गया है ?"

मौसीजी ने रोते-रोते ही कहना शुरू किया—

"क्या वताऊँ वेटी मुझे घर मे कोई शाति देने वाला नही है। धन सम्पत्ति वहुत है, नौकर-चाकर भी वहुत हैं मगर दिल से सेवा करने वाला कोई नही है। क्योकि मेरे कोई सन्तान नही है। तुम तो अभी कम आयु की हो तथा पतिदेव का सग भी है सो सन्तान भी हो सकती है लेकिन मुझ विधवा को यो ही खटखट कर मरना पडता दीखता है।"

"मौसीजी आप इतना दु ख न करें और मेरे से कोई सेवा वन पडती हो तो मुझे आज्ञा दें। यथासाध्य आपकी सेवा करू गी।"

"वेटी तेरा सुख छीन कर मैं अपना सुख मागू,—यह न तो अच्छा लगेगा और न तुम पसद ही करोगी"—कह कर मौसी कुछ क्षणो के लिए मौन हो गयी।

"फिर भी कहिये तो सही, आप मुझ से क्या मागना चाहती हैं? मैं आपको वह चीज अवश्य दूगी।"

"वेटी कहना सरल है लेकिन करना मुश्किल होता है। जव तुम पूछ ही रही हो तो वता दू कि तुम्हारी इस वहन को मेरे साथ भेज दो, मैं इसे अपनी वेटी वना कर रखूंगी।"

इस बार सेठानी ने जोरो से चौंकने का नाटक किया और घवराती हुई सी वोली—

"मौसी जी, आपने तो मेरे कलेजे पर ही हाथ रख दिया है। आप कोई भी दूसरी चीज माग लीजिये, मैं देते हुए नही हिचकिचाऊँगी लेकिन मौसीजी, इसको आपके साथ भेजने का काम तो मुझसे नही हो सकेगा।"

"वेटी तुमने वार-वार जव मागने के लिए कहा तभी मैंने यह माग रखी है वरना मेरे पास धनसम्पति की तो कमी है नही जो कोई दूसरी चीज तुमसे मैं मागती। हा अगर इसके वदले मे तुम्हें मुझसे कुछ लेना हो तो मैं देने के लिए तैयार हूँ।"

मजुला अव तक चुपचाप वैठी इस सारे वार्तालाप को सुन रही थी। कोई भी सरल व्यक्ति हमेशा सवको सरलता की दृष्टि से ही देखता है। उसने तनिक भी सशय नही किया कि दोनो महिलाएँ जो वातें कर रही हैं उनमे झूठ भी हो सकता है। उसने सोचा कि मेरे लिए तो जैसी भाणेज वैसी मौसी। अगर मेरी वजह से यह वृद्धा मौसी सुखी वन सकती है तो मुझे इसकी सेवा करने मे कोई आपत्ति नही है। कही भी हो उसे तो निरापद आश्रय चाहिये था। फिर भी वह अपनी तरफ से कुछ भी वोली नही।

सेठानी ने ही उत्तर दिया—

"मौसीजी, इसको मेरे पति देव लाये हैं और इस कारण मैं उनकी आज्ञा के विना आपके साथ इसको कैसे भेज दू?"

"वेटी, यह तो नही भेजने का एक वहाना है। जितना पति का अधिकार है उतना ही तुम्हारा भी है वल्कि उनकी अनुपस्थिति मे तो तुम्हारा ही पूरा अधिकार है।" फिर मजुला की तरफ मुड कर सीधा प्रश्न किया—"वोल वेटी, चलोगी मेरे साथ?"

मौसीजी मैं तो चली चलूगी लेकिन भाई साहव के आ जाने के वाद आप मुझे ले जाते तो अच्छा रहता।"

"वाह, भाई सा क्या तुम्हे सगे—सम्वन्धियो के यहा जाने से मना करेंगे? ऐसा ही है तो भाई सा. आवे तो मिलने चली आना और फिर अपना नगर यहाँ से वहुत दूर तो है नही।"

सेठानी ने भी निर्दोष वनते हुए उसकी वात की पुष्टि की—

"वेटी जव, मौसीजी इतना आग्रह कर रही हैं तो इनको नाराज मत करो–इन के साथ चली ही जाओ। तुम्हे वहा कोई कष्ट नही होगा"

मौसी ने भी हाथ नचा कर कहा—

"कष्ट ? कैसी वात करती हो ? मेरे घर मे किस वात की कमी है ? तुम्हे मैं वेटी समान रखूगी।"

अव मजुला क्या वोलती ? मन मे वह दुविधा मे पडी हुई थी कि भाई सा की आज्ञा विना जाना क्या उचित रहेगा ? किन्तु इस समय स्थिति ऐसी पैदा होगयी थी कि वह ना या हा कुछ भी नही कह पा रही थी इसलिए वह मौन ही वैठी रही। दोनो कुटिल महिलाएँ तो मिली हुई थी इसलिए उन्होने इस मौन को मजूरी घोषित कर दी। तव सेठानी ही वोली —

"मौसीजी, जव यह वहन मान गई है तो आप इसको खुशी-खुशी ले जा सकते हैं। आप अपने वहा इसको आराम से रखें और जव इसके भाई सा आ जायेंगे तो मैं इसको लेने के लिए भेजू गी सो इसको मिलने के लिए जरूर भेज देवें।"

फिर तो मौसी जल्दी से मजुला का हाथ पकड कर उठ खडी हुई और चलने को तैयार हो गई। विवश मजुला ने सेठानी के प्रति इतने दिन रखने के लिये आभार प्रकट किया तो सेठानी भी दिखाने को विदाई के दु ख से रो पडी। दूसरे ही दिन सेठानी की मौसी वनाम वैश्या अपने नगर कचनपुर के लिये प्रस्थान कर गयी।

२६

भाग्य की टेढ़ी मेढ़ी कहानियाँ

भाग्य कोई थोपा हुआ विधान नहीं होता, बल्कि स्वय के किए हुए कृत्यो का ही फलाफल होता है। फर्क इतना ही होता है कि क्या कुछ पहले किया था उसकी तो आज जानकारी नही होती किन्तु जो आज भुगतान मे आता है और उसकी जो महसूस होती है, उसी को भाग्य की सज्ञा दे दी जाती है। ऐसा भाग्य जब पुण्य का उदय होता है तो सपाट सडक पर दौडता है और कही कोई कठिनाई दिखाई नही देती, लेकिन जब पाप का उदय सामने आता है तो वही भाग्य ऐसी टेढी मेढी गलियो मे बेतहाशा भटकने लगता है कि कही दीवार से सिर टकराकर खून बह निकला है तो कही नाली मे टाग फसकर अपनी हड्डी तोड बैठता है। श्रीकान्त का भाग्य उस समय ऐसी ही टेढी मेढी गलियो से गुजर रहा था।

जिस समय उसका घोडा ऊबड खाबड जमीन पर चल रहा था, घोडे का पैर एक काल-सर्प पर लग गया—लगते ही वह क्रुद्ध होकर ऊपर उछला तथा श्रीकान्त के पैर से टकरा गया। उस सर्प ने अपने क्रोध की ज्वाला तब उस पैर पर निकाली। उसका दश इतना तीव्र था कि श्रीकान्त जैसा सहनशील युवक भी उस पीडा को बर्दाश्त नहीं कर सका। वह जोर से चीखा और अचेत होकर नीचे गिर पडा।

उसी अवस्था मे श्रीकान्त सारी रात वही पडा रहा। सर्प का जहर चढता रहा जिससे उसका सारा शरीर नीला पड गया। भाग्य की विडम्बना देखिये कि बहुत कष्टपूर्ण खोज के बाद अपनी धर्मपत्नी से मिलन भी हुआ तो वह पति के सकटग्रस्त हो जाने के बावजूद भी उसके साथ नही रह सकी—सेवा करने का तो प्रश्न ही सामने नही आया। परन्तु इसमे न तो पति का दोष है और न पत्नी का ही—या यो कहिये कि जो कुछ भी दोष है उन दोनो के भाग्य-चक्र का ही दोष है।

प्रात.काल की सुनहली किरणे भी श्रीकान्त को जगा नही पाई। उसका विषग्रस्त शरीर वैसा ही निश्चेष्ट पडा रहा।

तभी उधर से सन्यासियो का एक दल गुजरा। उनमे से किसी की दृष्टि श्रीकान्त पर पडी तो वह सबको लेकर वहाँ पँहुचा। उनके गुरु ने श्रीकान्त को भलीभाँति देखा तो उन्हे ज्ञात हो गया कि इस युवक को किसी अति विषैले सर्प ने दश किया है। वे सर्प का विष उतारने मे सिद्धहस्त थे अत शीघ्र ही उन्होने विष झाडने का अपना विधि विधान

आरंभ कर दिया। धीरे-धीरे सर्प का विष जब झड़ने लगा तो श्रीकान्त की चेतना लौटने लगी। उसने शनैः-शनैः अपने नेत्र खोले तो अपने सामने सन्यासियों के दल को देखकर वह आश्चर्यान्वित हो गया। वह टुकुर-टुकुर सन्यासियो के गुरु के चेहरे को देखने लगा, जो अभी भी मंत्रोच्चार करते हुए उसके सर्पदंश के स्थान को झाड रहे थे। युवक को जागृत होते देख गुरु को बडी प्रसन्नता हुई कि उनके ठीक समय पर पँहुच जाने के कारण इसकी जान बच गई है।

श्रीकान्त के मस्तिष्क मे सबसे पहला सवाल यह उठा कि उसकी मंजुला कहाँ है? घोडा भी कही आस पास दिखाई नही दे रहा था। उसके मन मे तरह-तरह की आशंकाएँ उठ रही थी कि क्या मंजुला को ढूढते-ढूँढते जयशेखर के सैनिक ही वापिस तो उठा नही ले गये अथवा क्या किसी अन्य संकट ने मंजुला को दबोच लिया? उसे इस तरह सोच मे पडा हुआ समझकर गुरु ही बोले—

"बच्चा अब फिक्र करने की कोई बात नही है। तुम्हें एक काल-सर्प ने काट लिया था और अगर हम समय पर यहाँ पँहुच कर अपनी मंत्र शक्ति से तुम्हारे विष को झाड न लेते तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित थी, किन्तु अब तुम बच गये। अब थोडी ही देर मे तुम पूर्णतया स्वस्थ भी हो जाओगे।"

"मैं आपका बहुत ही आभारी रहूँगा, योगीराज"—श्रीकान्त ने आभार प्रकट करते हुए कहा किन्तु उसका मन-मस्तिष्क आशंकाओ तथा चिन्ताओ से घिरा हुआ ही रहा।

सन्यासियो के गुरु को श्रीकान्त एक अतीव तेजस्वी युवक लगा और उनकी इच्छा हुई कि वह यदि उनके दल मे सम्मिलित हो जाय तो उन्हे बहुत हर्ष होगा। उन्होंने उस युवक का परिचय पाने की दृष्टि से पूछा—

"युवक तुम कौन हो और यहाँ किस प्रयोजन से पहुचे थे?"

श्रीकान्त उनके प्रश्न का उत्तर देता, उस से पहिले सैनिको का एक दल सामने आकर खडा हो गया और कडकडाती आवाज मे सन्यासियो के गुरु को पूछने लगा—

"ओ बाबा, क्या आपने इधर एक सुन्दर स्त्री को निकलते हुए देखा है?"

बाबा को उनकी अपमान भरी पूछताछ बुरी लगी, इसलिए उन्होने भी कडक कर ही जवाब दिया—

"हमे स्त्री से क्या मतलब? हम तो सन्यासी हैं,। स्त्री की तरफ देखते भी नही। तुम्हे हमे ही स्त्री के बारे मे पूछते हुए शर्म नही लगती?" बाबा के क्रोध से सैनिक घबरा गया और माफी माँगते हुए बोला—"बाबाजी मुझे माफ करें। हम सारी रात सारा जंगल छानते-छानते थक गये हैं। इसी कारण आपके साथ अशिष्टता हो गई तो हम क्षमा चाहते हैं।"

गुरु ने भी तब शान्तिपूर्वक सैनिक से पूछा —

"भाई, तुम किस स्त्री की वात कर रहे हो और वह कहां से क्यो भाग गई थी सो तुम उसे सारी रात जगल मे छानते फिर रहे हो ?"

"क्या वतावें वावाजी, हम चन्द्रनगर के राजा जयशेखर के सैनिक हैं। हमारा राजा दुष्ट इच्छा से मजुला नामकी एक सुन्दर महिला को अपने राजभवन उठा लाया था और उसे अपनी पटरानी वनाना चाहता था। वह महिला सती स्त्री थी—अपनी शील रक्षा पर डटी रही। फिर एक योगीराज आये और वह उनके साथ भाग निकली। हमारा तो पक्का अनुमान है कि वह सती स्त्री किसी पर पुरुष के साथ भाग ही नही सकती थी। अवश्य वह उसका पति ही होगा, जो उसे ढूढते-ढूढते वहाँ पहुँचा होगा राजा के हाथ से चूकि उस का तोता उड गया है इसलिए हम उसके कठोर आदेश से दौडते फिर रहे हैं।"

"भाई, जव तुम्हारी भी उस सती स्त्री के साथ सहानुभूति है तो फिर तुम इतना कठिन प्रयास क्यो कर रहे हो ?"

"महाराज, राजा के कठोर दड का भी तो डर है। राजा भी तो पूरे सैनिक दल के साथ है और दल के कुछ-कुछ सदस्य चारो ओर विखर कर उस स्त्री की तलाश कर रहे हैं।"

"कोई वात नही वच्चा, हम कहते हैं कि तुम्हारा कुछ भी नही विगडेगा और जव वह सती स्त्री है तो भगवान् भी उसकी रक्षा करेगा, वह राजा को वापिस नही मिल सकेगी। लेकिन एक वात मेरी ध्यान मे रख लेना कि राजा के पाप मे खुद को तुम कभी शरीक मत करना। अपना-अपना पाप सवको खुद भुगतना पडता है मगर जो दूसरे के पाप को खुद ढोने की मूर्खता करता है, वह तो पूरी तरह से पाप पक मे डूवता है।"

"आपकी नेक सीख अवश्य ध्यान मे रखेंगे, गुरुदेव।"—इतना कहकर वह सैनिक जाने को मुडा तो वाकी सव सैनिक भी उसके साथ आगे वढ गये।

× × × ×

श्रीकान्त की आखो के आगे अभी-अभी जो दृश्य गुजरा, उससे यह तथ्य तो साफ हो गया कि मजुला जयशेखर के सैनिको के हाथ तो नही लगी है। उसने सोचा कि अगर मेरे नीचे गिर जाने के वाद वह भी नीचे गिर पडी होती तो आस-पास मे इन सन्यासियो को ही अथवा सैनिको को दिखाई पड जाती। इसका मतलव यही निकलता है कि वह घोडे पर से कूद नही सकी अथवा गिरी नही और घोडा उसे उठाये-उठाये ऊवड़-खावड़ मे कही वहुत दूर निकल गया है।

अपने प्रियजन के वारे मे वुरी शंका जल्दी से उभरती है किन्तु अज्ञात परिस्थितियो के वावजूद भी श्रीकान्त के मन मे यह आशका नही उठी कि मजुला इस ससार से ही विदा हो गई हो। उसका मन तव भी आशा से भरा पूरा था। उसके मन मे चोट थी तो यही कि उसको सफलता पूर्वक ढूढ कर साथ ले लेने के वाद भी वह वापिस विछुड गई है। और उसको फिर मे ढूढ निकालने का कठिन कार्य उसके कधो पर आ पडा है। उसकी मनोदशा

पुन वैसी ही हो गई है, जैसी कि पहले पहल श्रीपुर से घर छोड कर निकलते हुए वनी थी।

श्रीकान्त ने मन ही मन निश्चय किया कि अपना पूरा परिचय देने से कोई लाभ नही है लेकिन यदि यह सन्यासियो का दल उसे अपने साथ रखने को राजी हो जाय तो उसे उनके साथ हो जाना चाहिये ताकि ग्राम-ग्राम नगर-नगर उनके साथ घूमते हुए मजुला की और उनके लाडले की खोज निर्बाध रूप से होती रहेगी।

इसलिये जब गुरु ने सैनिको के जाने के बाद श्रीकान्त को अपने पहले वाला प्रश्न दोहराया तो उसने सक्षिप्त सा इतना ही उत्तर दिया—

"गुरु महाराज, मैं तो देश दर्शन की इच्छा रखने वाला घुमन्त प्रवृत्ति का युवक हूँ और इधर-उधर भ्रमण करता रहता हूँ। कल इधर से निकल रहा था और जैसा आपने बताया कि साप ने काट लिया जिससे मैं अचेत हो गया। मुझे तो इतना ही याद है कि मुझे कुछ तीव्र दश हुआ, मैं चीखा और उसके बाद जब आखें खुली तो मैंने जीवन रक्षक के रूप मे आपके दर्शन किये हैं।"

गुरु की जिज्ञासा बढी और उनके मन मे आशा जगी कि यह युवक उनके साथ हो सकता है, अत विवरण जानने की दृष्टि से उन्होंने फिर पूछा—

"तो क्या युवक, तुम्हारे परिवार मे भी कोई नही है और तुम एकाकी ही हो ?"

"हा महाराज, यही समझ लीजिये कि इस समय मैं एकाकी ही हूँ और यदि आप मुझे अपने दल मे सम्मिलित होने की आज्ञा दें तो उसके लिये भी मैं उद्यत हूँ।"

श्रीकान्त के इस कथन से गुरु हर्षित हो उठे क्योकि जो प्रस्ताव वे रखना चाहते थे, मानो उसकी स्वीकृति उस युवक ने अग्रिम रूप मे ही दे दी थी। उन्होने अपना हर्ष प्रकट करते हुऐ कहा —

"युवक, हम तुम्हे अपने दल मे सम्मिलित करके वहुत खुश होगे। तुम एक प्रतिभा, शाली युवक दिखाई देते हो इसलिये हम तुम्हें अपनी विद्या सिखायेंगे और अपनी मत्र शक्ति भी देंगे। हम सर्प वगैरा कई जहरीले जानवरो का जहर झाडने के मत्र जानते हैं —वे भी तुम्हे बतायेंगे ताकि तुम भी हमारी तरह विषग्रस्त लोगो को नया जीवन देकर लोकोपकार कर सको।"

श्रीकान्त ने उठ कर गुरु के चरण छू लिये और गुरु ने उसे छाती से लगाकर स्नेह पूर्वक इस तरह भीचा कि जैसे उसे दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लिया हो।

२७

धोखे से कंचनपुर के कोठे में

कंचनपुर की वह वैश्या अव्वल नम्बर की धूर्त थी । मंजुला जैसा सुन्दर नारी रत्न प्राप्त करके उसको सहेज कर रखने की उसकी बुद्धि अधिक सतर्क हो गई । सेठानी के यहाँ से मजुला को लेकर वह सीधी कचनपुर के लिये रवाना हो गई और काफी रात वीते जब वह अपने कोठे पर पहुँची तो मजुला को तनिक भी भनक नहीं पड़ने दी कि वह किमी सभ्रान्त महिला का निवास स्थान न होकर किसी वैश्या का कोठा है। वह मजुला को मकान के भीतरी कक्षो या दालानो मे न ले जाकर नाल से सीधी ऊपर की तीसरी मजिल मे ले गई और वही पर एक एकान्त कमरे मे उसने मजुला को ठहरा दिया ।

दासियो को बुलाकर उसने उस कमरे मे सादगी से सारे सामान को व्यवस्थित करवाया तथा मजुला को सम्बोधित करके उसने कहा—

"वेटी, यहाँ तुम्हारी वृत्तियो के अनुरूप सारी व्यवस्था सादगीपूर्ण है। तुम यहाँ निश्चिन्त होकर विश्राम करो। यहाँ तुम्हारी धार्मिक साधना के लिये भी एकान्त और शान्ति है। किसी भी चीज की जरूरत हो तो इस दासी को वता देना, यह तत्काल ले आयगी। तुम किसी भी तरह से कष्ट मत देखना।"

"मजुला ने यह सब आश्चर्य के साथ सुना और वाद मे आश्चर्य के साथ ही पूछा—

"माता जी, आप मुझे यहाँ पर अपनी सेवा कराने के लिये लाये हैं, तव फिर मुझे एकदम ऊपर अलग-थलग क्यो ठहरा रहे हैं ? मुझे तो आप जहाँ रहते हैं, वही अपने साथ रखिये ताकि हर वक्त मैं आपके सुख का ध्यान रख सकू। यहाँ तो आप उल्टी मेरी सेवा का सारा प्रवध कर रही है—यह मुझे समझ मे नही आ रहा है।"

"अरी मजुले ! मैं तो तुम्हें अपनी सेवा करवाने के लिये ही लाई हूँ—इसमे कोई सन्देह थोडे ही है। मगर अभी तुम वाहर से आई हो सो अपनी थकान मिटालो, स्वस्थ हो जाओ फिर जव तुम्हारा दिल जम जायगा तव जिन्दगी भर मेरी सेवा ही तो तुम्हे करनी है।" —उस वैश्या ने वडा ममत्व छाटते हुए मजुला की पीठ थपथपाई ।

मजुला आश्वस्त होकर वोली—"ठीक है माताजी, जैसी आप आज्ञा दें, लेकिन आप यह मानकर चलें कि मैं सारा काम अपने ही हाथ से करना और वृद्धो की सेवा सुश्रूषा करना पसन्द करती हूँ, न कि रानी की तरह वैठकर दासियो पर हुकुम चलाना।"

"तुम चिन्ता न करो, मैं तुम्हारी वृत्ति को पूरी तरह समझ गई हूँ। तुम तो प्रसन्न रहो, जैसा तुम पसन्द करोगी, वैसा ही किया जायगा।"

इस प्रकार विश्वास दिलाकर वह वैश्या नीचे उतर गई और मजुला के कमरे के बाहर नियुक्त दासी को भी अपने साथ नीचे ले गई। वहाँ उसे एकान्त मे ले जाकर धीरे-धीरे समझाने लगी—

"अरी नन्दू, यह मैं नया माल लेकर आई हूँ। बहुत बडी कीमत चुका कर लाई हूँ—पूरे पचास हजार। एक मुश्त रकम सेठानी को पकडाई है। इस कारण सारा काम बहुत सावचेती से जमाना है। नया खूबसूरत पछी हाथ लगा है सो जरा सी भूल से कही फड फडाकर उड गया तो पछताते रह जायेंगे और उसका मन मनाकर अगर धधे मे जमा दिया तो लाखों की कमाई कर लेंगे। .... देख, तुझे सारा मामला समझा दू। मैं इस को इसकी सम्बन्धी बनकर अपनी सेवा कराने का झासा देकर लाई हूँ। यह बहुत ही सच्चरित्र तथा सद्‌गुणी है इसलिये आसानी से अपने धधे मे घुसेगी नही, इस वास्ते धीरे-धीरे चक्कर देकर इसको चक्कर मे फासना पडेगा।' ......' फिलहाल तो तू ऊपर ही ठहर कर उसकी बराबर निगाह रखना कि वह यह घर वैश्या का कोठा है—ऐसा न जान पाए और दूसरे वह चोरी छिपे इस मकान से निकल कर न चली जाए। बाकी इन्तजाम मैं ध्यान मे रख लूगी।"

वैश्या ने दासी को सारी भलावण देकर वापिस ऊपर भेज दी।

मजुला को अभी तक रच मात्र भी सन्देह नही हुआ था कि वह कचनपुर मे एक वैश्या के कोठे मे धोखे से ले आई गई है। सोने से पहले उसने प्रार्थना की तथा महामत्र का जाप किया। फिर सोते-सोते वह तरह-तरह के विचारों मे खो गई—ऐसे विचार जिनसे वह पिछले कई वर्षों से घिरी रहती आई थी। पतिदेव को क्या हुआ होगा ? अब वे फिर से कहाँ-कहाँ भटकने लगे होगे ? (क्योकि उसके मन मे यह कुविचार कभी नही आया कि वे इस ससार मे न रहे होगे) अब फिर उनका मिलन कहाँ, कब और किस तरह हो सकेगा ? अब तो उसका लाडला भी यौवन की देहरी पर चढ चुका होगा— क्या वह भी अपनी माँ से कभी मिलेगा ? एक बार बिछुडे हुए सभी मिल जाय तो एक सासारिक कर्त्तव्य की पूर्ति हो जाय।

तभी उसकी विचारधारा ने मोड लिया। यह सासारिकता तो क्षणिक है। शाश्वत है अपनी ही आत्मा—अपनी ही चेतना, जो कभी मूर्छा-ग्रस्त नही होनी चाहिये। धर्म साधना द्वारा यदि इसे सतत जागृत रखी जा सके तो वैसा प्राणी कभी भी आत्म विस्मृत नही बनता है और उस प्रकार की जागृत अवस्था मे अपने सासारिक कर्त्तव्यो का निर्वाह भी समभाव के साथ कर सकता है। आध्यात्मिकता प्रधान है और भौतिकता गौण, फिर भी ससार मे रहते हुए दोनो का सुन्दर तालमेल बैठाये रखना चाहिये।

मजुला की विचारधारा की एक विशेपता थी कि वह चाहे जैसे विचारो के प्रवाह मे वहती रहती, किन्तु मारे प्रवाह का उपसहार सदा अपनी आत्मा को केन्द्र मे रखकर ही किया करती थी। और यही एक जागृत आत्मा का सुलक्षण होता है। ऐसी आत्मा कैसी विकट परिस्थितियो मे कभी अधेरे मे भटकती नही है। अपनी ही आत्मशक्ति का प्रकाश उसे सदा मार्ग दिखाता रहता है। यही कारण था कि वह परिस्थितियो के अधेरे मे भी प्रकाश की रेखाएँ देखती रहती थी और अपनी विचाराधारा को विवेकशील वनाये रखती थी।

विचारो मे गोते लगाती हुई थकी मादी मजुला जल्दी ही नीद मे खो गई।

वडे सवेरे जव हमेशा की तरह जगी तो वहाँ उसे वडी शान्ति महसूस हुई। वह अपनी साधना मे वैठी और ध्यानस्थ हुई तव भी उसे न तो कोई वाधा महसूस हुई और न ही किसी प्रकार की अशान्ति। तब तक भी उसे उस स्थान के वारे मे कोई शका उत्पन्न नही हुई थी।

मजुला ने कई वार आग्रह किया कि उसे गृहस्थी के सारे कामो मे भाग लेने दिया जाय और जिस उद्देश्य से उसे यहाँ लाया गया है, उसे पूरा होने दिया जाय, किन्तु जव उसकी वात नही मानी गई तो उसने भी सन्तोष कर लिया कि ऊपर की मजिल मे उसकी धर्म साधना तो शान्तिपूर्वक चल रही है।

उस वैश्या ने सारा प्रवन्ध इतनी कुशलता से किया था कि कई दिनो तक मजुला को वहाँ की कोई खवर नही लगने दी। नन्दू दासी ने मजुला को वरावर भरमाए रखा। इस वीच वैश्या ने अपनी दूतियो द्वारा नगर के वडे-छोटे रसिको तक तरकीव-तरकीव से यह खवर पहुँचा दी कि वह ऐसी अद्भुत सुन्दरी अपने यहाँ लाई है जिसके रूप लावण्य को देखकर अच्छे से अच्छा स्वरूपवान् युवक भी मुग्ध हो जायगा। वैश्या ने योजना वनाई थी कि पहले ऊँचा मोल देने वाले ग्राहको को तैयार कर लिया जाय, फिर सर्वप्रथम किसी ऐसे मनोहारी नवयुवक को धूर्ततापूर्ण तरीके से मजुला के पास भेजा जाय कि कुछ युवक उसको फुसलावे और कुछ वह खुद फिसले और इस तरह उसके लाभकारी कार्य की शुरूआत हो जाय। उसके ध्यान मे एक ऐसा नवयुवक था भी सही और उसने परोक्ष रूप से उसको ऐसी रूपसी के सम्वन्ध मे सन्देश पहुँचा भी दिया था। अव तो वह घटना चक्र के सफलतापूर्वक गुजरने की इन्तजार मे थी।

× × × ×

त्‌··त्‌· थै· ··या ·········

छुम्‌ ·· ······छनन · ·······छुम्‌······· · ·· ·छनन· ······ ······

आज अचानक ही वैश्या का कोठा तवलो की थाप और घुँघरुओ की आवाज से गूज उठा। साजिन्दे साज वजा रहे थे, युवतियाँ एक से ताल और लय पर नाच रही थी तथा वह वृद्धा वैश्या सज धज कर घमड से अपने ऊँचे आसन पर वैठी हुई थी। वह मन ही मन घमड से भरी हुई थी कि अव उसका मान दूसरी सभी वैश्याओ से ऊपर है

क्योकि अब उसके पास ऐसी वहुमूल्य सम्पत्ति है जिसका कही भी कोई जोड मिलना मुश्किल है ।

काफी अर्से वाद महफिल जमाई गई थी और चूकि इस अर्से मे वेश्या ने अपनी नई उपलब्धि की जानकारी अपने रसिक ग्राहको को करा दी थी इसलिये महफिल जमते ही उन लोगो का आना भी शुरू हो गया था । लोग आते-जाते, कोठे की मालकिन को आदाव वजाते और दूध सी धुली चादरो से ढके गद्दो पर बैठ जाते । वह भी वडे गरूर से एक-एक ग्राहक से वतियाती और सैन ही सैन मे आगे का नक्शा समझाती ।

नाच का एक दौर खत्म हुआ तो एक रसिक ने पूछ ही लिया—"क्या आप अपनी रूपसी को दिखायेंगी भी नही ?"

"वाह-वाह, दिखाई क्या मुफ्त में होगी । अभी जरा सब्र रखो—दिखाई भी होगी, मिलाई भी होगी, मगर वक्त को आने दो । तव तक अपनी थैलियो को मुद्राओ से पूरी भर लो"—मालकिन ने हाथ घुमाते और आखें नचाते हुए कहा ।

"तुम मुद्राओ की चिन्ता न करो, काकी, हम तुम्हारी झोली ही नही, तुम्हारा सारा कोठा मुद्राओ से भर देंगे, मगर उस रूप के एक वार दर्शन तो करा दो ... ." और कई ग्राहको ने एक साथ अपना ऐसा आग्रह प्रकट किया । वह सुनती रही और मन ही मन मटकती रही कि उसकी गरज करने वाले कई रसिये आयेंगे, अव उसे इन लोगो की परवाह थोडे ही है । और इन्तजार जितनी लम्बी कराई जायगी, मुद्राएँ भी उतनी ही ज्यादा निकलवाई जा सकेंगी ।

वडी देर रात तक महफिल चलती रही । नाच गानो और कहकहो की आवाज उस कोठे मे गूजती रही ।

× × × ×

और आश्चर्य मे डूवती हुई मजुला इन सारी आवाजो को सुनकर सोचती रही और गहरे आश्चर्य मे डूवती रही ।

उसके सामने सारा घटना चक्र काच की तरह साफ हो गया था कि सुशील सेठ की अनुपस्थिति मे सेठानी ने यह षडयन्त्र रचा था और उसे धोखे से इस वेश्या से मौसी का नाटक करवा कर वेच दिया था । वह जो समझ रही थी कि उसका समय किसी गृहस्थिन के निवास स्थान मे शान्ति से वीत रहा है—वह एक भ्रम था । वही भ्रम अव खतरे का वहुत वडा प्रश्नचिह्न वनकर उसके सामने लटक गया था ।

मजुला को इस तथ्य का विशेप खेद महसूस हुआ कि जहाँ सुशील सेठ जैसे स्वरूप-वान् पुरुप ने अपनी कामनाओ को सयम मे वाँधकर उसे अपनी वहिन वनाकर घर मे स्नेहपूर्वक आश्रय दिया, वहीं उसकी धर्मपत्नी नारी होकर भी एक नारी की वेदना को नही समझ सकी और व्यर्थ की ईर्ष्या मे जलकर इतना कडा प्रतिशोध ले वैठी । नारी

जाति की क्या यह क्षुद्र मनोवृत्ति नही है ? पुरुष के अत्याचार से नारी, नारी को न बचा सके—यह तो दूसरी बात है, और नारी के प्रति पुरुष की सच्ची सहानुभूति एव सच्चे सहयोग को भी नारी ही सहन न कर सके—वह भी ठीक, लेकिन नारी ही किसी दुखिया परन्तु धर्मपरायणा एव शीलवती नारी के जीवन से घिनौना खेल-खेलले—उसे कितना जघन्य कहा जायगा ?

वह अपने विचारो की धुन मे ही अचानक चौकी कि अब तो नगा तथ्य सामने है। यह वेश्या पहले उसे फुसलाना चाहेगी और फिर जोरजबरदस्ती करने से भी बाज नहीं आयेगी। वह कामान्धो की भीड के बीच मे फसा दी जायगी। क्या होगा उसका ? कैसे करेगी इन भेडियो का वह अकेली मुकाबला ? एक कामान्ध से ही इतनी कठिनाई से वह छुटकारा पा सकी है तो अब उसकी समस्या कितनी जटिल है ? और फिर अब श्रीकान्त का सम्बल भी कहाँ है ? किसी का सम्बल नही। काश, उसके लाल का ही पता लग गया होता तो वह भी अब पूरा युवक बन चुका होगा और उसकी सुरक्षा करने का सामर्थ्य पा चुका होगा। किन्तु कहाँ हैं वे ? कहाँ है वह ? और कहाँ होगा उनका लाल ?

२८
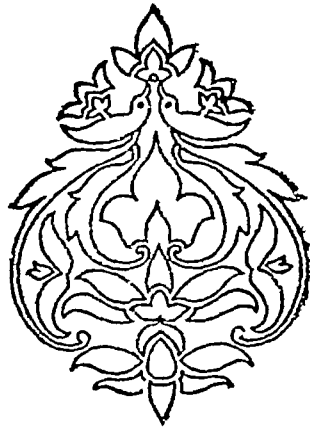
एक तरुण और मंजुला आमने-सामने

यह मनुष्य तन दुर्लभ माना गया है, क्योकि यह तन इतनी समर्थताओ एव योग्यताओ से भरा पूरा होता है कि जिनके वल से आत्मा की सर्वोच्च उन्नति साधी जा सकती है। किन्तु कोई इसी शक्तिशाली तन का दुरुपयोग करने पर उतारू हो जाय तो वह पतन की गहराइयो तक गिरता हुआ चला जा सकता है। इस तन से इस दृष्टिकोण के अनुसार मनुष्य चाहे तो पुण्यानुवधी पुण्य उपार्जित कर सकता है और अपने हाथो अपना दुर्भाग्य रचे तो पापानुवधी पाप के दलदल मे फस सकता है। कचनपुर की वह वेश्या अपने जीवन को तो नर्कमय वना ही चुकी थी किन्तु दूसरी भोली-भाली नवयुवतियो के जीवन को भी पाप पक मे डूवो रही थी। उसकी नीचता की ताजा शिकार मजुला वन गई थी।

जव मंजुला इन सव आशकाओ के वारे मे सोचते-सोचते थक गई तो अपने पलग पर गिर कर रोने लगी।

"मजुला वाई, अव तो तुम समझ गई होगी कि तुम किस ठिकाने पहुँची हो, इसलिए यह रोना-धोना वंद करो और अपने मन को नये काम-काज के लिए तैयार कर लो। अभी तक तुमने अपने जीवन मे कठिन दुखो के अलावा देखा ही क्या है ? यहाँ जव तरह-तरह के सम्पन्न और सुन्दर मनचले नौजवानो से मिलोगी और वे जव तुम्हे अपनी हथेलियो पर उठाये-उठाये फिरेंगे तव उस आनन्द का क्या कहना ? एक वार वस अपने निश्चय को वना लो।"

इतना सुनते ही मजुला तो विफर कर खडी हो गयी और गरजती हुई सी वोली—

"तुम्हें शर्म नही आ रही है कि तुमने एक तो मेरे साथ धोखा किया और दूसरे मुझे दुराचार मे डूवने की निर्लज्ज वात कह रही हो। एक नारी होकर भी नारी के अन्त करण को समझने की चेष्टा नही करती हो। .... लेकिन मैं भूल रही हूँ कि तुम तो एक वेश्या हो। जव सुशील सेठ की सेठानी जैसी नारी ही नारीत्व को नही समझ पायी तो भला तुम क्या समझोगी ? लेकिन मैं तुमको सावधान कर देना चाहती

हूँ कि अगर तुमने मेरे साथ कोई कुचेष्टा करने की कोशिश की तो उसका परिणाम भयकर होगा ।"

वह वैश्या मजुला के उस सिहनी जैसे रूप को देखकर काप उठी । वह अच्छी तरह से समझ गई कि यह वैसी स्त्री नही है जिसके साथ जोर-जबरदस्ती की जा सकेगी । इसके सामने तो ऐसे-ऐसे आकर्षक प्रलोभनो का ही जाल बिछा देना होगा ताकि यह मन मरजी से ही उसमे फस जाय । यह सोचकर वह एकदम ठडी हो गयी और ठडी आवाज मे ही मजुला से बोली—

"बाईजी, आप गुस्सा मत करो । मैं आपकी मरजी के खिलाफ कोई जबरदस्ती नही करूगी । आपका मन मानें तभी मुझे कृतार्थ करना । तब तक आप चैन से यहाँ अब तक जिस तरह की शाति से रह रही हो उसी तरह से रहो और किसी तरह का अन्यथा विचार मत करो ।" इस तरह की चिकनी चुपडी बातें करके वह उस समय मजुला के मन का गुस्सा दूर कर गई ।

मजुला भले थोडी सी आश्वस्त हो गई हो किन्तु इतना वह भली-भाति समझ गई कि अब यहा पर धर्म ही एकमात्र शरण है—सहारा है ।

"काकी, ओ काकी, देखो, तुमने सकेत कराया और मैं तुरन्त आ गया हूँ ।"

एक ओजस्वी तरुण धडधडाता हुआ उस वैश्या के कोठे मे अन्दर तक घुस आया था । उसकी मुखाकृति अत्यन्त स्वरूपवान और भव्य थी । उसके रोम-रोम से यौवन की चपलता और बिजली की सी शक्ति फूटी पड रही थी । कोई भी उसको देखते ही उस पर मुग्ध होकर अपना सर्वस्व निछावर कर देने को उद्यत हो सकता था ।

उस तरुण को देखते ही वैश्या का मन मयूर नाच उठा । अगर मजुला अपने को एक दुर्लभ नारी रत्न मानती है तो यह तरुण भी अपनी दुर्लभता मे उससे किसी कदर कम नही है । उसे अपनी भूल महसूस हुई कि बिना कुछ जोड की चीज बताए ही वह खाली हाथ मजुला को मनाने चली गई । किसी के मन को मोडना है तो उसको मोडने काबिल चीज भी तो सामने दिखानी चाहिये । उसके मन मे आशा की जोत जल उठी कि जब वह इस तरुण और मजुला को आमने-सामने कर देगी तो फिर क्या मजुला का मन बहक जाने से रुक सकेगा ? मजला चाहे कितनी ही धर्मपरायणा या शीलवती हो किन्तु है तो एक नारी ही ? नारी हैं तो उसका नारीतन है, उसकी जवानी है, उसका रूप है तो उसकी वासना भी उसमे जरूर होगी । उसकी उस वासना को उत्तेजित करने वाला इससे बढकर अछूता तरुण और कहाँ मिलेगा ?

अपने दिल को खुशियो की बौछार मे नहलाते हुए वह वैश्या आगे बढ आयी और उसने उस तरुण का भावभीना स्वागत किया । एक ऊँचे आसन पर उसे बिठा कर वह शिष्टता के साथ बोली—

"आज्ञा दीजिये युवक महाशय, मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ ?"

"सेवा की कोई बात नही है। मुझे एक हीरे की जरूरत है और तुमने संकेत कराया है कि तुम्हारे यहाँ एक हीरा आया है तो उसे देखने, परखने एवम् लेने के लिये चला आया हूँ। शायद तुम्हे तो मालूम नही होगा कि मैं अभी तक ब्रह्मचारी हूँ अत योग्य जोडी हो तो मैं उसे अपनी जीवन संगिनी बनाना चाहता हूँ।"

"बाबू, आपका विचार बहुत सुन्दर है और यह भी सही है कि आपके लायक हीरा अभी मेरे पास आया हुआ है लेकिन हीरा दिखाने की कीमत देनी पडेगी।"

"काकी, तुमने यह चिंता क्यो की कि मैं कीमत नहीं दूंगा ? दिखाने की भी कीमत लो और पसंद आ गया तो हीरे की भी पूरी-पूरी कीमत दूंगा।" यह कह कर उस तरुण ने एक हजार मुद्राओ की थैली उस वेश्या के हाथो मे थमा दी।

"तरुण, मैं तो यो ही विनोद कर रही थी, लेकिन हीरा मेरी परख का है और तुम्हारे योग्य है। एक बात जरूर है कि हीरा बडा अमूल्य है और उसे तराश कर तैयार करने मे तुम्हें अपनी पूरी चतुराई का प्रयोग करना पडेगा। कही जरा सी भी भूल कर बैठे तो ध्यान रख लेना कि हीरा हाथ मे नही आयेगा।"

"इस बारे मे तुम निश्चिंत रहो काकी, अब मैं तरुण हुआ हूँ तो मेरे विवाहित दोस्तो ने तरुणाई की सारी कलाएँ भी सिखला दी हैं। मैं तुम्हारे हीरे को अवश्य वश मे कर लूंगा।"

"लेकिन यह तो बता दो कि उस हीरे की मुझे कितनी कीमत दे पाओगे ?"

"यह तो तुम्ही बताओ कि तुम मुझसे कितनी कीमत लेना चाहोगी ?"

"मैं बता दूं कि मैंने उसकी पचास हजार मुद्राएँ दी हैं तो मुझे उसका भरपूर लाभ तो मिलना ही चाहिये। हाँ, एक सुझाव मैं आपको देना चाहती हूँ कि आप शादी के चक्कर मे क्यो पड रहे हो। हमेशा मेरे यहाँ ही आ जाया करो और उसके साथ अपने मन को बहला लिया करो। तब आप प्रतिदिन की एक हजार मुद्राएँ देते रहोगे तो भी मेरा काम चल जायगा।"

वेश्या की यह बात सुनकर तरुण ने अपने मन मे सोचा कि इसको अपने हीरे पर ज्यादा लोभ आ गया है, इसलिए पहले एक बार हीरे को देख लेना ठीक रहेगा ताकि पसंद आ गया तो इसको मुँहमांगी कीमत भी दे दी जायगी। प्रकट रूप मे उसने वेश्या से कहा "काकी, हीरे की कीमत मैं मुँहमांगी दे दूंगा मगर जो गलत बात तुमने मुँह से निकाली है उसे वापिस मत निकालना। मैं एक सच्चरित्र तरुण हूँ, कोई दुराचारी नही। हीरे को हीरा समझ कर अपने माथे चढाने के लिए लेना चाहता हूँ, मैं कंकर लेने के लिए नही आया हूँ। इसलिए मेरे से सोचसमझ कर ही बात करो।"

"मुझे माफ कर देना बाबू, मैं तुम्हें सही नही समझी थी। जैसे तुम हो वैसा ही हीरा भी है, इसलिए मैं मोल पूरा ही लूंगी और वह मोल होगा पाँच लाख मुद्राएँ।"

"चिंता न करो अगर हीरा पसद आ गया तो पाँच लाख मुद्राएँ भी दूगा । अब तुम मुझे हीरे से भेंट करवा दो ।"

वैश्या तब उस तरुण के समीप आकर कान मे फुसफुसा कर बोली—"इस सामने वाली नाल से चढकर आप सीधे तीसरी मजिल पर चढ जाओ और वहाँ दाहिने हाथ पर एक कक्ष है उसमे प्रवेश कर जाना । भीतर आपको हीरा दिखाई दे जायगा ।"

× × × ×

प्रकृति के राज्य मे पूर्ण अनुशासन होता है। जो विधान और नियम होते हैं उनका सर्वत्र यथावत पालन होता है । विभिन्न ऋतुएँ यथासमय आती हैं और अपना एकसा असर दिखाती हैं । उनके जलवायु का जैसा शरीर और मन पर असर पडना चाहिये वैसा ही असर हमेशा पडता हुआ दिखाई देता है । छोटे वडे सभी जीव-जन्तु प्रकृति के नियमो का बराबर पालन करते हैं । वे चाहकर भी कभी उनकी अवहेलना नही करते । प्रकृति के साम्राज्य मे अगर कोई अनुशासन तोडता है तो वह मनुष्य ही होता है । उसे अपनी बुद्धि का गुमान होता है और इस कारण वह प्राकृतिक नियमो के प्रति वेपरवाही का रुख अपना लेता है । मनुष्य की अपनी उच्छ्रृखलता के बावजूद वह प्रकृति के प्रभाव को मेट नही सकता है । लेकिन जहाँ मनुष्य अपने सहज भाव से चलता है वहा तो प्रकृति का पूरा-पूरा प्रभाव प्रतिबिंबित हो जाता है ।

जब वह तरुण अपनी मस्ती भरी चाल के साथ मजुला के कक्ष मे प्रविष्ठ हुआ और ज्यो ही दोनो आमने-सामने हुए कि दोनो के नेत्र मिल गये । दोनो एक दूसरे को देखने क्या लगे कि देखते ही रहे । कोई भी अपनी दृष्टि दूसरे पर से हटाने की मनोदशा मे नही था ।

मजुला उस तरुण को देखते हुए अपने जीवन का अनिर्वचनीय आनन्द अनुभव कर रही थी उसे अनुभूति होने लगी कि यह युवक तो ऐसा लग रहा है जैसे हूबहू उसके पतिदेव की प्रतिमूर्ति हो । फिर भी क्या कहा जा सकता है ? एक ही आकृति के इस ससार मे कई पुरुष हो सकते हैं । किन्तु मैं जहाँ किसी पर-पुरुष की तरफ दृष्टि तक उठाना नही चाहती हूँ वहाँ इसके चेहरे पर से मेरी नजर हटना ही क्यो नहीं चाहती है ? अवश्य ही यह कोई रहस्यपूर्ण स्थिति है । ज्यो-ज्यो मैं इसे देखती जा रही हूँ इसे और ज्यादा देखने की इच्छा जागती जा रही है ।

उधर उस तरुण की मनोदशा भी विचित्र बनी हुई थी । वह जब एकटक मजुला की मुखाकृति को देख रहा था तो उसके हृदय मे किसी तरह का विकार भाव नही जागा बल्कि प्रशान्त भाव पैदा हुआ । वह मजुला को देखता जाता था और उसे अधिकाधिक शान्ति की अनुभूति होती जाती थी । उसे परम आश्चर्य का अनुभव हो रहा था कि वह तो वहाँ अपनी जीवन सगिनी पसद करने आया है लेकिन यह महिला तो मातृमूर्ति जैसी लग रही है । भीतर ही भीतर उसका मन मचलने सा लगा कि वह सामने वाली महिला की गोद मे मुँह ढककर सो जाए ।

यकायक मजुला चौक पडी । यह क्या ? उसके स्तनो मे दूध कहाँ से भर ग्राया है? चुपचाप मन ममता की उछालें क्यो भर रहा है ? क्या सामने खडा यह तरुण मेरा ही लाल तो नही है ? लेकिन एकदम तो यह बात इसे कैसे कह दू ? लेकिन उसे विश्वास हो गया कि असमय ही स्तनो मे दूध का भर जाना ममता के उमडने का ही लक्षण है । और ऐसी ममता मा का ही धन होती है । अपने धन को परख कर पा लेने की साध मजुला के मन मे जोरो से जाग उठी । इसलिए उसने ही वार्तालाप का श्रीगणेश किया—

"तरुण, क्या मैं पूछ सकती हूँ कि तुम कौन हो और यहाँ क्यो आए हो ?"

तरुण ने जरा तल्खी से जवाब दिया—

"क्या आप यह नही जानती हैं कि आप किसी वैश्या के घर मे बैठी हुई हैं और वैश्या के घर मे बैठ कर आपने ये दोनो प्रश्न गलत पूछे हैं ।"

"कोई बात नहीं, गलत समझ कर ही प्रश्नो के उत्तर दे दो क्योंकि जितनी गलत मै यहाँ पर हूँ, उतने ही गलत तुम भी यहाँ पर हो ।"

"हाँ, आपकी यह बात तो सही है । मैं यहाँ के एक बनजारे का पुत्र हूँ और मेरा नाम कुसुमकुमार है । मुझे इस वैश्या ने बताया था कि मेरे विवाह योग्य कोई तरुणी उसके यहाँ पर है इसलिए मै देखने चला आया था । किन्तु मै देख रहा हूँ कि आप तो मेरी माता समान हैं और ऐसा ही श्रद्धा भाव मेरे मन मे इस समय जाग्रत हो रहा है । कैसी हँसी की बात हो गई है मेरे लिए ?"—यह कहते-कहते वह तरुण स्वय भी जोरो से हँस पडा ।

अरे यह क्या ? इधर उस तरुण के मुँह से हँसी फूटी और उधर उसके साथ ही उसके मुँह से एक बेशकीमती लाल भी गिरी । उस लाल रत्न को गिरते हुए देखकर मजुला को निश्चय हो गया कि यह उसी का लाडला लाल है । अब तो वह क्षण भर के लिए भी स्थिर नही रह सकी और आतुरता पूर्वक उस तरुण के गले लग गयी । मा और बेटे का मधुर मिलन हो गया ।

मजुला ने तब अपने भाग्यशाली पुत्र को छाती से लगा कर अपने हृदय की अखूट ममता बरसायी और कहा—

"मेरे कुसुम, तुम मेरे ही फूल हो, किसी बनजारे के बेटे नहीं । तुम्हारा जन्म होते ही तुम मुझसे बिछुड गये थे और शायद है जिसे तुम अपना पिता मानते हो उस बनजारे ने तुम्हारा लालन-पालन किया है । वर्षों से मैं तुम्हे खोज रही हूँ और तुम जब दिखाई दिये तो मेरे स्तनो मे दूध भर आने से मुझे अनुमान हुआ कि तुम मेरे ही पुत्र हो । लेकिन हँसते हुए तुम्हारे मुँह से जब यह लाल रत्न गिरा तब पक्का विश्वास हो गया । तुम्हारे पिताजी को विद्याधर ने पहले ही बता दिया था कि हमारे ऐसा भाग्यशाली पुत्र उत्पन्न होगा जो जब हँसेगा तो उसके मुँह से लाल रत्न गिरा करेगा ।" इतना कहते हुए मजुला ने आदि से अन्त तक सारा विवरण और परिवार का परिचय अपने हृदय के टुकडे को

वता दिया। घण्टो मा और वेटे बातें करते रहे और अपने मन की शाति मे विचरण करते रहे।

कुसुमकुमार का हृदय मा की ममता से ओतप्रोत हो गया था। जिसे इतने वर्षों बाद ममतामयी मा के दर्शन हुए हो, उसका हृदय भला परमानन्द से क्यो न भर उठेगा? किन्तु तभी उसके मस्तक पर चिन्ता की रेखाएँ उभरी और वह अपनी मा से वोला—"मा अव यहाँ से तुम्हारे उद्धार का प्रश्न है। यह वेश्या वहुत धूर्त है किन्तु मैं सारे मामले को ठीक से विठा कर तुम्हे अपने साथ ले जाऊँगा।"

"हाँ वेटे, फिर हम तुम दोनो मिलकर तुम्हारे पिताजी को खोजने निकल पडेंगे। इसलिए मुझे यहाँ से हटाने के काम मे जल्दी ही करना।"

"वस मैं अव जा ही रहा हूँ और अधिक से अधिक एक पहर मे ही वापिस लौटकर आ रहा हूँ माँ, तुम चिन्ता मत करना।" कहकर कुसुमकुमार जल्दी-जल्दी नीचे उतर गया।

वैश्या तो उसकी इन्तजार मे आँखें विछाएँ खडी थी, कुटिल सी हँसी हँसते हुए उसने तरुण से पूछा—

"कहो तरुण, मेरा हीरा तुम्हे पसन्द ही नही आया वल्कि वहुत अधिक भा गया लगता है। तभी तो घण्टो वीत गये हैं और तुमने नीचे उतरने का नाम ही नही लिया।"

तरुण ने वनावटी हँसी हँसते हुए वनावटी ही जवाव दिया—

"हाँ काकी, तुम्हारी परख वडे गजव की है। तुम तो यह वताओ कि हीरे का मोल तुम्हे कव तक दे दू ?"

"कव तक क्या ? अभी लाओ पाँच लाख और ले जाओ अपने हीरे को।"

"तुम्हारे मुँह मे घी-शक्कर काकी। अभी एक प्रहर के भीतर-भीतर मैं मुद्राए लेकर आ रहा हूँ और अपने हीरे को लेकर चला जाऊँगा"—कहता हुआ कुसुमकुमार तेज कदमो से कोठे के वाहर निकल गया।

• • •

२६

नदी की उफनती धारा में कूदना पड़ा

जब कुसुमकुमार चला गया तब उस वेश्या की धारणा ने पलटा खाया। उसने सोचा, इस तरह तो पाँच लाख मे सारा खेल खतम हो जायेगा लेकिन अब अगर मजुला को धधा करने पर ही मजबूर कर दू तो धीरे-धीरे ही सही—कई पाँच लाख प्राप्त कर सकूगी। आखिर जैसा माल है वैसी कीमत चुकाने के लिए रसिक ग्राहक पात बाध कर जो खडे हुए हैं। मुझे तो इस तरुण से जो काम कराना था वह कामयाब हो गया है।

वैश्या ने अपनी धूर्तता पर खुद ही अपनी पीठ ठोकी कि उसने किस चालाकी से मजुला के सतीत्व की धज्जियां उडा दी हैं? जो अपने आप को परम गुणशीला और धर्मपरायणा बताते हुए थकती नही थी, वह अपने शील को एक नौजवान के चरणो मे खो बैठी है। पर-पुरुष का मुहँ तक न देखने वाली भद्र महिला घटो तक उस नौजवान के साथ अठखेलियाँ करती रही। अब जब उसने अपने सतीत्व का मुखौटा उतार कर फेंक ही दिया है तो धधे मे घुसने मे दिक्कत ही क्या है? एक पर पुरुष के साथ सहवास करो या सैंकडो पुरुषो के साथ, उसमे फर्क ही कितना होता है? यही सब सोच कर उस वैश्या ने मजुला के साथ जोर-जबरदस्ती करने की ठान ली। उसका डर इसी कारण दूर हो गया था।

कुसुमकुमार जब एक प्रहर तक भी राशि लेकर नही लौटा तब तो वह वैश्या और भी अधिक निश्चिंत हो गई। अब वह उसके दावे को भी इसी बहाने अमान्य कर देगी। फिर वह अपने मन को रोक नही पायी, धडधड करती ऊपर चढी और सीधी मजुला के कक्ष मे चली गई। वह आखिर धूर्त थी इसलिए उसने धूर्तता से ही बात की—

"वह तरुण जो आया था तुम्हें अपने साथ ले जाने की बात तय करके गया है। क्या तुम उसके साथ जाने के लिए तैयार हो?"

मजुला ने सोचा कि इस धूर्त वैश्या को सही बात बताने से कोई फायदा नहीं है। शायद उसका बेटा इसे सामान्य तौर से इतनी ही बात बता कर गया होगा। चूँकि वह एक प्रहर बाद वापिस आने को कह गया था, उसका यही अभिप्राय रहा होगा कि मुझे वह निश्चित राशि इस वैश्या को चुका कर ले जाने वाला होगा। इस कारण उसने वैश्या की बात का सीधा सा उत्तर दे दिया—

"हाँ मैं उसके साथ जाने को तैयार हूँ। इतना सुनना था कि वैश्या जैसे आग-बबूला हो गई और कठोर शब्दो मे उसे डाटती हुई सी बोली—

"जान गई बाई, मैं तुमको जान गई। बडा सतीत्व का ठेका लगा रखा था और एक नौजवान के साथ ही फिसल पडी। वह तो सुशील सेठ की सेठानी शायद है तुम्हे पहचान गई थी इसीलिए उसने तुम्हें मेरे माथे मड दी। अब जब तुम्हारे चरित्र का राज खुल गया है तो अब मैं तुम्हे बख्शू गी नही।"

मजुला ने भी तुनक कर कहा—

"जब आप पूरी बात जानती नही है तो यह सब बकवास करने की क्या जरूरत है? सीधी सी बात है कि कुसुमकुमार जो बात आपसे तय कर गया हो उसके मुताबिक काम पूरा कर लेना। इससे ज्यादा आपको जबान नही लडानी चाहिये।"

"तू कल की छोकरी, मुझे जबान लडाने की बात कहती है? समझ ले कि कुसुम-कुमार का सौदा खत्म हो गया है। उसने एक पहर के भीतर-भीतर पाँच लाख की राशि लाकर देने का वादा किया था लेकिन पहर बीत गया है और वह अभी तक नही आया है। इसलिए कान खोल कर सुन ले कि अब तुझे मेरे ही कब्जे मे रहना है। जब एक पुरुष के मन को प्रसन्न कर सकी है तो पचासो पुरुषो के मन को आकर्षित करने मे क्या कष्ट है? अब तो मैं तेरे से डटकर धन्धा कराऊगी और लाखो मुद्राएँ कमाऊगी।"

वैश्या का यह कथन सुनकर मजुला को मन मे विश्वास हो गया कि कुसुमकुमार ने असली बात वैश्या को बतायी नही है इसलिए वह यही समझ रही है कि मैंने अपना शील धर्म खण्डित कर दिया है। इसके साथ ही यह विडम्बना भी सामने आ गयी लगती है कि वह राशि प्राप्त करके कहे हुए समय पर नही आ पाया है। किसी भी कारण से वह पाँच लाख की राशि इकट्ठी नही कर सका और यहाँ नही आ सका तो यह धूर्त वैश्या अवश्य ही उसे उसके शीलधर्म के सकट मे पटक देगी। फिर भी जो स्थिति सामने है उसका उसे साहस के साथ ही सामना करना होगा। वह सोचकर उसने वैश्या की बात का दृढता से जवाब दिया—

"खबरदार जो आपने ऐसे अभद्र शब्द फिर अपने मुँह से निकाले। आप अपनी नैतिकता बेच सकती हो, मानवता छोड सकती हो और पैसे के पीछे पागल बनकर दौड सकती हो लेकिन ख्याल रखो, मैं ऐसी स्त्री नही हूँ। उस तरुण के साथ मेरा किस प्रकार का सम्पर्क रहा है इसका भी तुम्हे ज्ञान नही है। अपनी झूठी कल्पनाओ के पीछे जो तुम मेरे बारे मे सोच रही हो वह सब गलत है। तुम्हारी धमकियो से मेरे पर कोई असर नही होने वाला है। मैंने अपने शीलधर्म को सदा अखण्ड रखा है और वह सदा अखण्ड रहेगा।"

मजुला की ओजस्वी आवाज का वैश्या के दिल पर भारी असर हुआ लेकिन वह अपना कमाई के स्रोत को यो आसानी से कैसे छोड दे? वह भी फिर त्यौरियाँ चढा कर बोली—

"मैं अब तुम्हारी लाग लपेट की बातो मे आने वाली नही हूँ। मेरे कोठे पर तुमको मेरी ही आज्ञा मे चलना पडेगा। अगर तुम इस कोठे से भाग जाने का ख्याल करो तो पहले दस बार सोच लेना। मेरा कोठा एक किले की तरह है जिसमे से एक चीटी भी बाहर नही निकल सकती है। अगर तुमने अब भी मेरी आज्ञा नही मानने का दुस्साहस किया तो उसका बहुत बुरा फल भुगतना पडेगा और वह फल इस कदर बुरा हो सकता है कि मैं चार-चार लठैतो को तुम्हारे सग एक साथ बलात्कार करने को कहूँ।"

ऐसी भयकर बात उस दुष्ट औरत के मुहँ से सुनकर मजुला अवाक् रह गयी। वह भय से सिहर उठी कि ऐसी निर्दयी और निर्लज्ज औरत क्या अकृत्य नही कर सकती है? जो औरत शील और सयम का महत्त्व नही समझती, उसमे लज्जा भी नही रह जाती और जहाँ लज्जा नही वहाँ दया भी नही। ऐसी स्थिति मे मजुला ने आगे कुछ भी बोलना उचित नही समझा और अपनी चुप्पी साध ली।

तब वेश्या भी यह कहती हुई—"यह आज की रात तेरी है। भलीभाति सोच लेना वरना कल का सूरज मेरा उगेगा और मैं चाहूगी जैसा बर्ताव तेरे साथ करूगी" और पैर पटकती हुई नीचे चली गयी।

वैश्या मजुला को धमकी देकर चली गई और मजुला भीषण दुविधा मे पड गई। अनायास ही उसे अपने पुत्र का सबल मिला और उसकी मुक्ति की सभावना पैदा हुई लेकिन न जाने क्या हुआ कि वह भी अभी तक लौटकर नही आ सका है। शायद है राशि का प्रबन्ध न हो पाया हो या और कोई कारण हो गया हो और वह अब आ ही न पावे तो उसका क्या होगा?

फिर उसकी विचारधारा ने नया मोड लिया। वह सोचने लगी, जब उसे श्रीपुर के घर से निकाला गया था तब उसके पास किसका सबल था? उस समय भी उसने अपने आत्मबल पर ही विश्वास किया था और आज भी उसे वही करना चाहिये।

लेकिन उसे अभी तक निर्णय लेना है कि उसे क्या करना चाहिये। विकट परिस्थितियो मे वह अपना मार्ग खोजने के लिए समभाव धारण करके ध्यान मे बैठ गई एवम् अपनी अतरात्मा को टटोलने लगी।

उस समय उसके मन मे दो विकल्प आ रहे थे। उन दो विकल्पो के बीच मे एक निर्णय उसे लेना था जैसे न्यायाधीश के सामने दो वकील खडे होते हैं और एक वकील एक बात कहता है तो दूसरा उसके विरोध मे बोलता है। परन्तु न्यायाधीश दोनो की बात सुनकर न्याय करता है—अपना फैसला सुनाता है। इसी तरह मनुष्य के मन मे भी प्रत्येक विचार के दो पहलू उभरते हैं। दोनो पहलू मानो अपने-अपने गुण ही बताते हैं और अपना ही कार्यान्वयन कराना चाहते हैं। इस टकराहट मे यदि मनुष्य की आत्मा जागरूक होती है तो वह न्यायाधीश की तरह दोनो पहलुओ का मनन करके निर्णायक बुद्धि से न्याय कर देती है। जिस मनुष्य की आत्मा जागृत नही होती उसका जीवन मन की इस टकराहट मे उल्टे सीधे थपेडे खाता रहता है। मजुला तो विकसित निर्णायक बुद्धि वाली महिला थी। पहले

उसने परिस्थिति के दोनो पहलुओ को अपने सामने रखा। पहला तो यह कि वह कुसुम-कुमार के हाथो अपना उद्धार किये जाने की प्रतीक्षा करे। दूसरा यह कि अपना शीलधर्म सुरक्षित रखने के लिए अपने प्राणो को न्यौछावर कर दे।

रात गहरी होती जा रही थी और उसके विचारो के अन्धेरो को भी अभी तक प्रकाश नही मिल पाया था। एक प्रहर की जगह तीन प्रहर वीत चुके थे किन्तु कुसुमकुमार का कोई अता पता नही था तव उसकी प्रवुद्ध आत्मा ने निर्णय लिया कि अब और अधिक प्रतीक्षा खतरनाक सिद्ध हो सकती है। प्राण चले जाए—उसकी कोई परवाह नही लेकिन शीलधर्म को तनिक भी आँच नही आनी चाहिये। तव मजुला ने अपना मार्ग निश्चित कर लिया।

× × ×

मजुला उस काली नीरव रात्रि मे अपने कक्ष से वाहर निकली यह जानने के लिए कि क्या वास्तव मे उस कोठे से वाहर निकलने का कोई मार्ग है भी या नही? तव उसने देखा कि कोठे से बाहर निकल पाना तो दूर—उसकी अपनी तीसरी मजिल से नीचे उतरने का नाल का द्वार भी वन्द था। वह छत पर यह देखने के लिए इधर-उधर घूमने लगी कि कही किसी तरह नीचे उतरने का कोई साधन उसे दिखाई दे जाय, पर वह भी उसे नही दीखा।

तव उसने तीसरी मंजिल से ठेठ नीचे झाका। नीचे हमेशा की तरह नदी की उफनती हुई जल धारा वह रही थी। वैश्या का यह कोठा नगर के वाहर नदी के किनारे वना हुआ था। नदी उससे सट कर वह रही थी। मजुला को यही समझ मे आया कि इस नदी की गोद के सिवाय उसका अन्य कोई शरण स्थल नही हो सकता है। उसने निर्णय ले लिया कि वह नदी की उफनती हुई धारा मे कूद कर ही अपने शील धर्म की रक्षा करेगी।

इस निर्णय के वाद मजुला के मन मे उसके जीवन के वच पाने की क्षीण सी आशा ही रह गयी थी। इस कारण उसने अपनी आत्मशुद्धि का विचार किया। अव तक मन, वचन और कर्म से जाने या अनजाने हुए अपने दोषो की उसने आलोचना की और सागारी सथारा किया कि यदि वह मरण को प्राप्त हुई तो उसके लिए सवका त्याग है और यदि जीवित रह गई तो अपने शीलधर्म का अधिक दृढतापूर्वक पालन करेगी। फिर वह प्रभु का नाम स्मरण करती हुई तीसरी मजिल से नीचे वह रही नदी की उफनती जलधारा में कूद पड़ी।

□ □ □

३०

मां यों मिली और यों खो गयी !

वेश्या के कोठे से निकलते ही कुसुमकुमार सीधा अपने घर पहुँचा। उस समय घर, पर उसके वनजारा पिता तो थे परन्तु वनजारिन मा कही इधर-उधर गई हुई थी।

पिता से प्रार्थना सी करते हुए उसने कहा—"पिताजी, मुझे पाँच लाख मुद्राओ की तत्काल आवश्यकता है, आप मुझे इसी वक्त दे दीजिये।"

"एकदम पाँच लाख ? यह किस लिए चाहिये कुसुम ?"

"इस समय पिताजी, कारण मत पूछिये वस यह समझ लीजिये कि आपका वेटा माग रहा है और यह राशि उसे प्यार से सौंप दें।"

"ऐसा कैसे हो सकता है वेटा ? तुम जवान हो और जवानी दीवानी होती है। इतनी वडी राशि अगर मैं तुम्हें यो ही दे दू तो तुम न जाने किस अनीति मे कदम रखदोगे ? जवानी के पागलपन मे तुम्हारे हाथ से कोई भी अनर्थ हो सकता है।"

"आप मुझे वचपन से देख रहे हैं पिताजी, क्या कभी मेरे से कोई छोटा-मोटा भी गलत काम हुआ है ?"

यद्यपि वनजारा जानता था कि जिस दिन से वह जगल मे मिले उस नवजात शिशु को अपने घर मे लाया है, तवसे उसको अपने व्यवसाय मे वरावर लाभ ही होता रहा है। वह यह भी जानता था कि उसका पाला पोषा हुआ यह वेटा इतना सुयोग्य व सच्चरित्र है कि न तो उसने कभी कोई वुरा काम किया है और न कभी अपने माता-पिता की आज्ञा का उल्लघन ही किया है। किन्तु वनजारे को धन पर जरा ज्यादा ही मोह था और एकसाथ पाँच लाख मुद्राएँ उससे निकालती हुई नही वन रही थी। इसलिए झूठा वहाना वनाते हुए उसने कह दिया—

"तुम हठ करते हो तो कुसुम तुम्हे मैं पाँच लाख मुद्राएँ तो दे दूगा किन्तु तुम्हें कारण तो वताना ही पडेगा और फिर अभी तुम्हारी मा भी कही वाहर गई हुई है जिसके आये विना तुम्हे यह राशि मैं दे पाने मे असमर्थ हूँ क्योकि तिजोरी की चावियाँ उसी के पास हैं।"

"तो सोचकर दे देते।"

"मैं सोच नही पाया इसलिये मैंने राशि नही दी।"

"कितने अजीब आदमी हो तुम ? मेरे वेटे को न जाने कितनी सख्त जरूरत होगी उस राशि की ? वडे कजूस जो हो न ? खैर मेरा बेटा कहाँ है इस समय ?"

"वह तो उसी समय मुझसे नाराज होकर अपने कमरे मे घुसा सो अभी तक कमरे मे ही वन्द पडा है लेकिन जाते-जाते वह जो एक शब्द मुझे कह गया, उसका मुझे रात भर से दु:ख हो रहा है।"

"ऐसा क्या शब्द वह तुझको कह गया कि तुम भी रात भर दु खी होते रहे और तुमने रात भर से दु खी हो रहे अपन वेटे को भी नही सम्भाला ?"

"भद्रे, जाते-जाते आखिर मे वह कह गया—'आप कैसे पिता हो या शायद आप मेरे पिता ही नही हो' यह उसने कैसे कहा, मैं समझ नही पाया।"

"इस वात का तो मुझे भी ताज्जुव हो रहा है। क्या उसको कही से असलियत का पता चल गया है ? क्या जिस वेटे को इतने वर्षों से छाती से लगा कर मैंने बडा किया है, वह पराया बन जायगा ?........" कहते-कहते बनजारिन का गला भर आया और वह दौडते हुए अपने वेटे को सम्भालने के लिए चली गई। अव तो वनजारे का भी दिल भर आया और वह भी उसके पीछे-पीछे कुसुम के कमरे की ओर भागा।

बहुत देर तक किवाड खटखटाने के बाद जव कुसुमकुमार ने दरवाजा खोला और कुसुमकुमार के चेहरे पर उसके उन माता-पिता की नजर पडी तो वे सन्न रह गये। एक रात मे ही उन्हे ऐसा लगा कि कुसुम का कुसुम जैसा खिला हुआ मुँह मुरझा कर एकदम म्लान हो गया है। चेहरे के पीलेपन से उन्हें ऐसा लगा कि उनका वेटा रात भर अतीव दु:ख करता रहा है और रोता रहा है। वनजारे को महसूस हुआ कि निश्चित ही उसको पाँच लाख मुद्राओ की कठोर आवश्यकता थी। शायद उस राशि के न मिलने के कारण ही उसके वेटे का एक रात मे ही जैसे सारा खून निचुड गया है।

वनजारिन ने तुरन्त अपने वेटे को अपनी छाती से लगा लिया और उसकी पीठ सहलाते हुए पूछने लगी—

"क्यो वेटे, क्या तुझे पाँच लाख मुद्राओ की तत्काल आवश्यकता है ?"

"हाँ मा, तत्काल आवश्यकता थी। कल शाम को ही यदि पिताजी यह राशि दे देते तो मेरे हाथ से एक वहुत वडा पुण्य कार्य सम्पन्न हो जाता। रात भर मे क्या घटना गुजरी होगी, मैं कह नही सकता। फिर भी यदि पिताजी दे दें तो मैं वह राशि लेकर शीघ्र पता लगाने जाना चाहता हूँ लेकिन मा कल मुझे पता चल गया कि जन्म देने वाले माता-पिता और पालने पोषने वाले माता पिता के प्यार मे कितना अन्तर होता है ? अगर मैं आपका जाइन्दा वेटा होता तो क्या पिताजी मेरी घवराई हुई सूरत देखकर पाँच लाख मुद्राएँ देने मे एक क्षण के लिए भी हिचकिचाहट दिखाते ?"

"यह सव तुमको किसने वता दिया वेटा कि तुम हमारे जाइन्दे वेटे नही हो। हमने तो तुम्हे जन्म देने वाले माता पिता से भी अधिक प्यार देकर पाला पोषा है। यह सही है कि तुम तुम्हारे पिता को जगल मे एकाकी पडे मिले थे और तुम्हारे पिताजी ने तुम्हे वहाँ से लाकर जवसे मुझे सौंपा था, मेरे तुम दिल के टुकडे जैसे ही रहे-हो।" फिर वह अपने पति की ओर मुड कर वोली—"आप मेरे वेटे को पाँच लाख या जितनी मुद्राएँ वह माँगे इसी समय दे दो। हमारी सारी सम्पत्ति इसी के तो पुण्य का फल है।"

वनजारा उसी समय पाँच लाख मुद्राओ की थैली ले आया और उसे कुसुमकुमार को सौंपते हुए कहने लगा—"जव तुम किसी पुण्य कार्य के लिए यह राशि ले जा रहे हो तो मुझे कारण पूछने की जरूरत नही है।"

कुसुमकुमार ने थैली हाथ मे ली और अतीव नम्रतापूर्वक निवेदन किया—"आप दोनो ने मुझे पाल पोष कर इतना वडा किया है उसका मेरे पर अनन्त उपकार है। मुझे कल ही पहली वार अपना जन्म देने वाली मा के दर्शन हुए थे और उसी से वास्तविकता का मुझे ज्ञान हुआ था। इस राशि की भी उस मा को वचाने के लिए ही तुरन्त जरूरत थी। रात भर मे न जाने क्या हुआ होगा किन्तु अव भी मैं जा रहा हूँ और अपना सव प्रयत्न करता हूँ। आवेश मे आकर मेरे मुँह से जो शब्द निकले उनसे आप दोनो के हृदय को क्लेश पहुचा हो तो उसके लिए मैं नम्रतापूर्वक क्षमा चाहता हूँ।" यह कह कर कुसुमकुमार ने भक्तिपूर्वक अपने पालक माता पिता के चरण छुए और धीरे-धीरे मकान से वाहर निकल गया।

× × ×

जव कुसुमकुमार पाँच लाख मुद्राओ की थैली थामे वैश्या के कोठे पर पहुँचा तो वहाँ पर जैसे मुर्दानगी छायी हुई थी। तत्काल वह अनुमान नही लगा सका कि ऐसी क्या घटना घटित हो गई है कि वहाँ किसी तरह की कोई हलचल ही नही है। उसके दिल मे एक खटका सा हुआ लेकिन वह सीधा भीतर चला गया और करीव-करीव चिल्ला कर ही वोला—

"लो काकी, यह तुम्हारी अमानत। लाने मे कुछ देर जरूर हो गयी है लेकिन मुद्राएँ पूरी पाँच लाख हैं।"

काकी अपने आसन पर पत्थर की मूर्ति की तरह वैठी थी सो वैसी ही वैठी रही, कुछ भी नही वोली।

"आज तुमको क्या हो गया है काकी, कि तुम कुछ वोल भी नही रही हो? तुम इजाजत दो तो मैं यह थैली यहाँ पटक कर सीधा ऊपर चला जाऊँ।"

काकी की वोली फूटी तो रोनी सूरत के साथ—

"तरुण, अव ऊपर जाओ या नीचे—पंछी तो फुर्र हो चुका है।"

"क्या कह रही हो तुम काकी, मैं कुछ समझ नही पाया हूँ?"

"यही कि तुम्हारा दिल थामने वाली अव इस कोठे पर नही है।"

"क्या मतलव ? क्या तुमने उसे मार डाली है या कही भगवा दी है ?"

"मैंने तो उसका मूल्य दिया था, मैं उसे भला अपने कोठे से वाहर क्यो जाने देती? रात को मैंने पक्का प्रवन्ध कर लिया था कि वह चाहे तव भी इस कोठे से वाहर न निकल सके। इस कारण मैं निश्चिन्त थी लेकिन सुवह देर तक भी जव उसके कक्ष मे किवाड नही खुले तव नन्दू दासी ने देखा कि किवाड भीतर से नही, वाहर से ही वन्द थे। मैं चौंक उठी कि तव वह कहाँ चली गई ? तव से मैं सोच ही रही हूँ और मुझे कोई सूत्र समझ मे नही आया है कि वह किस मार्ग से कहाँ गई होगी ?"

इतना सुनते ही कुसुमकुमार धाड मार कर रो पडा—"ओ मेरी ममतामयी मा, तुम यो अचानक मिली और यो अचानक खो गई। जीवन मे मैंने तुम्हारा पहला दर्शन पाया, मैंने सोचा कि तुम्हारा यहाँ से उद्धार करके तुम्हारी चरण सेवा करूँगा किन्तु वह सौभाग्य मुझे नही मिला। मैं अब कहाँ जाऊँ ? कहाँ ढूढू मेरी मा ?"

कुसुमकुमार के उस करुण क्रन्दन को सुनकर उस दुष्ट औरत का दिल भी पसीज आया, क्योकि सही तथ्यो की जानकारी उसे इसी क्रन्दन से हुई थी। इस रोशनी मे उसे यह भी समझ मे आ गया कि रात को उसने उस सती को धमकाने की जो धृष्टता की थी उसके फलस्वरूप ही वह यहाँ से गायव हो गयी है। तव उसके मन मे इस वात का भी विश्वास होने लगा कि मजुला को इस कोठे से वाहर निकल जाने के लिए कोई मार्ग नही था और चूकि वह अपने शीलधर्म को अखण्डित रखने हेतु कृत सकल्प थी, उसने ऊपर से वहती नदी मे कूद कर ही अपनी जान दे दी होगी। इस विचार के साथ तो उसके नीचता-पूर्ण हृदय मे भी खेद और शर्म की लहर उठी कि उसकी दुष्ट धमकी के कारण ही यह अत्याचार हुआ है। वह एक बार थरथरा कर काप उठी कि यह एक कुकृत्य ही उसे सीधा नरक मे ले जायगा। फिर उसने कुसुमकुमार की ओर रुख करके दु ख भरे दिल के साथ कहा—

"तरुण, मै वैश्या होकर भी तुम्हारे सामने शर्म से गडी जा रही हूँ। कल शाम तुम्हारे यहाँ से चले जाने के वाद मेरे मन मे कई पाँच लाख कमाने का लोभ पैदा हुआ और मैंने समझा कि जव वह एक पर-पुरुष के साथ रमण कर चुकी है फिर उससे अपना धन्धा ही क्यो न कराऊँ ? इस दुष्ट विचार के साथ मैंने उसको कठोर धमकी भी पिलाई थी और तुम भी रात को नही आ पाये जिस कारण लगता है कि उसने नदी मे कूद कर अपनी जान दे दी है।"

"क्या यह सच हो सकता है काकी ? क्या मेरी मा अब मुझे कभी नही मिलेगी ?...... नही नही, ऐसा कभी नही हो सकता। मेरी मां मुझे अपना पूरा प्यार दिये विना नही मर सकती....... मैं जाऊँगा, धरती के कण-कण मे अपनी मा को खोजूँगा और जव तक नही मिलेगी, खोजता ही रहूगा।" और कुसुमकुमार वहाँ से पागलो की तरह भाग चला।

३१

मां की खोज में एक से दो हो गये

क्या मां की ममता धरती से भी ज्यादा गहरी और आकाश से भी ज्यादा फैली हुई होती है कि मैं अपनी मा के एकमात्र दर्शन से ही इतना विगलित हो रहा हूँ ? वे कितने सद्भाग्यशाली होते होगे जो जन्म से लेकर बडे होने तक अपनी मा की गोदी मे खेलते हैं, अपनी मा का दूध पीकर अपने तन-मन की रचना करते हैं और अपनी मा के प्यार की थपकियो मे मीठी नीद सोते हैं ? मा के दर्शन करके मुझे आशा वन्धी थी कि अव मेरा आगे का जीवन तो मा की छत्रछाया मे ही चलेगा लेकिन प्रकृति को मेरा इतना सा सुख भी न जाने क्यो स्वीकार नही हुआ ?

.... फिर मेरी मा तो कितनी धर्मपरायणा है जो अपने धर्म की रक्षा के लिए वर्षो से कठिन कष्ट भुगतती हुई आ रही है। शायद मेरा जन्म ही उनके कठिन कष्टो का अध्याय वनकर रह गया है। और अव भी मेरा मिलना उसके लिए सार्थक नहीं हो सका।

मेरी मा ने मुझे वताया कि मेरे पिता भी एक भव्य पुरुष हैं किन्तु उनके भी दर्शन मुझे कव हो सकेंगे—भविष्य के गर्भ मे है। फिर मेरा निवास स्थान श्रीपुर, मेरी दादीजी और मेरी बुआजी सभी मुझे कव देखने को मिलेंगे ?

इस समय तो मेरा मन तडप रहा है कि मुझे मेरी मा मिल जाय......... मैं उसे खोजने के लिए निकला हूँ तो खोजकर ही दम लूगा।

कुसुमकुमार चारो तरफ दृष्टि फैलाए नदी के किनारे-किनारे पागलो की तरह भागता हुआ चला जा रहा था। जहाँ कही नदी मे उसे ऐसा कोई चिह्न दिखाई देता कि वह मानव मस्तक हो सकता है, वह नदी मे कूद पडता, गहरे गोते लगाता और निराश होकर फिर वाहर निकल जाता। फिर वह किनारे-किनारे चल पडता। उसकी दृष्टि तो सिर्फ माता की खोज मे लगी हुई थी। उसे न अपने मन की सुधवुध थी और न शरीर की परवाह। मार्ग के ककड, पत्थर और कांटे उसके पैरो को छील रहे थे तो छील रहे थे। पास की झाडियाँ उसके तन-वदन को छेद रही थी तो छेद रही थी। वह तो अविराम चला जा रहा था। उसका सम्पूर्ण ध्यान एक ही उद्देश्य पर केन्द्रित था और वह था मा की खोज।

× × × ×

हकीकत मे कुसुमकुमार धरती के कण-कण मे अपनी मां को खोज रहा था। ग्राम, नगर, जगल—सभी जगह वह दौडा-दौडा फिर रहा था कि कही तो उसकी मा दिखाई दे। कही जरा सी आहट पाता तो वह पता लगाने के लिए दौड पडता किन्तु निराशा ही हाथ लगती। कभी वह सूनी आखो से आसमान को ताकता रहता और घटो तक उसके नेत्र फटे के फटे रह जाते। उसको न दिन को चैन था और न रात को आराम। चल रहा है तो रात के गहरे अधेरे मे भी चलता ही रहता है। वियावान जगल भी उसकी चाल को नही रोक पाते।

मानव जीवन यदि दुर्लभ है तो इस जीवन का केन्द्र भाग यौवन अतीव दुर्लभ होता हैं क्योकि यौवन केवल अवस्था का ही नाम नही होता वल्कि अमित शक्तिपु ज का प्रतीक होता है। इसी आधार पर माना यह जाता है कि यौवन चलता नहीं है, पख लगाकर उडता है। एक सच्चा यौवन किसी भी विन्दु पर अपनी हार नही मानता, वह अपने प्राप्य को लेकर ही शात होता है। कुसुम का यौवन तो दो अव्यवसायी एवम् साहसिक आत्माओ का मिलन स्थल था। श्रीकात और मजुला के आदर्श जीवनो का सार तत्त्व कुसुम के यौवन मे प्रकट हुआ था। फिर भला उसका वह उद्दाम यौवन अपनी ममतामयी मा की खोज के पुण्य कार्य मे कैसे विश्राम लेता?

श्रीकात के परिवार के भाग्य मे ऐसा लगता था कि विधि की विचित्रताएँ भरी पडी हैं। कुसुमकुमार वियावान जगल मे और वह भी रात के अधेरे मे आंखो मे वसी मा की मूरत को देखते-देखते चला जा रहा था अपना भान भूले हुए। अचानक उसका पाव उधर से निकल रहे एक काले साप की ठोडी पर जा गिरा और तभी उस साप ने उसके पैर को डस लिया। सर्पदश के आघात से कुसुमकुमार पीडित होकर उसी तरह गिर पडा जैसे कि उसका पिता श्रीकात भी सर्पदश के कारण अपने घोडे पर से गिर पडा था। एक तेज चीख के वाद ही कुसुम अचेत हो गया, मगर उस जगल मे कौन था जो उसकी चीख को सुनता? जहर से नीला पडता जा रहा उसका शरीर झाडियो की ओट मे वहाँ पडा रहा।

× × × ×

सुख के वाद दु ख और दु ख के वाद सुख मनुष्य के जीवन मे आते ही रहते हैं। उधर कुसुमकुमार को सर्प ने काटा और इधर एक घुमक्कड सन्यासी आ निकला जो गारुडी विद्या का सिद्धहस्त जानकार था। वह जमीन पर पडे उस मानव शरीर को देखते ही पहचान गया कि इस युवक को सर्प ने काटा है। उसने युवक के शरीर की जाँच की और नाडी भी देखी। वेहोशी के वावजूद उसमे जीवन के सभी लक्षण मौजूद थे। जहरीले से जहरीले साप का जहर उतार देना उसके वायें हाथ का खेल था। झट वह सन्यासी आसन जमा कर वही वैठ गया और जहर उतारने के विधि विधान मे लग गया। वह जैसे-जैसे मत्रोच्चार करता रहा, वैसे-वैसे कुसुमकुमार के वेहोश शरीर मे हलचल वढती गई।

गहरी नींद से जैसे जागकर उठा हो, उस तरह कुसुमकुमार ने आँखें खोली तो देखा कि उसके सामने एक सन्यासी बैठा हुआ है। इस समय भी उसे अपनी याद नहीं आयी कि उसके साथ क्या बीती थी। उसकी आँखो मे तो फिर से उभर आयी अपनी मा की ममता भरी मूरत। उसने सोचा कि यह सामने जो सन्यासी बैठे हैं—शायद ये विशिष्ट ज्ञानी हो, तो इन्हे ही क्यो न अपनी मा के बारे मे पूछूं? किन्तु तभी उसके मन ने कहा—बिना जाने हर किसी को अपने दुःख की बात कहते फिरना नीति की बात नही है। न जाने ये सन्यासी कौन हैं और क्या विद्याएँ जानते हैं—उनका जब मुझे कुछ परिचय हो जायगा तभी उनसे बात करूंगा।

सन्यासी ने जब देखा कि सर्पदंश से पीडित तरुण पूरी तरह से सचेत हो गया है तो उसने अपने हाथ का सहारा देकर उसे अपने पास बिठाया और प्रेम से पूछा—

"तरुण, तुम कौन हो और इधर से कहाँ जा रहे थे?"

कुसुमकुमार ने उत्तर देने से पहले यह योग्य समझा कि वह अपने जीवन रक्षक के प्रति अपना नम्र आभार प्रकट करे। वह उठा और उस सन्यासी के चरणो मे गिर पडा और बोला—"योगीराज, आपने मुझे नया जीवन दिया है। आपके इस उपकार को मैं जीवन भर नही भूल सकूंगा। आप मुझे क्षमा करें कि मैं आपकी सेवा मे रुक नहीं पाऊगा। मुझे इतना आवश्यक कार्य है कि पल भर भी बरबाद करना मेरे लिए अपराध होगा।" कहता हुआ कुसुमकुमार सन्यासी को एक बार पुन: प्रणाम करके वहाँ से चल पड़ा।

सन्यासी भी उस तरुण को देखता ही रह गया कि उसे इस जगल मे ऐसा क्या आवश्यक कार्य हो सकता है कि उसे दो पल ठहरना भी भारी लग रहा है। उसे तरुण के व्यवहार से थोड़ा सा विक्षोभ हुआ किन्तु जब उसने तरुण के चेहरे को ध्यान से देखा तो उसे वहाँ अवज्ञा का कोई भाव दिखाई नही दिया बल्कि उसके रुख मे एक गहरी लगन फूट रही थी। तरुण के चेहरे से कुछ ऐसा आकर्पण झलक रहा था कि सन्यासी भी उसे देखकर अभिभूत सा हो गया। अत: हठात् उसने पुकारा—

"तरुण, दो पल तो रुको भाई, मैं तुमसे कुछ बात करना चाहता हूँ।" नम्रता-पूर्वक कुसुमकुमार वापिस लौट आया और कहने लगा—"आज्ञा कीजिये योगीराज?"

"आज्ञा की कोई बात नही तरुण, मैं तुम्हारा परिचय पाना चाहता था। तुम कौन हो और तुम्हारे माता-पिता कौन हैं?"

"मैं कौन हूँ—वह तो आपके सामने सशरीर खडा हूँ और मेरे पिता आप हैं जिन्होंने मुझे नया जीवन दिया है। मेरी मा यह धरती है जिस पर मैं भ्रमण कर रहा हूँ।"

"बेटे, तुम्हारी आयु तो कम है लेकिन लगता है कि तुम्हारे पास बुद्धि बहुत है। शायद तुम अपना परिचय मुझसे छिपा रहे हो।"

"छिपाने लायक मेरा और अधिक परिचय नही है गुरु, परन्तु आप भी तो अपना परिचय बताकर मुझे कृतार्थ कीजिये।"

"हम सन्यासियो का क्या परिचय होता है बेटा ? मैं एक घुमक्कड सन्यासी हूँ और शायद तुम्हारा पुण्य ही मुझे यहाँ खीच कर ले आया है कि मैं तुम्हारे कुछ काम आ सका। लेकिन इतना तो बतला दो कि तुम इधर से इतनी जल्दी जा कहाँ रहे हो ?"

"योगीराज, मैं ऐसी स्थिति मे नही हूँ कि मैं आपको कुछ अधिक बतला सकू । इतना मात्र निवेदन कर दू कि मैं किसी की खोज मे भटक रहा हूँ और जब तक मेरी खोज सफल नही हो जायगी मैं एक पल के लिए भी चैन नही लूगा।"

"तुम एक जोशीले नौजवान हो और मैं तुम्हारे जोश की तारीफ करता हूँ मगर सोचो कि इस तरह होश खोकर भटकते रहोगे और फिर कही किसी सर्प ने डस लिया तो!"

"यह तो योग की बात है, जो होना होगा, होता रहेगा।"

"काश, मैं भी तुम्हारी खोज मे अपना सहयोग देना चाहूँ तो क्या तुम पसद करोगे ?"

अब कुसुमकुमार के मन मे यह अनुभाव जागा कि इस कठिन खोज के कार्य मे एक से दो हो जाय तो उसे अधिक सुविधा ही रहेगी। फिर ये सन्यासी तो उसके अभिभावक की तरह उसका समुचित सरक्षण भी करते रहेगे। उसके मन मे यह विचार भी आया कि कही यह सन्यासी मत्र-तत्र से उसे अपना चेला बनाने के लोभ मे उसे अपने उद्देश्य से भटका न दें इसलिए कुछ विश्वास और कुछ शका के साथ उसने उत्तर दिया—

"आपका साथ मिले—यह मेरा सौभाग्य होगा, किन्तु गुरुदेव आपका मार्ग अलग है और मेरा मार्ग अलग।"

"तुम नही जानते तरुण कि मैं भी किसी की खोज मे ही यह घुमक्कड़ी कर रहा हूँ, इस कारण खोज के रूप मे हम दोनो का मार्ग एक ही है।"

तब कुसुमकुमार ने सन्यासी के सामने हाथ जोड लिये और सन्यासी ने भी उसके सिर पर अपना हाथ रख कर भरपूर आशीर्वाद दिया।

× × × ×

सन्यासी और कुसुमकुमार उस जगल मे साथ-साथ चलने लगे। जगल भी बहुत लम्बा और विकट था। वे धीरे-धीरे अपनी यात्रा पूरी कर रहे थे। कुछ दिन तक जब लगातार दोनो साथ-साथ चलते रहे तो दोनो के बीच मे विश्वास की मात्रा बढ़ने लगी। सन्यासी उसे अनुभवहीन युवक समझकर अनुभवो की तरह-तरह की बातें बताता तो कुसुमकुमार भी अपने मन की कल्पनाएँ उसे समझाता। सन्यासी बहुत ही दयावान था और उसके करुणापूर्वक व्यवहार का कुसुम के कोमल हृदय पर गहरा प्रभाव पड रहा था।

एक दिन शाम ढल रही थी और वे दोनो आगे वढ रहे थे। वहाँ उन्हे सामने एक छत्री दिखाई दी तो सन्यासी ने रात वही विताने का विचार करते हुए कुसुमकुमार से कहा—

"यह स्थान ठीक दिखाई दे रहा है, आज का रात्रि विश्राम यही कर लें।"

फिर दोनो निवृत्त होकर छत्री मे बैठ गये और धर्म चर्चा करने लगे।

ज्ञानी और अज्ञानी मे यही अतर होता है कि ज्ञानी अपने ज्ञान मे आयी हुई वातो की दूसरो के सामने चर्चा करता है और उन्हें सत्प्रेरणा देता है। वहाँ अज्ञानी सुधार की वातो को भूलकर ससार की निरर्थक वातें करता है एवम् राग द्वेष तथा मनोमालिन्य को वढाता है। यहाँ दोनो मे एक सन्यासी था जो सुसस्कारित व्यक्तित्व वाला था तो दूसरा कुसुमकुमार भी अपने जनक माता-पिता के सुलक्षणो का एवम् पालक माता-पिता के सुसंस्कारो का धारक था। समान प्रकृति वालो का तालमेल जल्दी वैठ जाता है इस कारण अव दोनो एक दूसरे के विश्वासपात्र वन गये थे।

परन्तु सन्यासी के मन मे एक गाठ थी और उस गाठ को खोलने के लिए उसका मन वहुत अधीर हो रहा था। उस समय जव वे छतरी मे वैठे तो अच्छा प्रसग देखकर सन्यासी ने अपने हृदय का तरल स्नेह उडेलते हुए कुसुमकुमार से पूछा—

"अरे कुसुम, तुम्हारा हृदय तो मक्खन के समान कोमल है फिर भी तुम मेरे साथ खुलकर वात नही कर रहे हो—इसका क्या कारण है ? मैंने तुमसे तुम्हारा परिचय पूछा था उसे भी तुमने यह कहकर टाल दिया कि धरती माता है और मैं तुम्हारा पिता हूँ। मैं तुम्हे पूछना चाहता हूँ कि तुम्हारा यह शरीर किस मानवी माता के गर्भ से जन्मा है ?"

सन्यासी का इतने अर्से वाद फिर वही प्रश्न सुनकर कुसुमकुमार तव विचार मे पड गया। पहले तो उसे सन्यासी पर विश्वास नही था किन्तु अव वह उसके सद्गुणो से पूर्णतया परिचित हो गया था। दोनो के सम्वन्ध उस समय घनिष्ठ हो गये थे अत कुसुम ने निश्चय किया कि वह भी उसे अपनी वात वतावे और उससे भी अपनी वात पूछे। तव उसने वैश्या के कोठे पर अपनी मा के मिलन से लेकर उसका उद्धार न कर पाने के कारण मा के नदी मे कूद जाने तक की सारी वात सन्यासी को वता दी। उसने यह भी वता दिया कि माता के प्रथम दर्शन से ही उसका हृदय इतना प्रभावित हो गया कि वह विह्वल होकर उसी की खोज मे भटक रहा है। उसने कहा कि चू कि वह जन्म से ही अपने पालक वनजारा माता-पिता के यहाँ वड़ा हुआ है इसलिए जन्म देने वाले माता-पिता के प्यार से वचित रहा है।

सन्यासी उसकी एवम् उसकी माता के कष्टो की करुण कथा सुनकर भाव विभोर हो उठा और उसकी आँखे भर आई। सन्यासी को मन ही मन वहुत कुछ अनुमान भी लगा लेकिन प्रकट रूप मे उसने कहा—

"धन्य है तुम्हारी माता जिसने इतने कष्ट उठाये। तुम ऐसी माता के पुत्र हो यह गर्व की वात है। क्या तुम्हारी माता ने तुम्हें यह वृत्तान्त भी सुनाया था कि तुम्हारी

माता तुम्हारे पिता को मिली थी और दोनो जब एक घोडे पर बैठकर जगल मे जा रहे थे तो तुम्हारे पिता के पैर को एक सर्प ने डस लिया था ?"

"यह वृत्तान्त मेरी माता ने मुझे वताया था। आप तो योगी और ज्ञानी हैं अत आगे का वृत्तान्त आपको ज्ञात हो तो आप वता दीजिये।"

"हाँ हम तो घुमक्कड सन्यासी हैं सो ऐसा सुना था कि जब तुम्हारे पिता वेहोश पडे थे तब उधर से सन्यासियो का एक टोला आया था और उसके मुखिया ने तुम्हारे पिता का विष उसी तरह उतार दिया था जिस तरह मैंने तुम्हारा विष उतारा है। वह मुखिया गारूडी मत्र का ज्ञाता था। फिर तुम्हारे पिता भी सन्यासियो के उसी टोले मे शामिल हो गये थे। उन्होंने अपनी सेवा से सभी सन्यासियों का मन जीत लिया इस कारण उन्हे भी गारूडी मत्र एवम् दूसरी विद्याएँ सिखा दी। यद्यपि तुम्हारे पिता सन्यासियो के वेश मे रहने लगे फिर भी वे तुम्हारी मा को खोजने के एक ही लक्ष्य के पीछे घूम रहे थे। इस वीच टोले के मुखिया का देहात हो गया और सब सन्यासी विखर गये। तब तुम्हारे पिता भी कचनपुर के जगल मे आ निकले।"

तब कुसुमकुमार चौकन्ना हो गया और वड़े गौर से सन्यासी का चेहरा देखने लगा। देखते-देखते उसके हृदय मे भावनाओ का ऐसा तूफान उठा और पितृ प्रेम की ऐसी वर्षा हुई कि वह भावुक होकर सन्यासी के चरणो मे यह कहता हुआ गिर पडा—"मेरे पूज्य पिता आप ही हैं और इसी कारण मेरी अन्तर्चेतना ने सवसे पहले आपको सही सम्वोधन ही करवाया था।"

सन्यासी ने कुसुमकुमार को नीचे से उठाकर अपनी वाहुओ मे भरा और छाती से चिपका लिया। दोनो वहुत देर तक एक दूसरे को अपने अपार हर्ष और प्रेम के आँसुओ से भिगोते रहे। श्रीकात अतिशय प्रसन्न था कि उसे अब तक अनदेखा अपना लाडला लाल मिल गया था।

□□

३२

काशीनगर में कुसुमकुमार का भाग्योदय

"मेरे वेटे कुसुम, मेरे मन को पक्का विश्वास है कि अव तुम्हारी माँ भी अवश्य ही मिल जायेगी। फिर हम तीनो अपने नगर श्रीपुर की ओर चलेंगे जहाँ तुम्हें तुम्हारी दादीजी और वुआजी से मिलवायेंगे।"

"हाँ पिताजी, जव हम सारे परिवार वाले एक साथ होगे तो कितना आनन्द रहेगा ?"

श्रीकान्त और कुसुमकुमार अपनी खोज के मार्ग पर आगे वढते जा रहे थे। दोनो के मन मे उल्लास था कि जव पिता और पुत्र का सुखद मिलन हो गया है तो मजुला भी मिलकर ही रहेगी। किन्तु श्रीकान्त वहुत अधिक सतर्क था तथा कुसुमकुमार को कही भी अपनी दृष्टि से वाहर नही होने देता था क्योकि दूध का जला छाछ को भी फूंक-फूंक कर पीता है। कितने कष्टपूर्ण प्रयासो के वाद मजुला मिली थी और वह उसे फिर से हाथ से खो वैठा। कुसुमकुमार के हृदय मे भी पश्चात्ताप था कि वह समय पर अपनी मा को मुक्त नही करा सका, इसी कारण माँ को नदी मे कूद पडने जैसा घातक निर्णय लेना पडा और इसी कारण वह अव न जाने कहाँ कैसे-कैसे कष्टो का सामना कर रही होगी ?

चलते-चलते दोनो एक ऐसे स्थल पर पहुँचे जहाँ से दो मार्ग जाते थे। एक मार्ग श्रीपुर नगर को तो दूसरा काशीनगर को। उस समय शाम हो चली थी और तिराहे पर एक छोटी सी धर्मशाला भी वनी हुई थी। उस ओर सकेत करते हुए श्रीकान्त ने अपने वेटे को कहा—

"कुसुम, अव रात भर विश्राम यही कर लें तो ठीक रहेगा। कल सुवह निवृत्त होकर श्रीपुर की ओर प्रस्थान कर देंगे। अव तक चूकि तुम्हारी माता की खोज मे हम लोग सफल नही हो सके हैं और तुम इस तरह घूमते-घूमते परेशान हो गये होंगे, मैं तुम्हे श्रीपुर छोडकर फिर पुनः खोज मे निकल पड़ूंगा।"

"आज रात यहाँ ठहर जाते हैं पिताजी, किन्तु माँ की खोज के लिए मैं आपको अकेले नहीं भटकने दूगा। यह कैसे हो सकता है कि मैं श्रीपुर मे मौज से रहूँ और आप

जगलो में कष्ट पाते रहें। एक बार श्रीपुर पहुँच कर वहाँ मिल लेंगे और फिर दोनो ही साथ-साथ निकल पडेंगे ”

“अच्छा, जैसा ठीक लगेगा वैसा कर लेंगे”—कहता हुआ श्रीकान्त अपने बेटे का हाथ पकड कर धर्मशाला मे घुस गया।

जब वे धर्मशाला के दालान मे विश्राम कर रहे थे वहाँ कई नगरो के अन्य कई यात्री भी विश्राम कर रहे थे। उन्ही यात्रियो मे से दो यात्री जो वार्तालाप कर रहे थे उसकी ओर श्रीकान्त का अनायास ही ध्यान खिच गया।

पहला यात्री कह रहा था—“क्यो बन्धु, क्या तुम कभी काशी नगर गये हो ?”

दूसरे यात्री ने कहा—“हाँ भाई मुझे अपने काम से काशी नगर बराबर जाते रहना पडता है और मैं तो जानता हूँ कि काशी नरेश बहुत ही सज्जन और दयालु राजा हैं तथा वहाँ की प्रजा भी उनके राजकाज से बहुत प्रसन्न है।”

“ हाँ, मैं तो काशी नगर का ही निवासी हूँ और मैंने जब से वहाँ का एक समाचार सुना है मेरा मन बडा उदास हो गया है।”

“ऐसा क्या बुरा समाचार है मेरे भाई ?”

“शायद तुम नही जानते होंगे कि काशी नरेश के कोई राजकुमार नही है। उनके एक मात्र राजकुमारी है, जिसे किसी विषैले सर्प ने डस लिया है। राजा सभी तरह के उपचार करा रहे है किन्तु अभी तक उसकी बेहोशी नही टूटी है। कल ही मेरा एक सम्बन्धी मुझे मिला था जो मुझे कह रहा था कि काशी नरेश अपनी राजकुमारी के कष्ट से इतने शोक ग्रस्त हैं कि अगर राजकुमारी को कही कुछ हो गया तो समझ मे नही आता कि काशी नरेश का क्या होगा ? वह कह रहा था कि काशी के सभी नागरिको के दिल मे भारी व्यथा है कि ऐसे जन हितैषी शासक को वृद्धावस्था मे अपनी परम दुलारी पुत्री का वियोग न देखना पडे, क्योकि यह पुत्री ही उनका एकमात्र सहारा है।”

“वास्तव मे बहुत बुरा समाचार है भाई, काशीनरेश के प्रति तो मेरी भी बहुत श्रद्धा है। क्या कही पर गारुडी विद्या का सिद्धहस्त जानकार नही मिल सकेगा ?”

इतना वार्तालाप सुनकर श्रीकान्त शात नही रह सका। उसके अन्त करण मे तो वैसे भी मानवीय दृष्टिकोण सर्वोपरि रहता था, फिर ऐसे जन हितैषी शासन की सेवा करना तो उसने अपना पहला कर्तव्य माना। वह उठकर उस काशी निवासी नागरिक के पास जा पहुँचा और पूछने लगा—

“तुम अभी काशी की राजकुमारी के सर्पदंश की जो बात कह रहे थे, क्या वह सच है ?”

“हाँ भाई साहब, एकदम सच है। इस विपदा से काशी नरेश अतीव खेद ग्रस्त हैं तो उनके खेद से उनकी सारी प्रजा भी सतापग्रस्त है। इस समय तो सर्प का विष उतारने वाला कोई सिद्धहस्त काशी नरेश की सहायता को पहुँच जाय तो वह बहुत ही पुण्य उपार्जित करेगा।”

"भाई, तुम यहाँ से कहाँ जाओगे ?"

"मैं यहाँ से सीधा काशी ही चलूंगा। यह बुरा समाचार सुनकर मेरा मन नहीं मानता कि मैं काशी से बाहर रहूँ। मैं भी समस्त काशी वासियो के साथ प्रार्थना करूंगा कि राजकुमारी इस मरणासन्न कष्ट से छुटकारा पाकर शीघ्र स्वस्थ हो जाय।"

"अच्छा भाई, अभी तो विश्राम करो। प्रात काल मैं भी तुम्हारे साथ काशी ही चलूंगा और जैसा हो सकेगा, राजकुमारी को स्वस्थ करने का प्रयत्न करूंगा।"

इतना सुनते ही वे दोनो यात्री हर्ष और आश्चर्य के भाव से उछल पड़े और पूछने लगे—

"तो क्या आप गारुडी विद्या के ज्ञाता हैं ?"

"हाँ कुछ-कुछ सीखी है और उसके बल से यदि राजकुमारी स्वस्थ हो सकी तो मैं उसे अपना भाग्य ही मानूंगा।"

"भाई साहब आपके प्रयत्न से अगर यह पुण्यकार्य सफल हो गया तो काशीनरेश सहित सारे काशीवासी आपकी मुक्तकठ से प्रशसा करेंगे और मैं तो अभी ही आपके सामने श्रद्धावनत हूँ।"

फिर सभी यात्री निद्राधीन होने लगे।

किन्तु श्रीकान्त को नीद नही आयी और हकीकत मे उसे उतने वर्षों से नीद आ ही कहाँ रही थी ? उसकी भावनाओ मे वैसे ही व्यथा पूरी तरह घुली मिली थी फिर भी उसमे एक व्यथा और समा गई। उसने निश्चय किया था कि वह पहले अपने बेटे को उसका अनदेखा घर दिखायेगा और उसे श्रीपुर ही छोड देगा ताकि वह अपनी दादी का प्यार पा सके। उसे अपनी मजुला को तो खोज निकाल लेना है ही—चाहे उसे अब भी कितना ही भटकना पडे और कितनी ही कठिनाइयो का मुकाबला करना पडे। किन्तु अब उसे सबसे पहले काशी नरेश की सहायता करनी होगी। उसका हृदय करुणा से ओतप्रोत हो गया। सम्यक् दृष्टि वाली आत्मा मे शम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था की सरल भावनाएँ लहरें लेती रहती हैं। उस समय श्रीकान्त के हृदय मे वैसी ही अनुकम्पा की भावना प्रबल हो उठी और मन ही मन उसने काशी नगर की ओर चलने का पक्का निश्चय कर लिया।

जब प्रातः प्रस्थान करने के बाद पिता पुत्र उस यात्री के साथ मार्ग पर चलने लगे तो कुसुमकुमार ने टोका—"पिताजी, शायद आप भूल रहे है, आप काशीनगर के मार्ग पर चल पड़े हैं, जबकि हमे श्रीपुर के मार्ग पर चलना है।"

"मैं भूला नही हूँ बेटा, मैंने निश्चय बदल दिया है। रात को तुम्हारे सो जाने के बाद मुझे पता चला था कि काशी नरेश की राजकुमारी को साँप ने डस लिया है और इसलिए गारुडी विद्या के ज्ञाता के नाते मैंने निश्चय किया कि पहले मुझे काशी जाना चाहिये।"

"पिताजी, आप मनुष्य नही देवता हैं। मुझे अतीव गर्व है कि मैं आपका पुत्र हूँ। अपना दर्द भूल कर दूसरे के दर्द को मिटाने के लिए दौडना—यही तो देवत्व है।"

"ऐसा कुछ नही बेटा, आदमी को हमेशा अपना फर्ज जरूर याद रखना चाहिये।"

"आप मुझे आशीर्वाद दें कि मैं भी अपने जीवन मे हमेशा फर्ज को बराबर निभा सकू।"

"बेटे, तुम्हें मेरा सम्पूर्ण आशीर्वाद है कि तुम मेरे से भी बढकर बनो। मैंने काशी पहुँचने मे अपने फर्ज की बात इसलिए भी बतायी कि मुझे जब मेरे योगी गुरु ने गारुडी विद्या सिखाना शुरू किया तो मुझे निर्देश दिया था कि जब भी किसी के सर्पदंश की बात सुनो तो तुरन्त अपने सब काम छोडकर पहले उसका विष उतारने के लिए भाग कर जाना। उन्होने यह भी सीख दी थी कि इस शुभ काम मे जाति, धर्म, क्षेत्र किसी का भी भेद मत करना और समान भाव से धनी, निर्धन, या छोटे-बडे सभी के इस दु ख को दूर करना। उन्होने कहा था कि जब तुम इस भावना से जहर उतारने का काम करोगे तभी मैं तुम्हे कर्तव्यपरायण शिष्य समझूगा। कुसुम, जब उन्होने मेरा जहर उतारकर मुझे जीवन दान दिया था तभी मैंने उन्हें महान् समझा था लेकिन जब उन्होने ऐसी परोपकारी सीख दी तो मेरे मन मे उनके प्रति अपार श्रद्धा भर उठी। जब मैंने तुम्हारा विष उतारा था तब मैंने तत्काल थोडे ही पहचान लिया था कि तुम मेरे पुत्र हो और अब काशीनगर जा रहा हूँ तो गुरु की सीख को ही हृदय मे रखकर जा रहा हूँ। तुम्हे श्रीपुर ले जाने मे देर जरूर होगी मगर इस शुभ काम को करना भी आवश्यक ही है।"

"श्रीपुर तो चलेंगे ही पिताजी, लेकिन इस शुभ काम को करते हुए चलेंगे तो वास्तव मे प्रसन्नता ही रहेगी और कौन जाने इस शुभ काम के शुभ फल से कही माताजी की ही खोज सफल हो जाय ?" उस समय कुसुम का चेहरा आशा से चमक उठा।

काशीनगर मे प्रवेश करके श्रीकान्त और कुसुमकुमार उस काशीवासी यात्री के साथ-साथ राजमहल की ओर बढ चले। पूरे मार्ग मे श्रीकान्त देखता जा रहा था नागरिको के उदास चेहरे और उसका हृदय करुणा से भरता जा रहा था। राजद्वार पर पहुँचे तो उस यात्री ने द्वारपाल से बात की, द्वारपाल भीतर जाकर तुरन्त लौट आया तथा आदरपूर्वक श्रीकान्त आदि को उस कक्ष मे ले गया जहाँ सर्पदंश से पीडित राजकुमारी को लिटा रखी थी। काशी नरेश और महारानी के चेहरे उतरे हुए थे। उन्होने श्रीकान्त का भावपूर्ण स्वागत किया किन्तु वे बोल इतना ही सके—"आइये, आप हमारी लाडली राजकुमारी को स्वस्थ बना देंगे तो हम आपका यह उपकार कभी नही भूलेंगे।"

श्रीकान्त ने भी इतना ही कहा—

"महाराज और महारानीजी, आप शाति रखें। आपकी पुण्यवानी से आपकी राजकुमारी अवश्य स्वास्थ्य लाभ करेगी।"

श्रीकान्त फिर तुरन्त मन्त्रोपचार करने के लिए यथाविधि बैठ गया। वह मंत्र पढता जाता था और सर्पदंश के स्थान को झाडता जाता था। धीरे-धीरे राजकन्या के शरीर मे

हरकत होने लगी जिसे देखते ही वहाँ उपस्थित सभी लोगो के मन मे खुशी की लहर दौड गई। उनकी आशा भी बलवती बन उठी कि इस लक्षण को देखते हुए राजकुमारी जरूर तदुरुस्त हो जायेगी। हुआ भी यही कि राजकुमारी की चेतना लौट आयी और धीरे-धीरे आँखें खोलकर उसने अपने पिता की ओर देखा तथा आश्चर्य के साथ पूछा—

"पिताजी मुझे क्या हो गया था? आप सब लोग चिंतित क्यो दिखाई पड रहे हैं?"

"हम तो सब बहुत प्रसन्न हो गये बेटी, लेकिन तुम्हारा जी अब तो अच्छा है न?"

"मेरी तबियत अब बिल्कुल ठीक है लेकिन आपने बताया नही कि मुझे हो क्या गया था?"

"तुम्हे एक साप ने डस लिया था और उसका जहर इन महाशय ने उतार कर तुम्हें नया जीवन दिया है"— यह कहते हुए काशी नरेश ने श्रीकान्त की ओर सकेत किया, फिर श्रीकान्त को ही सम्बोधित करके वे बोले—

"महाशय, मैं आपके प्रति बहुत ही आभारी हूँ कि आपने मेरी पुत्री को ही नही, हम सभी लोगो को भी जीवनदान दिया है। आपको इसकी जानकारी है या नही—मैं नही कह सकता, किन्तु मैंने यह घोषणा करवा रखी थी कि जो भी मेरी पुत्री को स्वस्थ बना देगा उसके साथ राजकुमारी का विवाह भी करूगा तथा मेरा राज्य भी उत्तराधिकार मे दूगा। उस घोषणा के अनुसार आप इन दोनो प्रकार के लाभ के अधिकारी हैं। लेकिन हाँ ये आपके साथ युवक कौन है?"

श्रीकान्त ने शात एवम् सम्मानपूर्ण भाषा मे काशी नरेश को उत्तर दिया—

"यह तो मेरा सुपुत्र कुसुमकुमार है। आपकी घोषणा के सम्बन्ध मे मेरा नम्र निवेदन है कि मैं अपनी गारुडी विद्या का प्रयोग केवल मानवीय दृष्टि से ही करता हूँ, किसी लाभ की आकाक्षा से नही। वैसे मुझे घोषणा की भी जानकारी नही थी। मैं तो अपने नगर श्रीपुर जा रहा था तो वहाँ तिराहे पर जब यह समाचार मुझे मिला तो मैं कर्तव्य से प्रेरित होकर करुणावश काशी नगर की ओर चल पड़ा।"

"आपने अपना नाम नही बताया और परिचय भी?"

"महाराज मेरा नाम श्रीकान्त है और मैं घुमक्कडी कर रहा हूँ। यो समझिये कि घुमक्कडी में किसी की खोज मे कर रहा हूँ।"

"मेरा एक सुझाव है श्रीकान्तजी कि मेरी घोषणा के अनुसार मेरी पुत्री का विवाह आपके सुपुत्र से कर दिया जाय और फिर वही मेरे राज्य का भी उत्तराधिकारी बने। आप जानते है कि राजकीय घोषणा कभी व्यर्थ नही होती। आपका त्याग प्रशसनीय है और फिर मेरी पुत्री और आपके सुपुत्र की जोडी भी अतीव श्रेष्ठ रहेगी।"

"अब मैं क्या निवेदन करूँ महाराज? आप जब मेरे पुत्र के मस्तक पर अपने वरद हस्त का आशीर्वाद दे रहे हैं तो मैं अपने भाग्य को ही सराहूँगा। लेकिन इन दोनो युवा युवती को तो परस्पर पसन्दगी का हमे अवसर देना चाहिये।"

तव काशी नरेश ने प्रसन्न होते हुए अपनी दुलारी राजकुमारी की ओर देखा और पूछा—

"बेटी, तुम अपने सामने कुसुमकुमार को देख रही हो। कैसा लग रहा है यह युवक तुम्हें अपना जीवन-साथी बनाने के लिए ? वैसे मैंने तुम्हे बता ही दिया हैं कि इस युवक के पिता ने ही तुम्हें नया जीवन दिया है।"

राजकुमारी ने कुछ तिरछी निगाह से कुसुमकुमार को देखा—इतना भव्य व्यक्तित्व, इतना उद्दाम यौवन और ऐसी अनुपम सस्कारित की छवि—वह तो विमुग्ध सी हो गयी और कुसुमकुमार की मन स्थिति भी आकर्षण के भवर मे घूमती सी नजर आयी। चारो नेत्रो ने एक दूसरी जोडी की भाषा पढ ली और एक दूसरे को अपना उत्तर भी दे दिया। राजकुमारी अपने पिता को उनके प्रश्न का क्या उत्तर देती ? उसका मुख आरक्त हो उठा और वह इतना ही बोली—"आपकी आज्ञा मैंने सदा शिरोधार्य की है और इसे भी करूगी। जिस महान् पुरुष ने मुझे नया जीवन दिया है तो मैं उस जीवन को उसीके चरणो मे समर्पित क्यो न कर दू ?"

काशी नरेश ने अपनी राजकुमारी का आशय समझ लिया और वही घोषणा कर दी —

"मेरे परिवार जन, सभासद एवम् मत्रीगण, मैं राजकीय घोषणा को कार्यरूप देने के विचार से आप सव लोगो के समक्ष यह आज्ञा प्रसारित करता हूँ कि शीघ्रातिशीघ्र शुभ मुहूर्त मे मेरी राजकन्या सुगन्धा एवम् श्रीकान्तजी के सुपुत्र कुसुमकुमार का पाणिग्रहण सम्पन्न कर दिया जाय और कुसुमकुमार को युवराज के पद से प्रतिष्ठित किया जाकर काशी का उत्तराधिकारी नियुक्त किया जाय।"

कुसुमकुमार और कुमारी सुगन्धा के शुभ विवाह का महोत्सव इतनी धूमधाम से सम्पन्न हुआ—सव ओर इतना अधिक हर्षोल्लास देखने मे आया कि उसे सारी जनता अभूतपूर्व कहने लगी। विवाह के ठीक वाद काशी नरेश ने उत्तराधिकार समारोह भी आयोजित करवाया।

राज्य के विशाल सभागार मे सभी आसन व्यवस्थित रूप से लगे हुए थे जिन पर अपने-अपने पद के अनुसार अतिथि वैठ चुके थे। काशीनरेश के सिंहासन के एक ओर राजकीय नवदम्पति वैठे हुए थे तो दूसरी ओर उनके अपने सिंहासन के समान ही एक और सिंहासन रखा हुआ था जो अभी खाली था। यह सिंहासन श्रीकान्त के लिए था।

सामने के मुख्य द्वार मे जव मत्रीगण श्रीकान्त को सम्मानपूर्वक सभागार मे लाए तो काशीनरेश ने भी उसका समुचित स्वागत किया और अपने पास रखे सिंहासन पर आसन ग्रहण करने का निवेदन किया तव श्रीकान्त ने विनयपूर्वक कहा—

"नही राजन् यह सिंहासन मेरे लिए उपयुक्त नही है। मै ठहरा अकिंचन और मैं ऐसे सिंहासन पर वैठू—यह शोभा नही देगा।"

"आप स्वय अपने को भले अकिंचन कह लें किन्तु मै तो आपको अपने मे भी अधिक धनी मानता हूँ। आपके पास त्याग, परोपकार एवम् मानवीय बुद्धि का जो अमूल्य खजाना

है उसके सामने मेरे सारे राजकोष का भी क्या महत्त्व है ? वैसे तो आपका स्थान मेरे खुद के सिंहासन पर होना चाहिये था लेकिन चूकि अभी मैं अपना सिंहासन त्याग नही पा रहा हूँ इसलिए मैं आपको अपने पास के सिंहासन पर ही आसन ग्रहण करने का निवेदन कर रहा हूँ। आइये, और वैठिये।" फिर काशी नरेश ने श्रीकान्त का हाथ पकड कर उसे अपने पास विठा लिया। तव उन्होने खड़े होकर समारोह मे सभासदो को सम्वोधित करते हुए कहा—

"श्रीमन्तो ! श्रीकान्तजी के कारण ही आज राजकुमारी सुगन्धा जीवित है। इन्होंने ही निस्वार्थ भाव से मेरी पुत्री का उपचार किया। घोषणा के अनुसार इन्होंने राजकन्या और सिंहासन का प्रस्ताव स्वीकार नही किया अत मैंने इनके सुपुत्र कुसुमकुमार के साथ राजकन्या का विवाह करने का निश्चय किया, जो सम्पन्न हो चुका है और अव घोषणा के अनुसार कुसुमकुमार को इस राज्य का भावी शासक मनोनीत करना है। मैं इस वारे मे आपकी सम्मति चाहता हूँ।"

सभी सभासदो ने एक स्वर से महाराजा को अपनी सम्मति दी। तव महाराजा ने नवदम्पति को अपना आशीर्वाद दिया एवम् उनके दीर्घजीवन की कामना की। तव वे कुसुमकुमार की तरफ मुडे और वोले—"मैं अव तुमसे अपने दूसरे प्रस्ताव के सम्वन्ध मे तुम्हारी स्वीकृति चाहता हूँ कि तुम भावी शासक बनो और काशी राज्य की जनता की दीर्घकाल तक सेवा करो।"

कुसुमकुमार अपने आसन से खडा हुआ और हाथ जोड कर निवेदन करने लगा—

"राजन् जव कभी मेरे जन्म और जीवन की कहानी आपको सुनाऊगा तो पता चलेगा कि मैंने इस दुनिया मे ठडी और गर्म हवाओ के तरह-तरह के झोके खाये हैं। इस कारण मेरी भोगोपभोग की वस्तुओ मे कोई दिलचस्पी नही है। मैं तो एक कर्तव्यपूर्ण जीवन का भलीभाति निर्वाह करना चाहता हूँ इसलिए जव आप मुझ पर काशी की जनता की सेवा करने का भार डालना चाहते हैं तो इसे मैं आपके निर्देश एवम् पूज्य पिताजी की आज्ञा मे ग्रहण कर सकूंगा। आप दोनो मुझे आशीर्वाद दें कि मैं यह उत्तरदायित्व पूरी कुशलता, योग्यता और निष्ठा से निभाऊँ।"

कुसुमकुमार ने यह कहकर काशी नरेश और श्रीकात के पैर छुए। साथ ही सुगधा भी अपने पूजनीय के चरणो मे झुकी। दोनो ने दोनो को हृदय से आशीर्वाद दिया। तव काशी नरेश ने अपने वक्तव्य का उपसहार कर दिया—

"श्रीमन्तो ! आपकी सम्मति एवम् श्रीकान्तजी की अनुमति से मै कुसुमकुमार को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करता हूँ और जव तक इनका राजतिलक नही हो जाता तव तक ये "युवराज" के पद से सम्वोधित किये जायेंगे। मेरी विनती है कि श्रीकान्तजी राज्य के माननीय मेहमान के रूप मे यही विराजेंगे और राज्य सचालन मे मार्ग-दर्शन करेंगे।"

ज्योंही काशी नरेश नीचे वैठे, जनसमूह ने जय-जय कार किया—काशी नरेश की जय, श्रीकान्तजी की जय, राजकुमार कुसुमकुमार और राजकुमारी सुगन्धा की जय...... ।

३२

मंजुला के मन का मोद पूर्ण

मजुला के मन का मोद उसी दिन पूर्ण हो गया जिस दिन उसने समग्र काशी-वासियो के साथ अपने बेटे कुसुमकुमार का राजकुमारी सुगधा के साथ बहुत ही धूमधाम से हुए विवाह समारोह को तथा उसके बाद ही युवराज पद समारोह को अपनी निज की आँखो से सम्पन्न होते देखा और देखा अपने पति श्रीकात का काशी नरेश के समकक्ष होता हुआ राजकीय सम्मान। यद्यपि अपने पति और पुत्र से अभी तक उसका प्रत्यक्ष मिलन नही हो पाया था, फिर भी उसका हृदय, उनके उस गौरव की उपलब्धि से तृप्त हो गया था।

मजुला ने जब कचनपुर मे वैश्या के कोठे की तीसरी मजिल से नीचे बहती हुई नदी की जलधारा मे छलाग लगायी थी, तब उसका मन मस्तिष्क शीलधर्म को सुरक्षित कर लेने के कारण आन्तरिक उत्साह से परिपूर्ण था। किन्तु उसका सुकोमल शरीर उस आघात को सह नही सका। पानी मे गिर जाने के बाद कुछ देर तक तो वह सचेतन रही और उसने किनारे की ओर बढ़ने की चेष्टा की किन्तु धीरे-धीरे वह अचेतन होती हुई नदी की धारा मे वेग के अनुसार बहने लगी।

वही नदी काशी नगर के पास मे होकर बहती थी। काशी नगर के घाट पर अहीर जाति के कई स्त्री-पुरुष जब स्नान आदि मे लगे हुए थे तो दूर से एक मानव शरीर बहता हुआ उनकी दृष्टि मे आया। उसे देखते ही दो-तीन तैराक आगे बढे और वे उस शरीर को किनारे पर ले आये। उन्होने देखा कि वह शरीर किसी एक स्त्री का है और वह अभी तक जीवित है। उन्होने पेट से पानी आदि निकालने की क्रिया की तथा दूसरे उपचार भी किये जिनकी सहायता से उसकी चेतना लौट आई। उस स्त्री के प्रति वहाँ उपस्थित अहीर जाति की स्त्रियो का बहुत ही आकर्षण हुआ अतः उन्होंने उस स्त्री से पूछताछ शुरू कर दी। एक अहीरन जिसकी इच्छा उसे अपने साथ रखने की प्रबल थी, उसे दुलारते हुए बोली—

"बहिन, तुम चिन्ता न करो, तुम्हारी जान बच गयी है। हमने अभी तक तुमको सिर्फ देखा भर है फिर भी हम काशी नगर की अहीरन बहुत ही प्रभावित हुई हैं। क्या तुम अपना परिचय दोगी कि तुम कौन हो और इस नदी मे गिरकर क्यो कर बह गई थी?"

मजुला ने तव स्वस्थचित्त होकर अपने चारो ओर देखा। उसे याद आया कि वह कचनपुर से नदी मे कूदी थी और वह यहाँ काशी मे वचा ली गई। उसके विचार मे अपना परिचय देने की समस्या उठ खडी हुई। उसने सोचा कि इन लोगो को अपना सही परिचय देने का कोई प्रयोजन नही है इसलिए उसने कहा—

"मैं आप सब वहनो की आभारी हूँ कि आपकी वजह से मुझे नया जीवन मिला है। मैं भी आपकी तरह एक श्रम करने वाली महिला हूँ और असावधानी के कारण नदी मे वह गई थी।"

"तो वहिन अपने गाँव-घर का पता बताओ ताकि हम तुमको वहाँ पर पहुँचवा देवें।"

"मेरा गाँव-घर इतनी दूर है और वहाँ भी मेरे कोई निकट आत्मीय नही हैं अत' यदि आप वहनो मे से कोई मुझे अपने साथ रख सके तो मुझे वापिस लौटने मे कोई दिलचस्पी नही है। जो भी वहन मुझे अपने यहाँ प्रेम सहित रखेगी उसके अन्न-जल का ऋण मैं अपने श्रम और स्नेह से वाकी नही रखूँगी।"

वह अहीरन मन ही मन एकदम प्रसन्न हो गई। उसने इच्छा की और वह इच्छा अनायास ही सफल हो गयी थी इसलिए वहुत ही उत्साह से उसने मजुला को अपने हृदय से लगा लिया और गद्गद् होते हुए वोली—

"वहन, तुमने विना माँगे ही मेरे मन की साध पूरी कर दी। मैं अपने घर मे अकेली हूँ इसलिए नदी के जल से तुम्हें निकाल कर लाते ही मैंने इच्छा की थी कि तुम्हे अपने साथ रखूँ। आओ, अव घर चलो, हम दोनो वहनो की तरह सहज स्नेह के साथ रहेगी। और हाँ तुम्हारा नाम तो मैंने पूछा ही नही वहिन?"

"मुझे मजुला कहते है वहिन।"

"वहुत ही सुन्दर नाम है और वैसा ही तुम्हारा सुन्दर जीवन भी दिखाई देता है।"

मजुला को लेकर वहाँ से सभी अहीरनें अपने मोहल्ले की ओर चल पडी।

× × × ×

मंजुला को सरल एव सादी वृत्ति के कारण वह अहीर परिवार वहुत ही भा गया। वही परिवार क्या, उसे सारे अहीर परिवार वहुत अच्छे लगे। उनकी सादगी मे वह भी ऐसी रमी कि अपना पहिनावा पूरी तरह से अहीरनो की तरह ही वना लिया। वह वे सभी काम भी उन्ही जैसी विधि से रुचिपूर्वक करने लगी। धीरे-धीरे मजुला उनके रग-ढग मे इस तरह घुलमिल गई कि उसके पति या पुत्र भी देखें तो उसे पहली नजर मे नही पहचान सकें। वह उन अहीरनो मे पक्की अहीरन ही दिखाई देने लगी।

वहाँ का अहीर समुदाय मजुला जैसे नारी रत्न को अपने बीच पाकर सोचता था कि यह तो गगा के सदृश्य निर्मल, स्वच्छ और पवित्र है। इसका कारण भी था। मजुला ने अहीरन के घर मे आश्रय लेने के वाद सभी परिवारो मे आना-जाना, उन्हे धर्म का स्वरूप वताना तथा जीवन सुधार के सिद्धान्त समझाना शुरू कर दिया था। उसने उन्हें समभाव पूर्वक धार्मिक क्रियाएँ भी सिखाईं। वह उन्हे कथा वार्ताएँ भी सुनाती और अपने हृदय को निर्मल वनाने की व्यावहारिक वातें भी समझाती। मजुला के इस सम्पर्क से वहाँ का वह अहीर समुदाय अपने भीतर और वाहर शान्ति का अनुभव करने लगा। इससे मजुला न सिर्फ उस समुदाय के बीच ही मे लोकप्रिय वनी अपितु उसकी सदाशयता की प्रसिद्धि धीरे-धीरे सारे नगर मे होने लगी। उसकी सद्‌गुणो की सुगन्ध की तरफ गणमान्य नागरिक भी आकर्षित होने लगे।

किन्तु मजुला जव भी एकाकी होती, उसके मन मे अपने पति और पुत्र का चिन्तन चल जाता। उसे यह विचार आता रहता कि उसके साथ भाग्य कितना छलावा कर रहा है? उसे लम्वे अरसे वाद पतिदेव मिले लेकिन वह अपने मन की पूरी वात भी न कह पायी कि फिर उनसे विछुडना पड गया। जन्म देने के वाद अपने दिल का टुकडा जो उससे अलग हुआ तो वह उसके लिए वर्षों तक सताप ही करती रही किन्तु वह अचानक वेतुकी जगह पर मिला और इस आशा से वह खुलकर भी उससे वात नही कर सकी कि उस जगह से जव वह उसका उद्धार करा लेगा तव वे साथ-साथ रहेगे और दिल खोलकर वातें करेंगे। विछुडने के वाद दोनो मिले और दोनो फिर खो गये। एक नारी हृदय के लिए अपने पति और पुत्र के वियोग से वढ कर अन्य कौन सी व्यथा हो सकती है?

परन्तु वही भीषण व्यथा तव गल-गल कर वह गई और उसके स्थान पर रोम-२ मे गहरी खुशी समा गई जव उसने काशी नगर मे अपने पति और पुत्र का वहु-मान समारोह देखा। उसका हृदय खुशी से पागल हो उठा कि श्रीकान्त और कुसुमकुमार काशी नगर के महाराज तुल्य पुरुष वन गये है, जवकि वही वह एक सीधी सादी अहीरन के रूप मे रह रही है।

कई वार उसने सोचा कि वह उन दोनो से भेंट कर ले किन्तु हर वार झिझक उसके आडे आती रही। फिर उसके मन मे आया कि कुदरती ढग मे ही कोई ऐसा मौका आवे और उन सवका मिलना हो, वही शोभाजनक और श्रेष्ठ रहेगा। इसलिए वह उस दिन की इन्तजार करने लगी।

× × × ×

एक दिन मजुला अन्य अहीरनो के साथ मे हमेशा की तरह छाछ और दही की मटकियाँ माथे पर धर कर वेचने के लिए निकली। वे सव हमेशा की तरह मस्ती में चली जा रही थी, तभी अचानक राजमहल के गवाक्ष की तरफ से एक तीर सनसनाता हुआ आया और मजुला के सिर पर रखी हुई मटकी पर लगा जिससे मटकी फूट गई और सारी

छाछ मजुला की देह पर छितर गयी। दूसरी अहीरनें इधर-उधर देखकर रोष जताने लगी किन्तु मजुला ने कतई क्रोध नही किया। सोचा जो नुकसान होना था वह तो हो गया, अब वह क्रोध जैसी कषाय मे पडकर अपनी अन्तरात्मा का नुकसान क्यो करे?

जिधर से तीर आया था उस दिशा मे मजुला ने अपनी दृष्टि घुमाई तो देखा कि राजमहल के गवाक्ष मे एक तरुण धनुष बाण लिए खडा है। वह तरुण अब उसके लिए अचीन्हा नही था। दूर से भी उसने उसे पहिचान लिया और उसे यह समझ कर प्रसन्नता ही हुई कि जब उसका लाडला बेटा युवराज बन गया है तो उसके लिए शस्त्र विद्या का अभ्यास आवश्यक ही हो गया है।

उधर युवराज कुसुमकुमार ने जब देखा कि उसका तीर गलती से किसी अहीरन की मटकी से जा लगा है और उससे उसको नुकसान भी हो गया है तो वह सीधा ऊपर से नीचे उतर कर राजपथ की ओर दौडा आया। उस अहीरन के समीप आकर युवराज ने क्षमा प्रार्थना के स्वर मे कहा—

"क्षमा करें, मैं अपने धनुष का निशाना चूक गया था इसी से तीर आपके घडे को आ लगा और घडा फूट गया। मुझे इसका बहुत अफसोस है और मैं इस नुकसान का मुआवजा भी राजकोष से चुकाने को तैयार हूँ।"

मजुला तो अपने लाल को पहचान गई थी और इस कारण उसके सरल व्यवहार पर वह बलि-२ जाने लगी किन्तु वह युवराज भला उस अहीरन को कैसे पहचान लेता? मजुला उसकी बात का जवाब देती उससे पहले ही दूसरी अहीरनें बोल पडी—

"युवराज, आप इस नुकसान का क्या मुआवजा चुका सकेंगे? आप तो सुख के झूलो मे झूलने वाले राजकुमार हो। आपको गरीबो के दर्द का क्या एहसास? हम गरीब लोग किस तरह अपना निर्वाह चलाते हैं, यह हमी जानती हैं। जिसके पैरो मे कभी काटा न चुभा हो वह काटा चुभने का दर्द क्या जाने? छाछ और घडे का मूल्य चुका देने से गरीब के दर्द का मूल्य नही चुकता है राजकुमार!"

युवराज कुसुमकुमार उन अहीरनो के बीच मे गम्भीर होकर स्तब्ध-सा खडा रहा। उसके मन मे विचार उठा कि ये महिलाएँ उसके जीवन की कहानी को जानती नही हैं इसी कारण इस तरह से व्यग्य कर रही हैं। वह मन ही मन हँसा कि यह तो मात्र एक सयोग की बात है कि वह युवराज बन गया है वरना उसने कष्टो का क्या कम भुगतान किया है। कुसुमकुमार वश परम्परा से राजा नही बन रहा था अपितु उसे यह पद उसके और उसके पिता के पुरुषार्थ से मिला था। अत उसके मन मे लेशमात्र भी अभिमान नही था। उसने आत्मिक भावना से ही फिर कहा—

"मुझे घडे के फूट जाने का बहुत ही खेद है किन्तु आप लोगो का इस तरह से व्यग्यपूर्वक बोलना मुझे अच्छा नही लग रहा है ···· ···।"

वे ही अहीरनें वीच मे ही वोल पडीं—

"युवराज, जो दु ख की नदी मे वहती रही हो और तीखे-तीखे शूलो पर चलती रही हो उसे भला घडा फूटने का क्या विशेष दु ख होगा ?"

उस वात को अनसुनी करके युवराज ने उस अहीरन से जिसकी मटकी फूटी थी सीधा सवाल किया—"क्या आप मुझे क्षमा कर रही हैं ?"

मजुला ने प्रेम से भीगे शब्दो मे कहा—"युवराज, तुम अभी तरुण हो। तुम अभी दु ख को क्या पहिचानोगे ? मैं तो दुखो के सागर को पार कर रही हूँ इसलिए घडा फूटने से न मुझे कोई दु ख हुआ है और न तुम्हें क्षमा चाहने की जरूरत है।"

उस अहीरन के मुँह से भी वैसी ही बात सुनकर कुसुमकुमार चुप नहीं रह सका। वह आवेगपूर्ण स्वर मे वोलने लगा—

"आपने मेरे दिल की दुखती रग को छेड दी है इसलिए अव मैं अपनी कुछ कहानी कहे विना रह नही सकूँगा। मुझे हँसी आती है कि सभी को अपना-अपना दु ख ही वहुत वडा नजर आता है और दूसरो का वडा दु ख भी छोटा। मैंने तो जन्म ही दुखों के बीच वियावान जगल मे पाया था और तबसे अपने जन्मदाता माँ-वाप के प्यार से वचित रहा। दूसरो ने मुझे पाला पोसा और उसके वाद जव एक दिन अपनी जन्मदायिनी माँ के दर्शन मुझे हुए तो मैं तुरन्त ही उसे खो वैठा। फिर उसको खोजने मे जो-जो दु ख मैंने सहे वैसे दु·ख न तुमने सहे होगे और न तुमने सुने होंगे।"

मजुला मन ही मन मुस्करायी किन्तु उसे अपना सारा रहस्य प्रकट कर देने का यह उचित अवसर लगा, इसलिए उसने उत्तर देना शुरू किया—

"मेरी दु ख भरी कहानी के सामने किसी को भी यह निर्णय देना कठिन होगा कि क्या दु खो की अति उससे वढकर भी होती है ? यह दु खो का क्रम, समझो कि मेरा गृहस्थ जीवन शुरू होने के साथ ही प्रारम्भ हो गया था। पुत्र का जन्म भी जगल मे हुआ और भाग्य की विडम्वना थी कि मैं उसे अपने दूध की वू द तक न पिला सकी। पुत्र के वियोग के साथ ही घटना ऐसी वनी कि मुझे एक कामान्ध राजा के राजभवन मे कैद हो जाना पडा। वह यातनाएँ देता रहा और मैं अपने सतीत्व रक्षा के प्रयत्न चलाती रही। मेरी इस सारी दुःख गाथा की जव मेरे पतिदेव को जानकारी हुई, वे भी मुझे खोजने निकले। पतिदेव ने उस राजा की कैद से मुझे छुटकारा दिलाया तो मैं समझी कि अव मेरे दुखों का अन्त हो गया है लेकिन तव दु खो का नया दौर शुरू हुआ। पतिदेव से मैं विछुड गई, एक शकालु सेठानी के षडयत्र से कचनपुर की एक वैश्या के कोठे मे फस गई। वहाँ मुझे अपना सुपुत्र जिसे मैं जन्म के वाद ही देख नही पायी थी, तरुण के रूप मे मुझे मिला। उसने मुझे वहा से उद्धार कराने का आश्वासन भी दिया किन्तु मैं नही जानती कि वह किस मुसीवत मे फसकर समय पर मेरे पास वापिस नही आ सका' ······ ···।"

कुसुमकुमार ज्यो-ज्यो उस अहीरन का वृत्तात सुनता जा रहा था, त्यो-त्यो उसके स्मृति पटल पर पिछली यादें एक-एक करके उभरने लगी। उसने वडे ध्यान से उस अहीरन की मुखाकृति को निरखा और परखा। फिर तो चाहे एक वार ही दर्शन क्यो न किये थे वह अपनी ममतामयी को पहिचान गया। श्रद्धा और स्नेह से उसका मन भर उठा और वह यह कहते हुए—"वस करो मॉं। वस करो। मैं इतना निरीह निकला कि जिस मॉं की खोज मे दर-दर भटकता रहा हूँ उसी मॉं को सामने पाकर भी मैं तत्क्षण पहिचान नही पाया। मुझे क्षमा कर दो मॉं!" मजुला के चरणो मे गिर पडा और उन चरणो को अपने हर्षाश्रुओ से धोने लगा।

"वेटा कुसुम मैंने तुम्हे अपनी पहिचान दु खो से ही कराना उचित समझा। मुझे विश्वास था कि तुम किसी न किसी कारण से ही मेरे उद्धार के लिए वापिस नही आ सके होओगे और मेरे नदी मे कूदकर वहाँ से बह निकलने के वाद मेरी खोज मे भी अवश्य ही निकले होओगे।"

"मॉं, मैं तुम्हारी खोज मे पागलो की तरह भटकता रहा। तुम तो नही मिली लेकिन पिताजी मिल गये और श्रीपुर जाने के वजाय पिताजी राजकुमारी का सर्पदश ठीक करने की करुणा से मुझे लेकर इधर आ गये और वाद मे ·· · ·····।"

मजुला ने खुशी मे भरकर कहा—"वाद मे जो कुछ हुआ वह सव मैं जानती हूँ और उस वृत्तात ने मेरे हृदय के तपते हुए रेगिस्तान मे मूसलाधार वर्षा कर दी। मुझे परम मोद का अनुभव दे दिया है।"

पास मे खडी हुई दूसरी अहीरनें आश्चर्यचकित सी खडी ही रह गयी कि अरे यह तो युवराज की माता है। हमे तो इसने अपना कोई इस तरह का परिचय ही नही दिया।

मजुला ने कुसुमकुमार को उठाया और अपने गले से लगा लिया। उसके नेत्रो से भी आँसुओ की धारा वहने लगी। एक पुरुषार्थी माता का अपने पुरुषार्थी पुत्र के साथ यह हार्दिक मिलन था। कुसुमकुमार हर्ष विभोर था कि मेरे जैसे पुत्र के होते हुए भी मेरी मॉं ने अकेले ही अपने पुरुषार्थ के वल पर समस्त दु खो से सफल सघर्ष करके विजय प्राप्त की है। युवराज पद पा जाने के वाद भी अपने पुत्र के अति मानवीय व्यवहार पर मॉं का हृदय भी सतुष्ट हुआ जो एक साधारण सी अहीरन से भी अपनी छोटी सी भूल के लिए खुद क्षमा मॉंगने दौडा आया। अपने पुत्र की सुयोग्यता पर मॉं की छाती भर आयी।

अहीरनो से दूसरे नागरिको को जानकारी हुई और देखते-देखते खवर राजमहल तक चली गई। श्रीकात को जव यह ज्ञात हुआ कि उसके पुत्र को उसकी माता मिल गई है तो वह नगे पैरो ही भागा तथा उस स्थान पर पहुँचा जहाँ मजुला और कुसुमकुमार नागरिको से घिरे हुए खडे थे। मजुला ने भी जव पतिदेव को देखा तो वह उनके चरणो मे झुक आई। श्रीकात, मजुला और कुसुमकुमार के इस भावपूर्ण मिलन को देखकर काशी नगर के नागरिक आनन्द मग्न हो गये। वे तीनो प्राणी तो इतने अधिक हर्ष का अनुभव

कर रहे थे कि जिसका शब्दो मे वर्णन नही किया जा सकता । जब काशी नरेश के पास भी इस महामिलन के समाचार पहुँचे तो उन्होंने राजकीय सज्जा सामग्री के साथ तीनो को एक विराट जुलूस के रूप मे राजभवन लाने का निर्देश दिया। तीनो के उस जुलूस का जगह-जगह पर भव्य स्वागत किया गया और राजभवन पहुँच जाने के बाद वह जुलूस एक सभा के रूप मे बदल गया जिसमे सबके आग्रह पर श्रीकात ने अपने व आत्मीयजनो के जीवन प्रसग सबको सुनाए। कष्टो की उस गाथा को सुनकर सबके दिल पसीज उठे और सबने एक स्वर से उन तीनो भव्य आत्माओ का जय-जयकार किया।

× × × ×

"मजुले, पहले हम कुछ बोलें या एक दूसरे को देखते ही रहें? कर्मो ने हमारे जीवन मे क्या-क्या खेल खेले है—अब उनका लेखा-जोखा लेने से क्या लाभ?"

"हाँ स्वामी, अब तो बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेहि। अब तो कर्मो का खेल खत्म है और पुण्योदय से अपना लाडला काशीनगर का भावी शासक भी मनोनीत हो गया है। आप मिल गये—यह मेरा सबसे बडा भाग्योदय है। मेरे मन का मोद पूर्ण हो गया है, नाथ।"

श्रीकात और मजुला ने चन्द्रनगर के बाहर से बिछुड जाने के बाद की अपनी-अपनी घटनाओ पर रोशनी डाली और दोनो ने एक तृप्ति की सास ली कि अपरिमित कष्ट सह कर भी वे अपने जीवन की पवित्रताओ को बनाये रख सके। तब मजुला ने ही फिर से बात छेडी—"अब तक चाहे जो कुछ घटित हुआ हो, हम इस समय सासारिक सुख के उच्चतम शिखर पर पहुँच गये हैं। कुछ दिन बहू-बेटे के साथ रह लें—माताजी और बहन पदमा से मिल लें, लेकिन अब यह सोचना शुरू कर दें कि इस ससार से भी ऊपर एक और कर्त्तव्य है—आत्मा के उत्थान का कर्त्तव्य एवम् उस ओर जल्दी ही कदम बढाने की तैयारी करने लगें।"

तभी कुसुमकुमार भी भीतर आ गया था और उसने माँ का यह सन्देश सुन लिया था। तब श्रीकात और कुसुमकुमार दोनो ने कहा—"अन्तिम लक्ष्य तो यही है।"

□□□

३४

कई पगलिये चले मुक्ति की ओर

आत्मा सासारिक बधनो से मुक्त हो—इसके लिए वर्तमान के क्षण को सही तरीके से समझना आवश्यक है। आत्मा वर्तमान को नही समझती तभी वह भूतकाल के वृत्तातो मे उलझती है अथवा भविष्य की सुनहली कल्पनाओ मे उडती है। उसमे यह विचारणा नही जागती कि भूतकालीन स्थितियो को स्मृति पटल पर लाकर क्या किया जा सकता है। जो व्यतीत हो गया, वह तो वीत गया, चुक गया। उससे तो सिर्फ शिक्षा ली जा सकती है या प्रेरणा ली जा सकती है। भविष्य का लक्ष्य भी सामने रखा जा सकता है किन्तु उस लक्ष्य के अनुसार कदम तो वर्तमान मे ही वढाने पडेंगे। अत वर्तमान के समय की अवस्था को सही तरीके से–सही दृष्टिकोण से जीवन के अन्तस्थल मे समझ लें तो वह समझ जीवन को सर्वांगतः भव्य तरीके से निखार सकती है।

जिन आत्माओ ने वर्तमान को समझने की चेष्टा की, उनके सामने चाहे जैसी परिस्थितियाँ आयी उन्होंने वर्तमान के समभाव अभ्यास को नही छोडा। उन पर चाहे कष्टों के पहाड टूट पडे लेकिन वे प्रत्येक पग पर विवेक को स्थिर किये रहीं। उन भव्य आत्माओ के समान ही नारी जाति का प्रतिनिधित्व करते हुए भी मजुला ने वर्तमान विवेक का आदर्श उदाहरण उपस्थित किया था।

जहाँ पाप का उदय चलता है उसके पीछे पुण्य का उदय भी आता है। कर्मोदय की दशा एक ही दिशा मे नही चलती है। यदि आत्मा पुण्य का फल भोगने मे ही मस्त वन जाय और उस मस्ती मे पापपूर्ण कृत्य करने लग जाय तो पूर्व के पुण्य भी पाप रूप मे परिणित हो जाते हैं। इसके विपरीत यदि पाप कर्मो को भोगते हुए वह समभाव की मात्रा से चलें तो पूर्व के पापो का वन्ध भी पुण्य मे परिवर्तित होकर आत्मा को सुख और शान्ति पहुँचाने वाला वन जाता है। श्रीकात और मजुला की आत्माओ के साथ तव जो सुख और शान्ति का भाव उत्पन्न हुआ था उसके मूल मे यही तथ्य था कि उन्होंने वर्तमान समय को सही तरीके से समझा तथा अपने पापकर्मों को भोगते समय समभाव को वरावर वनाये रखा। इस प्रकार के धैर्य एवम् विवेक को ही 'स्व-समय' का वोध कहते हैं।

समय मथरगति से वीत रहा था। श्रीकात और मजुला अपना अधिकाश समय धर्म भावनाओ तथा क्रियाओ मे व्यतीत करते थे तो कुसुमकुमार का अधिकाश समय राज्य व्यवस्थाओ मे गुजरता था ताकि वृद्ध काशी नरेश को अधिक विश्राम मिल सके। यो वे सभी प्राणी सुख के हिंडोले झूल रहे थे। एक दिन श्रीकात और मजुला अपने कक्ष मे बैठे हुए बातचीत कर रहे थे। बातचीत के बीच मे मजुला ने कहा—"पतिदेव, हमने जीवन के दोनो पक्ष देख लिए हैं। ससार के कष्टकारी दु.ख भी देखे हैं तो राजसुख भी भोग रहे हैं किन्तु अब हमे स्वसमय का बोध लेना चाहिये और वर्तमान के सही तरीके को समझ कर आत्मा को कर्मबन्धन से मुक्त करने की दिशा मे आगे बढने का विशेष प्रयास करना चाहिये।"

श्रीकात यह सुनकर कुछ देर विचारमग्न रहा तब धीरे-धीरे बोलने लगा—"मजुले, तुम सही कह रही हो। यह जीवन क्षणभगुर है। जैसे अपना दु ख का समय बीता वैसे यह सुख का समय भी बीत जायेगा। फिर भी हम कोई विशिष्ट आत्मलाभ नही कर पायेंगे। इसलिए अब अवसर आवे तो सासारिकता का मोह छोड़कर पूर्ण भाव से मुक्ति की ओर कदम बढ़ाने की तैयारी करें।"

तभी एक सेवक भीतर आया और उसने दोनो का अभिवादन करके निवेदन किया—

"महोदय, बहुत ही प्रसन्नता का समाचार है कि युवराज को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है।" समाचार सुनकर श्रीकात और मजुला बहुत ही हर्षित हुए तथा उन्होने सेवक को पुरस्कृत किया। उन्होने उसी सेवक के माध्यम से काशी नरेश को बधाई भिजवायी।

थोडी देर बाद एक दूसरे सेवक ने निवेदन किया—"महोदय, नगर के बाहर उद्यान मे महासतियांजी महाराज सा. के समुदाय का पदार्पण हुआ है।"

श्रीकात ने मजुला को पूछा—

"पहले अपने पौत्र के जन्मोत्सव मे चले अथवा महासतियांजी के दर्शन करने व उपदेश सुनने?"

मजुला ने तटस्थ भाव से कहा—"स्वामी, इन पुत्र-पौत्र जन्मोत्सवो मे तो हम जन्म-जन्मान्तरो से सम्मिलित होते हुए आ रहे हैं किन्तु धर्म की ओर वाछित अभिरुचि का विकास नही कर पाये हैं इसलिए हमे पहले स्व-समय का उत्सव मनाना है। पर-समय का उत्सव तो बाद मे भी मनाया जा सकता है।"

श्रीकात ने मजुला की बात का समर्थन किया और पहले धर्म स्थान पहुँचने का निश्चय किया।

× × ×

महासतियांजी महाराज का धर्मोपदेश चल रहा था—

"समभाव के पुरुषार्थ की बडी महिमा है। ससार मे रहते हुए आत्मा मोह-कर्म के वशीभूत रहती है और मोह से राग तथा द्वेष की परिणति होती है। जिसे हम चाहते

हैं उसके प्रति राग भाव होता है और जिसे हम नही चाहते हैं अथवा जो हमारे चाहने मे बाधा पैदा करता है उसके प्रति द्वेष भाव आ जाता है। राग और द्वेष का यह क्रम आत्मा को ससार की चौरासी लाख योनियो मे घुमाता रहता है इसलिए ससार के पार उतरना है तो राग और द्वेष को घटाते हुए समभाव वढाना होगा"..........

".........."समभाव का अभ्यास करने के लिए गृहस्थो को सामायिक व्रत करने का निर्देश दिया गया है। यह सामायिक एक मुहूर्त समय की होती है किन्तु यदि अभ्यास पुष्ट वन जाय और जीवन पर्यन्त की सामायिक ग्रहण करली जाय तो उसे साधु धर्म कहते हैं। सामायिक की स्थिति को समय की स्थिति भी मान सकते हैं और सामायिक की साधना से स्व-समय की साधना की जा सकती है। समभाव ही समदृष्टि भाव होता है और इसी भाव की पुष्टि सामायिक मे होती है"...............

".........स्व-समय और पर-समय का भेद समझ कर जो आत्माएँ सामायिक तथा सयम की साधना मे तल्लीन होती हैं वे मोह के वन्धनो को समाप्त करती हैं तथा मुक्ति की ओर वढ चलती हैं ....'-

ज्योही प्रवचन समाप्त हुआ श्रीकात और मजुला ने उठकर सभी महासतियो को वन्दन किया। वन्दन करते-करते उनके आश्चर्य की सीमा नही रही कि उस समुदाय मे श्रीकात की माता और वहन पद्मा भी साध्वियो के रूप मे वहाँ विराजमान थी।

मजुला ने देखा कि यह उसकी ननद वही पद्मा है जिसके कारण उसे वर्षों तक जगल-जगल भटकना पडा और अगणित दु ख सहने पडे किन्तु मजुला को लेशमात्र भी क्रोध नही आया वल्कि उसने पद्मा के सम्मुख निवेदन किया—"धन्य हो, आपने तरुणाई मे प्रवेश ही किया था फिर भी उस छोटी-सी उम्र मे आपने सर्वस्व त्याग कर साधना पथ को अगीकार किया। एक मैं हूँ कि अभी तक ससार में भटक रही हूँ।" इसी तरह मजुला अपनी सासु साध्वीजी के चरणो मे भी गिरी और अपने वैराग्य भावो को प्रकट करने लगी। दोनो साध्वियो ने भी मजुला के सामने इस तरह के भाव प्रकट किये कि उनकी ही गलत समझ के कारण मजुला को इतने कष्ट झेलने पडे जिसके प्रायश्चित स्वरूप ही उन्हें ससार से ग्लानि हो गयी।

श्रीकात और मजुला ने दोनो साध्वियो से अपने पूर्व व्यवहार के लिए क्षमा प्रार्थना की एवम् कहा कि ये सारे कष्ट तो उन्हे अपने कर्मों के उदय मे आने से सहने पडे हैं। उन्होने यह भी निवेदन किया कि अव उन्हे भी ससार से वैराग्य हो रहा है तथा वे भी साधना-पथ पर चलने की तैयारी कर रहे हैं।

उस समय तो वे धर्म स्थान से राजमहल मे लौट आये और कुछ दिनो तक दोनो ने परस्पर विचार-विमर्श करके स्व-समय का वोध प्राप्त करने के लिए जीवन पर्यन्त की सामायिक अगीकार करने का निश्चय किया। मजुला का आग्रह अत्यधिक था। श्रीकात ने तो पौत्र के कुछ वडे हो जाने तक रुकने का अनुरोध किया था किन्तु वह मजुला को स्वीकार नहीं हुआ। तव श्रीकात ने भी मजुला के साथ ही दीक्षित हो जाने का विचार किया।

तब कुसुमकुमार को उन्होने सन्देश भेज कर अपने पास बुलाया और उसे सूचना दी—

"कुसुम, हम दोनो ने अब संयम ग्रहण करने का निश्चय किया है। अब तो स्व-समय का बोध करना ही चाहिये। अब तक का सारा समय पर-समय के रूप मे बीता है और यह नही कहा जा सकता कि अब जीवन का कितना भाग अवशेष है अत हम दोनो ने परस्पर तो इस हेतु आज्ञा दे दी और ले ली है किन्तु इस हेतु तुम्हारी आज्ञा की भी अपेक्षा है।"

कुसुमकुमार यह सुनकर सन्न रह गया। अभी तो सुख की सास आये कुछ ही समय बीता है कि माता और पिता इस तरह तलवार की दुधारी धार पर चलने की तैयारी कर बैठे हैं। उसने व्यग्र होकर कहा—"पूज्य माताजी और पिताजी, आप मुझे सुखी देखना चाहते हैं या कि दु खी ?"

श्रीकांत ने स्नेह पूर्वक कहा—"यह कैसी बात तुमने कही मेरे बेटे। अब तो तुम काशी नगर के महाराज की तरह ही कार्य कर रहे हो। अब तुम्हें किस बात का दु ख है ? तुम्हारे चारो ओर सुख ही सुख है और तुम सुख पूर्वक ही रहो—यह हमारी इच्छा है।"

कुछ क्षणो तक कुसुमकुमार जैसे गहरे पैठ कर सोचता रहा और फिर विरक्ति के से स्वर मे बोला—"पिताश्री, आप जिसे मेरे लिए सुख मान रहे हैं वह वास्तविक सुख नही है—एक मृग मरीचिका है, एक भ्रम और छलावा है। आप दोनो के निश्चय ने मेरी आँखें खोल दी हैं। अब मैं इस सुख के पीछे भागते रह कर अपना जीवन नष्ट नही करना चाहता हूँ।"

उसकी यह बात सुनकर श्रीकांत और मजुला दोनो चौंके। श्रीकात ने कहा—"अभी तो तुम्हारे गृहस्थ जीवन का श्री गणेश ही हुआ है। अभी तुम ससार मे रहो और सांसारिक सुखो का भी अनुभव करो।"

"पिताश्री, काशी राज्य का उत्तराधिकारी जन्म ले चुका है इसलिए आप मेरे लिए चिता न करें और काशी नरेश तथा काशीवासियो को भी मेरे लिए चिता करने की आवश्यकता नही रह गई है इसलिए मैं तो अनन्त सुख के पथ पर आपके साथ ही अग्रसर होना चाहता हूँ।"

"जब तुम्हारी दृढ भावना हो गयी है तो हम भी बाधक नहीं बनना चाहेंगे। लेकिन तुम अपनी भावना से अपनी धर्मपत्नी को अवगत कराओ तथा उससे आज्ञा प्राप्त करो—यह आवश्यक है।"

तब कुसुमकुमार वहाँ से अपनी पत्नी के पास पहुचा और उसने सारी स्थिति बता कर अपनी दीक्षित होने की भावना व्यक्त की। उसे सुनकर सुगन्धा एक बार तो हक्की-बक्की रह गई। वह बोली—"पतिदेव, अभी तो आपका लाल बहुत छोटा है इसे बडा कीजिये, शिक्षित बनाइये, इसका विवाह कीजिये और फिर इसे राजकाज सौपकर हम दोनो साथ-साथ दीक्षा लें तो अच्छा रहेगा।"

कुसुमकुमार ने समझाया "स्व-समय का बोध करने के लिए जितनी जल्दी से निकल जावें उतना ही अच्छा है। फिर काल का भी क्या कोई भरोसा है कि उस समय तक हम दोनो जीवित ही रहेगे ?"

"यह तो आप ठीक कहते हैं कि काल की नियति को कौन जानता है ? लेकिन जब आप उस प्रशस्त मार्ग के राही बनना चाहते हैं तो मैं भी पीछे नही रहूँगी। मैं भी साथ-साथ साध्वी व्रत अगीकार करू गी।"

"नही सुगन्धा, तुम अभी ऐसा नही कर सकोगी। मेरे दीक्षित हो जाने से अपने पुत्र के प्रति तुम्हारा कर्तव्य भाव बहुत बढ जायगा। तुम्हे उसके लिए माता और पिता दोनो का काम करना होगा, इसलिए तुम अभी ससार मे ही रह कर अपने इस कर्त्तव्य का पालन करो।"

बहुत समझाने-बुझाने पर वह सुगन्धा को संसार मे ही रहने तथा उसे दीक्षित हो जाने की आज्ञा देने के लिए राजी कर सका।

तब कुसुमकुमार अपने माता-पिता श्रीकात और मजुला को साथ लेकर काशी नरेश के पास पहुँचा और हाथ जोडकर निवेदन किया—

"महाराज, मैंने अपने इन माता-पिता के साथ साधु धर्म अगीकार करने का निर्णय किया है। मुझे दु.ख है कि मैं आपकी अधिक सेवा नही कर पाऊगा।"

"यह क्या कह रहे हो युवराज ? क्या तुमने यह नही सोचा कि मेरा क्या होगा ?"

"महाराज, यदि आप अपने मे साधु बनने की सामर्थ्य समझते हैं तो आप भी हमारे साथ आ जाइये अन्यथा अपने नये उत्तराधिकारी का लालन-पालन कीजिये और उसको राजगद्दी पर बिठा कर फिर साधु बन जाइयेगा।"

काशी नरेश कुसुमकुमार के साहसिक निर्णय से अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होने कुसुमकुमार को दीक्षा की अनुमति प्रदान कर दी।

× × ×

काशी वासी झुण्ड के झुण्ड उद्यान की ओर चले जा रहे थे, जहाँ महासतियाँजी के पास मजुला की और सन्तो के पास श्रीकात और कुसुमकुमार की दीक्षाए होनी थी। नागरिको मे प्रशसा भरी चर्चाए चल रही थी कि तीनो कैसी भव्य आत्माए हैं जिन्होंने भीषण कष्टों को तो सहते हुए धैर्य और विवेक बनाये रखा किन्तु सुखो के रसास्वादन का अवसर आते ही जो ससार मे विमुख होकर संयम मार्ग पर चलने को आतुर हो गई हैं ?

श्रीकात, मंजुला और कुसुमकुमार को राजकीय सज्जा के साथ जुलूस मे उद्यान पहुंचाया गया जहाँ विधि पूर्वक तीनो को साधु धर्म की दीक्षा दी गई।

कुमकुम भरे दो पगलिये एक दिन जिस परिवार मे प्रविष्ट हुए थे उन्ही पगलियो के पुरुषार्थ का प्रभाव मानिये कि उस परिवार के पाँच जोडी पगलिये तब चल पडे मुक्ति की ओर। ☐